मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

वर्ष : 41
अंक : 3-4
जुलाई - दिसंबर 2020

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

स्त्री शक्ति विशेषांक

हिमाचल प्रदेश में सेवा और स्वावलम्बन का नवयुग

जयराम ठाकुर
मुख्यमंत्री, हिमाचल प्रदेश

मुख्यमंत्री स्वावलम्बन योजना
से आत्मनिर्भर हिमाचल की ओर बढ़े कदम...

जनमंच
बना जनता से सीधे संवाद का मंच

हिमकेयर बनी मरीजों का सहारा
5 लाख रू. तक मुफ्त इलाज की सुविधा

ग्लोबल इन्वेस्टर मीट ऐतिहासिक उपलब्धि
₹96720करोड़ का निवेश
703 एम.ओ.यू साइन

गृहिणियों को मिली सौगात
2,78,826 लाख परिवारों को गैस कनैक्शन मुफ्त वितरित

पर्यटन को लगे पंख
नई मंज़िलें–नई राहें बनी पर्यटकों की पसंद

1100 मुख्यमंत्री सेवा संकल्प हैल्पलाइन से
जन शिकायतों का हो रहा तत्काल समाधान

सामाजिक सेवा पेंशन योजना
का 3.90 लाख वरिष्ठजन उठा रहे लाभ

www.himachalpr.gov.in HimachalPradeshGovtIPRDept DPR Himachal dprhp

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा जारी

₹ 200/-

संरक्षक मंडल

श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
श्री रघुपति सिंघानिया
श्री गोपाल जीवराजका
श्री आलोक बी. श्रीराम
श्री महेश गुप्ता
श्री रवि विग
श्री अनिल खेतान
श्री ललित कुमार मल्होत्रा
श्री सुबोध जैन
श्री सुदर्शन सरीन
श्री प्रदीप मुल्तानी

संपादक मंडल

श्री राम बहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 41, अंक : 3–4 जुलाई–दिसंबर 2020

स्त्री शक्ति विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
arvindvnsingh@gmail.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074
ईमेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com
Website: www.manthandigital.com

मुद्रण
कुमार ऑफसेट प्रिंटर्स
381, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी	प्रो. चंद्रकला पाडिया	05
4.	भारतीय नारी - एक विहंगम अवलोकन	रंगा हरि	19
5.	परिवार, गृहस्थाश्रम, समाज और राष्ट्र जीवन	प्रो. भगवती प्रकाश	36
6.	आत्मकथाओं में स्त्री जीवन की व्यथा	माधुरी साकुलकर	42
7.	डायन विचारण : बहुदैविकों एवं स्त्रियों के विरुद्ध अभियान	इष्ट देव सांकृत्यायन	49
8.	पत्रकारिता के पन्नों पर महिलाएं	कुमुद शर्मा	62
9.	दीनदयाल जी की दृष्टि में स्त्री	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा	69
10.	कहानी, कविता और स्त्री	सोनाली मिश्रा	72
11.	अहल्या और आज की स्त्री	डॉ. शांति जैन	82
12.	साहस की प्रतिमूर्ति माताजी	ब्रजकिशोर शर्मा	85
13.	समाज की मूलभूत इकाई परिवार	डॉ. मनीषा कोठेकर	89

आनुषंगिक आलेख

1.	वेदज्ञानी विश्ववारा	48
2.	बहू ने लिया शिवाजी का बदला	71
3.	सर्वगुणसंपन्ना साध्वी अपाला	81
4.	ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी गार्गी	84
5.	लोपामुद्रा	88
6.	अश्विनी कुमारों की साधिका घोषा	90
7.	अद्वैत की जननी वागांभृणी	91

लेखकों का परिचय

प्रो. चंद्रकला पाडिया काशी हिंदू विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग में 44 वर्षों तक अपनी सेवाएं देने के बाद विश्वविद्यालय के वरिष्ठतम प्रोफेसर के रूप में सेवानिवृत्त। इसी अवधि में महाराज गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान में कुलपति भी रहीं। साथ ही भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला की प्रथम महिला अध्यक्ष होने का भी गौरव प्राप्त। वे विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों जैसे- मैकमॉस्टर एवं टोरंटो विश्वविद्यालय, कनाडा; शिकागो विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका; स्टॉकहोम विश्वविद्यालय, स्वीडेन; एवं प्लोलैंड, फ्रांस आदि देशों में विजिटिंग प्रोफेसर/फेलो के रूप में अपनी सेवाएं दे चुकी हैं। संप्रति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद्, नैक आदि की कई समितियों की सदस्या। अध्ययन एवं शोध का मूल क्षेत्र 'राजनैतिक चिंतन, भारतीय ज्ञान परंपरा, मूल्य शिक्षा एवं स्त्री चिंतन। 3 पुस्तकों का लेखन एवं 10 पुस्तकों का संपादन। अनेक शोध लेख अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त। विश्व के प्रख्यात विश्वविद्यालयों से प्रतिष्ठित व्याख्यान श्रृंखलाओं में व्याख्यान देने के लिए कई बार आमंत्रित। संपर्क: chandrakala.padia@gmail.com

रंगा हरि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से विगत छह दशकों से भी अधिक अवधि से संबद्ध। 1983 से 1994 तक केरल में प्रांत प्रचारक। मलयालम, संस्कृत, हिंदी, कोकणी, मराठी, तमिल, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता। 22 देशों का भ्रमण। मलयालम में 20, कोंकणी में एक तथा हिंदी में 8 पुस्तकों का लेखन। मलयालम में तीन पुस्तकों तथा हिंदी में 12 खंडों में श्री गुरुजी समग्र का संपादन।

प्रो. भगवती प्रकाश अर्थविद होने के साथ ही प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों के विशेषज्ञ भी हैं। वे गौतमबुद्ध विश्वविद्यालय, नोएडा, उत्तर प्रदेश के कुलपति हैं। वे भारत सोलर पॉवर डेवलपमेंट फोरम के संयोजक और स्वदेशी जागरण मंच के सहसंयोजक हैं। संपर्क: bpsharma131@yahoo.co.in, Mob: 9829243459

माधुरी साकुलकर पिछले तीन दशकों से भारतीय स्त्री शक्ति संस्था से संबद्ध। स्त्री विषयक मुद्दों पर सामाजिक कार्य। संप्रति महाराष्ट्र प्रांत संगठन मंत्री का दायित्व। विभिन्न समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। मराठी में कई पुस्तकें प्रकाशित। रथाचे दुसरे चाक, हिमनगाचा तल, तिची कथा, सावित्री बाई फुले जीवन आणि कार्य, इंदिरा गांधी जीवन आणि कार्य विशेष रूप से चर्चित। संपर्क : 9850369233

इष्ट देव सांकृत्यायन वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक। एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से संबद्ध। कुछ कृतियों का लेखन एवं अनुवाद। संपर्क : idsankrityaayan@gmail.com

कुमुद शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। साहित्य सृजन के लिए कई पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत। हिंदी के निर्माता, भूमंडलीकरण और मीडिया, स्त्रीघोष, विज्ञापन की दुनिया, गाँव के मन से रू-ब- रू, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, अमृतपुत्र, 1000 हिंदी साहित्य प्रश्नोत्तरी और काव्य मंजरी आदि प्रमुख पुस्तकें। सन् 1979 से ही राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। सन् 1996 से 2004 तक साहित्यिक पत्रिका 'अमृत प्रभात' की संयुक्त संपादक। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर साहित्यिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा पूर्व राज्यसभा सांसद। भाजपा केंद्रीय कार्यकारिणी के सदस्य, दीनदयाल प्रशिक्षण महाभियान के राष्ट्रीय संयोजक। दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङमय का हिंदी एवं अंग्रेजी में 15 खंडों में संपादन। संपर्क : mahesh.chandra.sharma@live.om

सोनाली मिश्रा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में प्रोजेक्ट एसोसिएट। कई पुस्तकों का अनुवाद। कहानियों का एक संकलन प्रकाशित। अनुवाद अध्ययन में पी-एच. डी.। संपर्क : sonalitranslators@gmail.com

डॉ. शांति जैन संस्कृत एवं हिंदी भाषा-साहित्य के साथ-साथ संगीत में भी गति। आरा (बिहार) स्थित एचडी जैन कॉलेज से अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत)। प्रमुख कृतियों में एक वृत्त के चारों ओर, हथेली का आदमी, हथेली पर एक सितारा (काव्य); पिया की हवेली, छलकती आँखें, धूप में पानी की लकीरें, साँझ घिरे लागल, तरन्नुम, समय के स्वर, अँजुरी भर सपना (गजल, गीत-संग्रह); अश्मा, चंदनबाला (प्रबंधकाव्य); चौती, कजरी, ऋतुगीत: स्वर और स्वरूप, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, बिहार के भक्तिपरक लोकगीत, व्रत-त्योहार कोश, तुतली बोली के गीत (लोकसाहित्य); वसंत सेना, वासवदत्ता, कादंबरी, वेणीसंहार की शास्त्रीय समीक्षा; एक कोमल क्रांतिवीर के अंतिम दो वर्ष (डायरी) आदि शामिल। कई पुरस्कारों से सम्मानित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से संगीत कार्यक्रमों की प्रस्तुति।

ब्रज किशोर शर्मा एक संवैधानिक विशेषज्ञ हैं। वह विधि एवं न्याय मंत्रलय के अपर सचिव पद से सेवानिवृत्त हो चुके हैं। वह राजा राम मोहन रॉय लाइब्रेरी फाउंडेशन, कोलकाता के चेयरमैन हैं। इससे पूर्व वह नेशनल बुक ट्रस्ट (एनबीटी) के चेयरमैन रह चुके हैं। संपर्क: 011-22722138

डॉ. मनीषा कोठेकर शरीरक्रिया विज्ञान में एमडी। नागपुर स्थित श्री आयुर्वेद महाविद्यालय के शरीरक्रिया विज्ञान विभाग में लंबी अवधि तक प्रोफेसर एवं प्राचार्य रहने के बाद अब महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी ऑफ हेल्थ साइंसेज के नागपुर रीजनल सेंटर की निदेशक। भारत सरकार के राष्ट्रीय युवा आयोग की पूर्व सदस्या। लैंगिक विषयों पर कई संगोष्ठियों-सम्मेलनों का आयोजन-संचालन। चिकित्सा एवं स्त्री विषयक अनेक शोधपत्रों का लेखन एवं परिवेदनों पर कार्य। संपर्क: 9823366804, maneesha_kothekar@yahoo.co.in

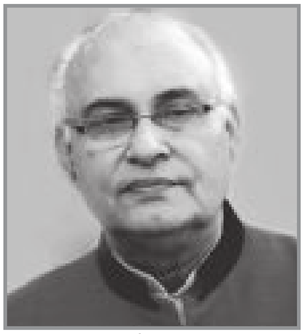

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

कोविड 19 ने 'मंथन' को भी ग्रसित कर लिया, अप्रैल-जून 2020 का अंक आपको अति विलंब से प्राप्त हुआ, क्योंकि डाक-व्यवस्था सुचारु नहीं थी। जुलाई-दिसंबर 2020 का यह सयुंक्त अंक थोड़ा विलंब से ही सही पर आप तक पहुँचाने में सफलता मिली, ईश्वर की बड़ी कृपा है। आपको जो कष्ट हुआ, मंथन की पूरी टीम इसके लिए क्षमाप्रार्थी है।

भारत के दो महत्वपूर्ण उत्सव इस दौरान मनाए जाएंगे। दिनांक 25 अक्टूबर को दशहरा एवं दिनांक 14 नवंबर को दीपावली महोत्सव है। तब तक भी संभवत: हम कोरोना के विष-प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाएंगे। लेकिन शायद मुक्ति की कगार पर होंगे। सावधानी बरतें। दीपावली की हार्दिक मंगलकामनाएं स्वीकार करें।

महालक्ष्मी के पर्व पर 'मंथन' का यह 'स्त्री विशेषांक' आपके हाथ में है। अनुसंधानपरक एवं बोधप्रद सामग्री से भरपूर है यह अंक। आज के विश्व में स्त्री विमर्श का एक आयाम पाश्चात्य देशों ने प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य सामाजिकता, राजनीति एवं अकादमिक जगत् सारे विश्व को ही प्रभावित करते हैं, अत: अपना भारत भी इससे अछूता नहीं है।

यह विमर्श हमें अवसर देता है कि हम अपने भारतीय विमर्श की इस संदर्भ में तलाश करें। आ. रंगा हरि जी ने बहुत अनुसंधानपूर्वक इस विमर्श को रेखांकित किया है। अद्‌भुत अनुसंधान एवं विश्लेषण से मंडित उनका आख्यान इस अंक की अनुपम निधि है। उन्होंने अपने अनुसंधान को विहंगावलोकन कहा है, निश्चय ही हमें सिंहावलोकन भी करना होगा। इसके लिए शोधपरक अकादमिक साधकों की आवश्यकता है। शोध की दिशा को बहुत ही सांगोपांग ढंग से माननीय रंगा हरि जी ने दिगदर्शित किया है। आशा है 'मंथन' का यह अंक अब इस विमर्श को आगे बढ़ाएगा।

इस अंक के सभी सुधी लेखकों ने हमें प्रभूत अनुसंधानपरक सामग्री उपलब्ध करवाई है। पाश्चात्य विमर्श को हमें अवश्य ही जानना चाहिए, पर उसमें खो नहीं जाना चाहिए। उनका विकास जिन परिस्थितियों में हुआ है, उन्हें देखते हुए वह विमर्श अस्वाभाविक नहीं है। पर भारतीय परिस्थितियां एवं भारतीय जीवनदर्शन एक भिन्न धरातल पर खड़े हैं। वह धरातल ही हमारे आत्मचिंतन का आधार बन सकता है।

भारत की महान् संस्कृति हमारी सामाजिकता एवं हमारे इतिहास में निगड़ित है। 'संस्कार' मूलत: एक भारतीय तत्व है। इसी से संस्कृति प्रवाहित होती है। संस्कारों से विकारों का शमन होता है। जब संस्कार कमजोर पड़ने लगते हैं तब विकार समाज को दबोच लेते हैं। आज इतिहास के जिस मोड़ पर हम खड़े हैं, लौट कर देखते हैं, तो ध्यान में आता है कि विकारों ने हमें बुरी तरह आक्रांत किया है। उस विकृति से हमें लड़ना है, भारतीय संस्कृति हमें इस लड़ाई के अस्त्र प्रदान करती है। अत: हमें मनोयोगपूर्वक इस स्त्रीविमर्श का चिंतन करना होगा। हमारी विकारग्रस्त स्थिति हमें आत्मालोचन के लिए झकझोरेगी। स्मृतिकाल से आए दूषण से हमें मुक्त होना ही होगा।

शुभम।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

प्रो. चंद्रकला पाडिया

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी

भारत के धर्मशास्त्रीय दर्शन में स्त्री-पुरुष के बीच परस्पर पूरकता का संबंध माना गया है और सामाजिक संरचना में तो स्त्री को पुरुष से उच्चतर स्थान दिया गया है। विडंबना यह है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों एवं संस्कृत भाषा का सम्यक् ज्ञान न होने से पश्चिम ही नहीं, भारत के भी कई विद्वानों ने इसकी गलत व्याख्या की है। एक यथार्थ विश्लेषण

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का एक बहुत ही विशिष्ट, उत्कृष्ट एवं गरिमामय स्थान रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों, जिनमें मूलतः सूत्रों, स्मृतियों, कौटिल्य अर्थशास्त्र, महाकाव्यों, पुराणों, टीकाओं एवं निबंधों का समावेश है, से मिलकर बनी है। वास्तव में धर्मशास्त्र श्रुति साहित्य की परंपरा का ही विस्तार है। जहाँ वेद तथा उपनिषद् दर्शन की सैद्धांतिक अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं, वहीं धर्मशास्त्र दैनिक जीवन के संचालन के लिए आचार संहिता निर्मित करते हैं।

वेद और उपनिषदों के समकक्ष ही धर्मशास्त्रों के अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मशास्त्रीय दर्शन में स्त्री को पुरुष के सहयोगी के रूप में देखा गया है। इसमें स्त्री-पुरुष में पारस्परिक पूरकता का संबंध माना गया है। स्त्री के लिए सदैव ही अर्द्धांगिनी, गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी, सहधर्मिणी आदि आदरसूचक विशेषणों का प्रयोग किया गया है। सामाजिक संरचना में स्त्री को सिर्फ पुरुष के समकक्ष ही नहीं, वरन् उससे श्रेष्ठ माना गया है। परंतु यह एक बहुत बड़ी विडंबना है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों जैसे- वेदों और उपनिषदों का मौलिक रूप में अध्ययन न किए जाने के कारण एवं संस्कृत भाषा का सम्यक् ज्ञान नहीं होने के कारण अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने भारतीय ज्ञान परंपरा में वर्णित स्त्री संबंधी विचारों की गलत व्याख्या की है। अंग्रेजों के प्रचार से प्रभावित होकर भारत के अधिकांश बुद्धिजीवियों ने यह मान लिया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री को हमेशा से ही दोयम दर्जा दिया गया है। वास्तव में सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने भारतीय जनमानस को ऐसी मानसिक दासता से जकड़ दिया है कि स्वतंत्रता के 73 वर्षों के बाद भी हम उससे मुक्त नहीं हो सके हैं। भारतवर्ष में ऐसी शिक्षा व्यवस्था को लागू किया गया, जिसमें ज्ञान की हर विधा में पाश्चात्य दार्शनिकों, चिंतकों एवं वैज्ञानिकों के विचारों को तो सम्मिलित किया गया, परंतु भारतीय दार्शनिकों, वैज्ञानिकों एवं चिंतकों के विचारों की उपेक्षा की गई। हमारे अधिकांश बुद्धिजीवियों ने भारतीय सामाजिक यथार्थ को पाश्चात्य दृष्टि से देखा, पाश्चात्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों में उसकी समीक्षा की और इस प्रकार संपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा को क्षत-विक्षत कर उसे एक बहुत ही विकृत एवं मिथ्या रूप में प्रस्तुत किया।

मेरी दृष्टि में भारतीय नारीवादी चिंतन की ऐसी मिथ्या प्रस्तुति के मूलतः तीन कारण हैं: (1) पाश्चात्य नारीवादी चिंतन का विश्ववाद केवल अपने विश्ववाद में निहित मूल्यों को ही सार्वभौम मान लेता है, उसमें पूर्वी चिंतन में निहित विश्वदृष्टि का सर्वथा अभाव है। (2) पाश्चात्य नारीवादी चिंतन की दोनों महत्वपूर्ण धाराएँ- उदारवाद व मार्क्सवाद मनुष्य की बौद्धिक क्षमता पर बहुत अधिक बल देती है, अंतर्ज्ञान, भावनाओं एवं अनुभव जैसी विधाओं पर बहुत कम। (3) पाश्चात्य नारीवादी चिंतन किसी भी तथ्य को जाँचते हुए उसके ऐतिहासिक, स्थानीय एवं सांस्कृतिक संदर्भों की उपेक्षा करता है।

प्रस्तुत प्रपत्र तीन अनुभागों में विभाजित है: प्रथम अनुभाग में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा में तात्विक स्तर पर मानव प्राणी के रूप में स्त्रियों को समानता का दर्जा दिया गया है। द्वितीय अनुभाग का ध्येय इस तथ्य की पुष्टि करना है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा में चारित्रिक नियंत्रण, सामाजिक समरसता एवं लोक कल्याण में स्त्री द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका को पुरुष द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका से श्रेष्ठ

माना गया है। तृतीय अनुभाग में पाश्चात्य नारीवादी आलोचकों द्वारा लगाया गया आरोप कि 'भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री को अपेक्षित सम्मान नहीं दिया गया है' की यथार्थता को परखने एवं उसका प्रत्युत्तर देने का प्रयास किया गया है। प्रपत्र की विषयवस्तु को प्रारंभ करने से पूर्व इस तथ्य को स्पष्ट करना अपरिहार्य है कि प्रस्तुत प्रपत्र के विषय क्षेत्र को भारतीय ज्ञान परंपरा में सैद्धांतिक रूप से स्त्री की स्थिति के विवेचन तक सीमित रखा गया है, व्यावहारिक स्तर पर उसकी स्थिति को इस प्रपत्र के अध्ययन क्षेत्र से बाहर रखा गया है।

तात्विक स्तर पर स्त्री को प्रदत्त समान स्थिति का प्रारंभिक साक्ष्य भारतीय चिंतन परंपरा के प्राचीनतम दार्शनिक वांङ्मय ऋग्वेद में मिलता है। यह वेद संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति के एकल स्रोत का उल्लेख करता है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में कहता है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीव: कुहकस्य शर्मन्नंभ: किमासीद् गहनंगभीरम्।।

ऋ X/129/2

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत:।
आनीद वातं स्वधया तदेकं तस्मादधान्यन्न पर किं च नास।।

ऋ X/129/2

उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्व नहीं था। सत् भाव तत्त्व भी नहीं था, स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक नहीं थे, अंतरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था? उस समय गहन कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे।

उस प्रलयकालिक समय में मृत्यु नहीं थी और मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। उस समय वह ब्रह्मतत्व ही केवल प्राणयुक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म के परे भी कुछ नहीं था। वही एक 'अविनाशी तत्व' तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ। सर्वप्रथम परब्रह्म-परमात्मा के मन में विराट् सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा शक्ति प्रकट हुई, तत्पश्चात् उस मन से सबसे पहले उत्पत्ति का कारण (बीज-सृजन सामर्थ्य) उत्पन्न हुआ। इस प्रकार ऋग्वेद सभी प्रकार के जीवन का एक ही स्रोत मानता है अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों एक ही स्रोत से पैदा हुए। इसी तथ्य को कठोपनिषद् में भी दोहराया गया है:

उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राणयुक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म के परे भी कुछ नहीं था। वही एक 'अविनाशी तत्व' तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ

न तत्र सूर्य भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युत भान्ति कुतऽयमग्नि:।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।।

(कठोपनिषद्, II, ii, 15)

इतना ही नहीं कठोपनिषद् में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए मुक्ति का एक ही मार्ग बताया गया है:

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।।
(कठोपनिषद् अध्याय 1, वल्ली 3, मंत्र 3)
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भक्तेत्याहुर्मनीषिण:।।
(कठोपनिषद् अध्याय 1, वल्ली 3, मंत्र 4)

अर्थात् मनुष्य का शरीर रथ है, मस्तिष्क लगाम है और आत्मा चालक है, जो कि रथ को दिशा प्रदान करती है और उसे मोक्ष की दिशा में जाने के लिए उद्यत करती है। यहाँ यह श्लोक स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू होता है। वेदों की रचना के लगभग (शता.1500- शता. 500 ई.पू.) 700 वर्षों के बाद 'मनुस्मृति' (1200 ई.पू.) में भी स्त्री-पुरुष के जन्म के बारे में इसी बात को दोहराया गया। मनु के शब्दों में:

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभु:।।

मनुस्मृति I, 32

परमात्मा ने मनुष्य जाति को स्त्री और पुरुष के रूप में, दो भागों में विभक्त किया। दोनों को मिलाकर विराट मनुष्य की रचना हुई।

इन उद्धरणों से यह तथ्य भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा तात्विक स्तर पर स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे से भिन्न तो मानती है किंतु इस विभिन्नता के आधार पर दोनों की स्थिति में कोई अंतर नहीं करती।

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री समानता का स्वर इस तथ्य से भी मुखरित होता है कि वेदों और उपनिषदों में हर वह शब्द जो पुरुष के गुणों एवं कार्यों को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है, ठीक वही शब्द स्त्रियों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। ''वेद यदि पुरुष को ओजस्वान्' (अथर्व0 8/5/4), ओज वाला कहता है तो स्त्री को ओजस्वती' (यजु0 10/3) कहता है। पुरुष यदि 'सहस्रवीर्य:' (अथर्व0 2/4/2), सहस्र पराक्रम वाला है तो स्त्री 'सहवीर्या' (यजु0 13/26) कही गई है। पुरुष यदि 'सहीयान्' (ऋ0 1/61/7), अत्यंत बल वाला है, तो स्त्री 'सहीयसी' (अथर्व0 10/5/43) बताई गई। पुरुष को यदि 'सम्राट्' (ऋ0 2/28/6) कहा, तो स्त्री को 'साम्राज्ञी' (ऋ0 1/85/46) कहा गया है। पुरुष यदि 'मनीषी' (ऋ0 9/96/8), मन का वशीकरण करने वाला है तो स्त्री 'मनीषा' (ऋ0 1/101/7) है। पुरुष को यदि 'राजा' (अथर्व0 1/33/2), कहा गया है, तो स्त्री को 'राज्ञी' (यजु0 14/13) कही गई। पुरुष यदि 'सभासद:' (अथर्व0 20/21/3), सभाओं के अधि कारी हैं, तो स्त्री 'सभासदा' (अथर्व0 पै, 8/8/9) है। पुरुष को यदि 'अषाढ:' (ऋ0 7/20/3), अपराजित घोषित किया, तो स्त्री 'अषाढा' (यजु0 13/26) के रूप में प्रसिद्ध हुई। पुरुष यदि 'यज्ञिय:' (ऋ0 1/142/3), यज्ञ करने वाला की उपाधि से युक्त है तो स्त्री 'यज्ञिया' (यजु0 4/19) है। यदि

पुरुष 'ब्रह्मायं वाच:' (ऋ0 10/71/11), ब्रह्म चतुर्वेद वेता नाम से शोभित हुआ, तो स्त्री भी 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' (ऋ0 8/33/19) 'ब्रह्मा' संज्ञा से विभूषित हुई, आदि आदि।'

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री और पुरुष को ज्ञान का समान रूप से अधिकारी एवं उन्हें समान रूप से क्षमतावान माना गया है। यही कारण है कि वेदों में ऐसी बहुत-सी ऋिषिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने वेदों की ऋचाएँ लिखी हैं। इनको महाद्रष्टा ब्रह्मवादिनी के नाम से जाना जाता है। वेदों में हमें ब्रह्मवादिनी रोमशा, लोपामुद्रा, 'विश्ववारा आत्रेयी', 'शष्वती आङ्गिरसी', अपाला, 'सिकता निवावरी', 'यमी वैवस्वती', इन्द्रस्नुषा, 'घोषा काक्षीवती', 'अगस्त्य स्वसा', अदिति, 'सूर्या सावित्री', इन्द्राणी, उर्वशा, 'दक्षिणा प्रजापत्या', जुहू, 'सरमा देवशुनी', वागाम्भृणी, 'कुशिका रात्रि, गोधा, 'श्रद्धा कामायनी', 'इन्द्र मातर:', यमी, 'शची प्रौलोमी', सार्पराज्ञी आदि ऋषिकाओं के नाम मिलते हैं।

उदाहरण के लिए (1) **ब्रह्मवादिनी रोमशा** ऋ. 1/126/7 मंत्रों की द्रष्ट्री है। वेद के इस सूक्त में रोमशा नाम बुद्धि का है। (2) **'लोपामुद्रा ऋषिका'** ऋ. 1/179, सूक्त की द्रष्ट्री है। 'लोपामुद्रा' प्रसन्नता हर्ष का नाम है। (3) **'विश्ववारा आत्रेयी'** ऋ. 5/28/1-6 सूक्त की द्रष्ट्री है। (4) **'शश्वती आङ्गिरसी'** 8वें मंडल के प्रथम सूक्त के 34वें मंत्र की द्रष्ट्री है। (5) **'आत्रेयी अपाला'** ऋषिका 8वें मण्डल के 91वें सूक्त की द्रष्ट्री है।[1]

यहाँ यह विवेचित करना तर्कसम्मत होगा कि जिस अवधि में हमारी ज्ञान परंपरा में स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष ही ज्ञान का अधिकार दिया गया था, इसके ठीक विपरीत उसी कालखंड में पाश्चात्य ज्ञान परंपरा में स्त्रियों के ज्ञानार्जन की क्षमता पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया। इसी अवधि में विश्वविख्यात ग्रीक दार्शनिक प्लूटो और अरस्तू ने अपने दर्शन में स्त्रियों का अनादर एवं अवमूल्यन किया। प्लूटो ने अपनी दोनों कृतियों 'रिपब्लिक' एवं 'लॉज' में स्त्रियों को कई प्रकार से पुरुषों से निम्नतर बताया। 'रिपब्लिक' में जब वह शिक्षा पर अपने विचार रखता है तो यह स्पष्ट रूप से कहता है कि हर प्रकार के नाटक मंचन में केवल पुरुषों को भाग लेना चाहिए औरतों को कदापि नहीं। प्लूटो के शब्दों में:

"Then those who are educating to become good men ought not—since they are men—to play the parts of women, young or old- They should not imitate a woman quarreling whith her husband, blaspheming against heaven, boasting and swollen in her own conceit, or grieving and wailing over misfortunes, still less should they impassionate a woman who is sick or who is in love or in labor".[2]

पुन: प्लूटो अपनी पुस्तक 'द लॉज' में उद्घोषणा करता है कि स्त्रियों में स्वभाव से ही अपनी कमजोरियों के कारण चतुरता एवं बातों को छुपाने की आदत होती है और उनमें सद्गुणों की प्राकृतिक क्षमता पुरुषों से कम होती है, इसलिए स्त्रियाँ संभावित रूप से पुरुषों से दोगुना अधिक खतरनाक होती हैं।[3]

प्लूटो का शिष्य अरस्तू, प्लूटो से भी अधिक स्त्री को दोयम दर्जा प्रदान करता है। उसने अपने दार्शनिक सिद्धांत जिसे Telelogical Theory of Reality कहा जाता है के अनुसार यह तर्क दिया है कि यथार्थ हमेशा गतिशील होता है। परंतु किसी भी प्राणी में विकास अचानक नहीं होता है। यह विकास हमेशा व्यक्ति के विकास के अंतिम कारण (Final Cause) के द्वारा निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए जैसे एक बीज विकसित होकर एक वृक्ष का रूप लेता है, एक बच्चा पूर्ण मनुष्य का रूप लेता है, उसी प्रकार एक लड़की अपने स्त्री होने के सम्पूर्ण महत्व को माँ बनकर ही प्राप्त करती है। परंतु, माँ बनने की प्रक्रिया में स्त्री केवल एक निष्क्रिय भागीदार है। वह प्रजनन की प्रक्रिया को केवल पदार्थ (Matter) प्रदान करती है। इस पदार्थ पर जो छाप पड़ती है, वह हमेशा पिता के द्वारा प्रदत्त होती है। पुरुष एक **सक्रिय अभिकर्ता** है इसलिए वह स्त्री से उच्च है। अरस्तू के शब्दों में:

Since "the Form, is *better* and more divine in its nature than the Matter, it is *better* also that the superior one should be separate from the inferior one- That is why whenever possible and so far as possible the male is separate from the female"-

(*Generation of Animals*, II, 932 a, ef. 1, 727b and II 728b). Woman is "as it were an infertile male", and even in regard to reproduction, "a male is male in virtue of a particular ability, and a female in virtue of a particular inability" (Generation of Animals, I, 729a, 731a.)

क्या हम यह विश्वास कर सकते हैं कि अरस्तू जैसा महान दार्शनिक स्त्रियों को दोयम दर्जा इस रूप में भी प्रदान कर सकता है, जैसा कि नीचे दिए हुए उद्धरण से स्पष्ट है:

"Virtues and action are nobler, when they proceed from those who are naturally worthier, for instance, from a man rather from a woman."[4]

अरस्तू के अनुसार, ''सद्गुण और सद्कार्य अधिक भद्र, कुलीन और महान तब होते हैं जब वे प्राकृतिक रूप से योग्य प्राणियों के द्वारा किए जाते हैं अर्थात् पुरुष के द्वारा, न कि स्त्रियों के द्वारा। इतना ही नहीं, अरस्तू अपनी पुस्तक पॉलिटिक्स में स्त्री और पुरुष द्वारा नैतिक गुणों की हिस्सेदारी में भी अंतर स्थापित करता है।''[5]

अरस्तू स्वयं यह स्वीकार करता है कि वह सुकरात के विपरीत यह मानता है कि

प्लूटो का शिष्य अरस्तू, प्लूटो से भी अधिक स्त्री को दोयम दर्जा प्रदान करता है। उसने अपने दार्शनिक सिद्धांत के अनुसार यह तर्क दिया है कि यथार्थ हमेशा गतिशील होता है। परंतु किसी भी प्राणी में विकास अचानक नहीं होता है। यह विकास हमेशा व्यक्ति के विकास के अंतिम कारण के द्वारा निर्धारित होता है

आश्चर्य की बात है कि करीब 2000 वर्षों के अंतराल के बाद भी पाश्चात्य राजनैतिक चिंतकों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदला। सत्रहवीं शताब्दी में कुछ ऐसे दार्शनिक अवश्य हुए हैं, जिन्होंने एक सीमा तक स्त्री-पुरुष समानता की बात कही। उदाहरण के लिए प्रख्यात फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त ने अपने समकालीन विचारकों हॉब्स और लॉक के विपरीत यह कहने का साहस किया कि स्त्री और पुरुष दोनों के पास समान बौद्धिक क्षमता होती है

संयम, धैर्य और न्याय स्त्री और पुरुष में समान रूप से नहीं होते हैं। ये गुण निश्चित रूप से पुरुष में अधिक होते हैं, इसीलिए पुरुष ही शासन करने के लिए उपयुक्त है। आश्चर्य की बात है कि करीब 2000 वर्षों के अंतराल के बाद भी पाश्चात्य राजनैतिक चिंतकों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदला। सत्रहवीं शताब्दी में कुछ ऐसे दार्शनिक अवश्य हुए हैं, जिन्होंने एक सीमा तक स्त्री-पुरुष समानता की बात कही। उदाहरण के लिए प्रख्यात फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त ने अपने समकालीन विचारकों हॉब्स और लॉक के विपरीत यह कहने का साहस किया कि स्त्री और पुरुष दोनों के पास समान बौद्धिक क्षमता होती है। परंतु उसकी विवेचना करते समय वह अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष में ही बौद्धिक क्षमता की अधिकता मानता है। परंतु यह भी सत्य है कि देकार्त के विचारों ने बहुत सारी लेखिकाओं को प्रभावित किया। मैरी ऐस्टेल पर विशेषकर देकार्त के विचारों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसी अवधि में ऑफ्रा बेन (Afra Ben 1640.1689) और मैरी आस्टेल (Mary Astell (1666.1731)) ने स्त्री की पारंपरिक भूमिका पर सवाल उठाए। परिवार के भीतर श्रम विभाजन को शोषण का कारण बताया एवं स्त्रियों को घर से बाहर निकलकर आर्थिक जीविकोपार्जन के लिए प्रेरित किया। देकार्त के पूर्व एक मात्र लेखिका जिसने स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन किया, वह थीं फ्रेंच लेखिका क्रिस्टिन डी0 पिसान (1364-1430)। परंतु मैरी आस्टेल को ही पश्चिम की पहली व्यवस्थित नारीवादी सिद्धांतकार के रूप में जाना जाता है। परंतु इनमें से किसी भी चिंतक ने नारी को महत्व उसके नारीसम्मत गुणों के आधार पर नहीं दिया, वरन् उसके मूल्य का आँकलन पुरुष सम्मत गुणों के आधार पर ही किया।

17वीं शताब्दी राजनैतिक रूप से बहुत ही उथल-पुथल का समय था। इंग्लैंड में गृहयुद्ध आरंभ हो चुका था। उस युग के सबसे प्रख्यात दार्शनिक हॉब्स (1588-1679) और लॉक (1632-1704) दोनों ने ही पुरुषों की शक्ति को उच्च माना और पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर नियंत्रण को न्यायोचित ठहराया। उन्होंने जहाँ पुरुषों को एक स्वतंत्र और ऐसे बौद्धिक व्यक्तियों के रूप में देखा, जिनमें अपने निहित हितों की पूर्ति की योग्यता थी, वहीं स्त्रियों को केवल ऐसी पत्नियों और माताओं के रूप में देखा, जो कि मूलतः कमजोर थी और 'इव' के श्राप से मुक्त होने में असमर्थ थीं, और जिनके हित पूरी तरह से परिवार के साथ जुड़े हुए थे। उनके पास किसी भी प्रकार के कोई राजनैतिक अधिकार नहीं थे। आगे चलकर इसी विचार से वाल्टेयर (1694-1778), डीडरॉट (1713-1784), माण्टेस्क्यू (1689-1755) ने भी अपनी सहमति व्यक्त की। यद्यपि यहाँ पाश्चात्य दार्शनिकों ने स्त्री के हितों को पूरी तरह परिवार के साथ जोड़कर देखा, परंतु स्त्री को पुरुष से निम्न सिद्ध करके, जबकि भारतीय दृष्टि में स्त्री-पुरुष दोनों के ही हित, परिवार व समाज से जुड़े हैं और उनमें कहीं भी उच्चता-निम्नता की विभाजक रेखा नहीं खींची गई है और न ही स्त्री सम्मत गुणों को पुरुष सम्मत गुणों से निम्न माना गया है।

इसी काल का सबसे अधिक विख्यात दार्शनिक और आधुनिक युग में प्रजातंत्र की अवधारणा का प्रथम उद्घोषक ज्यां जैक रूसो (1712-1778) भी स्त्रियों को दोयम दर्जा प्रदान करता है। उसके विचार में जहाँ स्त्री का कार्य लैंगिक और उत्पादन संबंधी क्षमता तक सीमित है वहीं पुरुष में बौद्धिक चिंतन और रचनात्मकता की असीम संभावनाएँ हैं। यहाँ रूसो की पुस्तक ऐमिली से दो उद्धरणों को देना समीचीन होगाः

The entire education of women must be relative to men. To please them, to be useful to them, to be loved and honored by them, to rear them when they are young, to care for them when they are grown up, to counsel and console, to make their lives pleasant and charming, these are the duties of women at all times, and they should be taught them in their childhood. To the extent that we refuse to go back to this principle, we will stray from our goal, and all the precepts women are given will not result in their happiness or our own.[6]

...it is not enough that a woman should be faithful; her husband, along with his friends and neighbours, must believe in her fidelity... Nature herself has decreed that woman, both for herself and her children, should be at the mercy of man's judgement... worth alone will not sffuice, a woman must be *thought-worthy*; nor beauty, she must be *admired*; nor virtue, she must be *respected*... "What will, people think" is the grave of a man's virtue and the throne of a woman's.[7]

रूसो की इसी विचारधारा का प्रख्यात जर्मन दार्शनिक हीगल (1770-1831) ने भी समर्थन किया। हीगल का मत था कि स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने के तो योग्य हैं परंतु उनके पास विज्ञान, दर्शन एवं कुछ कलात्मक उत्पादनों जिनमें शाश्वत क्षमता की आवश्यकता होती है, नहीं हैं। स्त्रियों के पास विचार, स्वाद और लालित्य हो सकता है, परंतु उनमें आदर्श को प्राप्त करने की क्षमता का अभाव है। यदि स्त्रियों के हाथ में राजनैतिक सत्ता आ जाए तो राज्य तुरंत ही खतरे में पड़ जाएगा, क्योंकि स्त्रियाँ अपने कार्यों को बुद्धि द्वारा नहीं वरन् अपनी निरंकुश इच्छाओं और मतों के आधार पर

करती हैं। यहाँ पर हीगल द्वारा अभिव्यक्त दो उद्धरणों को देना न्यायसंगत होगा।

"The dffierence in the physical characteristics of the two sexes has a rational basis and consequently acquires an intellectual and ethical significance. This significance is determined by the dffierence into which the ethical substantiveness as the concept, internally sunders itself in order that its vitality may become a concrete unity consequent upon this dffierence. Thus one sex is mind in its self-diremption into explicit personal self-subsistence and the knowledge and volition of free universality, i.e. the self-consciousness of conceptual thought and the volition of the objective final end. The other sex is mind maintaining itself in unity, as knowledge and volition of the substantive, but knowledge and volition in the form of concrete individuality and feeling. In relation to externality, the former is powerful and active, the latter is passive and subjective."[8]

"Women are capable of education, but they are not made for activities which demand a universal faculty such as the more advanced sciences, philosophy, and certain forms of artistic production. Women may have happy ideas, taste, and elegance, but they cannot attain the ideal. The dffierence between men and women is like that between animals and plants. Men correspond to animals, while women correspond to plants because their development is more placid and the principle that underlies it is the rather vague unity of feeling. When women hold the helm of government, the stale is at once in jeopardy, because women regulate their actions not by the demands of universality but by arbitrary inclinations and opinions."[9]

हीगल के इन्हीं विचारों का जर्मन दार्शनिक कांट (1724-1804) ने भी समर्थन किया है। कांट ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कुछ ऐसे विज्ञान होते हैं, जिनके लिए कुशाग्र बुद्धि, मीमांसा और गांभीर्य की आवश्यकता होती है, जो कि सिर्फ पुरुष के पास होती है। दूसरी तरफ कुछ ऐसे विज्ञान होते हैं, जिन्हें वाक-पटुता और भावना की जरूरत होती है और ये स्त्रियों के पास होते हैं। स्त्री की बौद्धिक क्षमता पुरुषों की तुलना में अपर्याप्त होती है। उसके शब्दों में:

"There are sciences which require a sharp mind, much reflection, and profundity. These are for the male sex. On the other hand there are sciences that require wit and a kind of feeling, and these are proper for women."[10]

पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन के इस लंबे इतिहास में मुख्य रूप से पहली बार मेरी वोल्स्टेनक्राफ्ट (1759-1797) ने अपनी पुस्तक 'विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ विमेन' में एक समृद्ध चिंतक के रूप में नारी स्वतंत्रता एवं समानता का उद्घोष किया और नारी की बौद्धिक क्षमताओं के विरोध में जो भी तर्क दिए गए थे, उनका तीव्र खंडन किया। वोल्स्टेनक्राफ्ट ने इस बात पर बहुत अधिक बल दिया कि स्त्रियों को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और नागरिक कानूनों की सुरक्षा का अधिकार है। स्त्रियों को विवाह करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। यदि स्त्रियों को समान अधिकार दिए जाएं तो स्त्रियां अपनी सभी भूमिकाओं में अधिक अच्छा प्रदर्शन करेंगी। उसके शब्दों में:

If men "would... but snap our chains, and be content with rational fellowship instead of slavish obedience, they would find us more observant daughters, more affectionate sisters, more faithful wives, more reasonable mothers- in a word, better citzens."[11]

मेरी वुल्स्टेनक्राफ्ट के बाद नारी स्वतंत्रता की सबसे तीव्र अभिव्यक्ति जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक *'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन'* में मिलती है, जो कि 1861 में लिखी गई और 1869 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में मिल का तर्क था कि स्त्रियाँ पुरुषों से निम्न इसलिए दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि बहुत अधिक सामाजिक दबाव एवं दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के कारण उनका विकास नहीं हो पाता है। यदि स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह अवसर प्रदान किए जाएं, तो वे भी पुरुषों के समकक्ष ही अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर सकेंगी। उसके शब्दों में सभी प्रकार के भेदभाव पूर्णतया गलत हैं। उनके विचार में, 'It ought to be replaced by a system of perfect equality, admiting no power or privilege on the one side, nor disability on the other'.[12] विवाह के विषय में भी स्त्रियों के लिए सभी प्रकार की वैधानिक दासता का अंत होना चाहिए। उन्हें रोजगार, शिक्षा मत देने का अधिकार, और राजनैतिक पदों पर निर्वाचित होने जैसे सभी अधिकार मिलने चाहिए।

परंतु मिल के स्त्री स्वतंत्रता संबंधी सभी विचार भारतीय ज्ञान परंपरा से बहुत भिन्न हैं। मिल भारतीय ज्ञान परंपरा की तरह स्त्रियों की प्रजनन क्षमता, गृह कार्यों, बच्चों के भरण-पोषण जैसे कार्यों को कोई महत्व नहीं देता है, बल्कि उस कोरे बुद्धिवाद का समर्थन करता है, जो बुद्धिवाद स्त्री को राजनैतिक पदों पर प्रतिष्ठित करने में सहायक हो सके। भारतीय चिंतन में तो

इस पुस्तक में मिल का तर्क था कि स्त्रियाँ पुरुषों से निम्न इसलिए दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि बहुत अधिक सामाजिक दबाव एवं दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के कारण उनका विकास नहीं हो पाता है। यदि स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह अवसर प्रदान किए जाएं, तो वे भी पुरुषों के समकक्ष ही अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर सकेंगी। उसके शब्दों में सभी प्रकार के भेदभाव पूर्णतया गलत हैं

स्त्री के देखभाल और पोषण जैसे गुणों के कारण उसे पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है। पुनः मिल जिस प्रकार से स्त्री एवं पुरुष को एक स्वतंत्र वैयक्तिक इकाई मानता है, ऐसी प्रकृति के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा में कोई स्थान नहीं है। दोनों स्त्री और पुरुष समाज और परिवार का एक अभिन्न अंग हैं।

मिल के पश्चात् राजनैतिक दर्शन के क्षितिज पर मार्क्स और एंजिल जैसे दो साम्यवादी विचारक उभरे। मार्क्स ने तो स्त्रियों के बारे में कुछ विशेष अपने दर्शन में नहीं कहा है, परंतु एंजिल्स ने अपनी पुस्तक '*द ओरिजिन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एंड द स्टेट*' में परिवार को प्राकृतिक मानने से पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। पुरातन काल में लिंगों के बीच समानता का संबंध था। किसी प्रकार की अधीनता या उच्चता नहीं थी, परंतु जैसे-जैसे पुरुषों ने संपत्ति अर्जित करना शुरू की, उनका अधिकार परिवार के अन्य सदस्यों पर बढ़ता गया और धीरे-धीरे स्त्री पुरुष की वासना की दास एवं उसके बच्चों को पैदा करने वाली एक औजार मात्र रह गई। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "Within the family he is the bourgeois and the wife represents the proletariat"[13] इस प्रकार एंजिल्स वैयक्तिक संपत्ति को ही स्त्री के शोषण का मूल कारण मानता है।

परन्तु अपने विश्लेषण में एंजिल्स यह भूल गया है कि एक सर्वहारा परिवार में भी स्त्री का शोषण हो सकता है, यदि स्त्री के प्रति पुरुष की दृष्टि सहयोग ही न हो। यदि मार्क्स और एंजिल्स के विचारों का गहराई से अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उदारवादियों की तरह मार्क्स की भी बुद्धि की अवधारणा पुरुष केंद्रित है और उनमें स्त्रियों की आवश्यकताओं एवं अनुभवों का अभाव है। मार्क्स जिस उत्पादक श्रम (Productive labor) की बात करता है, उसमें वह स्त्रियों के द्वारा किए गए कार्य को सम्मिलित नहीं करता है। चूँकि मार्क्स भी उदारवादियों की तरह बौद्धिक क्षमता पर बल देता है, भावनाओं पर नहीं, इसलिए वह स्त्री जाति के साथ न्याय नहीं कर पाया।

मार्क्स के विचारों की आगे चलकर स्वयं मार्क्सवादी आंदोलन से प्रभावित नारीवादी चिंतकों ने ही आलोचना की। उदाहरण के लिए चार्ल्ट पर्किन्स गिलमैन (1860-1935) ने मार्क्स का विरोध करते हुए कहा कि लैंगिक संबंध मात्र आर्थिक विकास का ही उप उत्पाद नहीं है बल्कि अपने आपमें एक मूल शक्ति है। उसके अनुसार विवाह कर पुरुष की वासना का दास होना एक प्रकार की वेश्यावृत्ति है। नारीसम्मत गुण जैसे शांति, स्नेह और सहयोग केवल परिवार तक ही सीमित नहीं होने चाहिए, बल्कि ये संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का आधार होना चाहिए। यहाँ गिलमैन 'विवाह' के केवल नकारात्मक स्वरूप की विवेचना करती है जबकि भारतीय परंपरा में विवाह स्त्री को अन्य पुरुषों की कुत्सित दृष्टि से बचाकर उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इसी कालखंड में अमेरिका की ऐमा गोल्डमैन (Emma Goldman) जैसी नारीवादी चिंतक का भी विश्वास था कि नारी की वास्तविक मुक्ति न तो वोट देने के अधिकार में और न ही न्यायपालिका में निहित होती है, बल्कि यह मुक्ति स्त्री की आत्मा में निहित होती है। यहाँ इमा गोल्डमैन ने नारी सम्मत गुणों में अपनी आस्था तो अभिव्यक्त की परंतु कहीं भी नारी को पुरुष से श्रेष्ठ नहीं माना।

इसी कालखंड में जर्मनी की दो प्रमुख मार्क्सवादी नारीवादी चिंतक हुई - बेबेल (Bebel), क्लारा जेटकिन (Clara Zetkin)। बेबेल का नारी चिंतन मात्र स्त्रियों के वोट देने के अधिकार के समर्थन तक सीमित रहा और क्लारा जेटकिन का नारीवाद पुरुषों से अलग स्त्रियों का एक स्वतंत्र और शक्तिशाली समूह बनाने के समर्थन तक सीमित रहा। इन दोनों ने कहीं भी स्त्री-पुरुष के सहयोग की बात नहीं कही। इसी अवधि में रूस की मार्क्सवादी नारीवादी चिंतक ऐलेक्जेंड्रा कोलोन्टाई (Alexandra Kollontai) (1872-1952) बहुत विख्यात हुई। उन्होंने नारी स्वतंत्रता का एकमात्र उपाय- चेतना में परिवर्तन- बताया। यह परिवर्तन किस प्रकार का होगा, किन सिद्धांतों के द्वारा होगा, किस दिशा में ले जाएगा, इसकी कोई चर्चा उनके दर्शन में नहीं मिलती। यदि हम उपरोक्त सभी देशों की साम्यवादी नारीवादियों के विचारों का विश्लेषण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन सभी का चिंतन शक्ति संबंधों का मात्र मोहरा बनकर रह गया।

वास्तव में, आधुनिक नारीवाद का जो स्वर सीमोन डी बोआ (Simone de Beauvoir) (1908-1986) की पुस्तक 'The Second Sex' से आरंभ होकर बेटी फ्रीडन की पुस्तक 'Feminine Mystique' 1963 से होता हुआ 1970 के दशक में केट मिलेट की 'Sexual Politic', शुल्मिथ फायरस्टोन की 'The Dialectic of Sex' जर्मेन ग्रीयर की 'The Female Eunuch' एवं ऐवा फिग्ज की 'Patriarchal Attitudes' तक पहुँचा और उन सबने नारीवाद के उस स्वरूप को हमारे सामने रखा, जिसमें हर प्रकार की असमानता एवं दासता के लिए पुरुष को उत्तरदायी ठहराया गया। सीमॉन का तो यहाँ तक मानना था कि शारीरिक शक्ति की कमी के कारण और बच्चों को जन्म देने की भूमिका के कारण समाज ने स्त्री को उत्पादन प्रक्रिया से अलग कर दिया है और इसी कारण समाज में निरंतर उसका शोषण होता रहा है। यदि स्त्री को इस शोषण से मुक्त होना है तब उसे स्वयं समाजीकरण की इस प्रक्रिया को चुनौती देनी होगी। इसी अवधि में उग्र नारीवादियों ने 'पितृसत्तात्मक समाज' की नई अवधारणा को जन्म दिया गया, जिसका अर्थ था कि एक पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष का स्त्री पर आधिपत्य होता है, परिवार के बड़ों

मार्क्स के विचारों की आगे चलकर स्वयं मार्क्सवादी आंदोलन से प्रभावित नारीवादी चिंतकों ने ही आलोचना की। उदाहरण के लिए चार्ल्ट पर्किन्स गिलमैन ने मार्क्स का विरोध करते हुए कहा कि लैंगिक संबंध मात्र आर्थिक विकास का ही उप उत्पाद नहीं है बल्कि अपने आपमें एक मूल शक्ति है। उसके अनुसार विवाह कर पुरुष की वासना का दास होना एक प्रकार की वेश्यावृत्ति है

का छोटों पर अधिकार होता है। इनके अनुसार पुरुष-स्त्री का संबंध हमेशा शक्ति का संबंध रहा है। वर्ग, रेस की सीमाओं से ऊपर सारा समाज पुरुष द्वारा स्त्री की अधीनता के सिद्धांत से संचालित होता है। पितृसत्तात्मकता का आरंभ बचपन से ही परिवार के अंतर्गत समाजीकरण की प्रक्रिया से शुरू होता है और जिसे बाद में शिक्षा, साहित्य और धर्म के द्वारा इस प्रकार बल प्रदान किया जाता है कि स्त्री स्वयं को वैसा ही समझने लगती है जैसा कि पुरुष उसके बारे में सोचते हैं।

तीसरी दुनिया के नारीवादी चिंतकों एवं कई भारतीय नारीवादी चिंतकों ने ऐसे विचारों का विरोध किया है। उनका तर्क है कि पाश्चात्य नारीवादी विचारक दूसरे राष्ट्रों की संस्कृति और इतिहास को जाने बिना ही अपने विचारों को उनपर थोपने का प्रयास करते हैं। वंदना शिवा, चंद्रा मोहन्ती, लीला अहमद, अंजालडुआ, ट्रिन्ह-टी-मिन्ह-हा, बेल हुक्स आदि इनमें से प्रमुख हैं। इन्होंने विकसित राष्ट्रों की व्यक्ति, स्वतंत्रता और समानता की अवधारणाओं को अस्वीकार कर दिया है। उन्होंने पश्चिम से आयातित व्यक्ति की धारणा को अमूर्त, स्वतंत्रता की अवधारणा को समाज विरोधी और 'समानता' की अवधारणा को 'एकरूपता' की अवधारणा कहकर आलोचना की है। परंतु यह भी विडंबना ही है कि इनमें से अधिकांश नारीवादियों ने भारतीय बौद्धिक परंपरा में सर्वत्र बिखरे हुए नारीवादी समानता के स्वरों का न तो अध्ययन किया है और न ही उसकी कोई आवश्यकता अनुभव की है।

इस प्रपत्र के दूसरे भाग में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री को पुरुष के समकक्ष ही नहीं वरन् उसे पुरुष से श्रेष्ठ बताया गया है। ऋग्वेद का निम्नलिखित मंत्र दृष्टव्य है:

''जो पुरुष देवों की उपासना नहीं करता है, धनादि दान नहीं करता है, उसकी अपेक्षा स्त्री शशीयसी सब प्रकार से श्रेष्ठ है। वे शशीयसी देवी प्रताड़ितों को जानती हैं, प्यासों को भी जानती हैं, धन की कामना वालों को जानती हैं और वे चिरंतन देव पूजा में अपने चित्त को लगाती है'' (*ऋग्वेद*, 5/61/6.7)।

गृहस्थाश्रम में पत्नी की केंद्रीय भूमिका की ओर संकेत करते हुए स्मृतिकार कहता है कि संतान, धर्मकृत्य, सुश्रूषा, श्रेष्ठ रति और पितरों के तथा अपने लिए स्वर्ग- ये सब स्त्रियों के अधीन हैं अन्यत्र स्मृतिकार कहता है कि अपना कल्याण चाहने वाले कन्या के पिता, भाई, पिता और देवर को चाहिए कि वे सदा कन्या का पूजन करें तथा वस्त्राभूषण से उसे अलंकृत करें

स्त्रियों की श्रेष्ठता के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण कहता है कि माता के रूप में स्त्री शिशु की श्रेष्ठतम आचार्य होती है। शतपथ ब्राह्मण में व्यक्त मत से सहमति प्रदर्शित करते हुए वशिष्ठ धर्मसूत्रकार कहता है कि बच्चे का मार्गदर्शन करने और चारित्रिक उन्नयन करने में स्त्री-पुरुष से सौ गुना श्रेष्ठ है (*वशिष्ठ धर्मसूत्र*, 12/48)। पाराशर स्मृतिकार लिखता है कि विपत्ति के समय में पत्नी पति का आश्रय होती है, अतएव पति को पत्नी का शोषण या अपमान कदापि नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार सर्प को पकड़ने वाला बलपूर्वक बिल में से सर्प को निकाल लेता है उसी प्रकार पतिव्रता पत्नी भी पति का नैतिक संकट की स्थिति में उद्धार करती है (*पराशरस्मृति*, 4/33)।

आपस्तम्ब माता के रूप में स्त्री की श्रेष्ठता का दावा करते हुए कहते हैं कि चूँकि माता अनगिनत रूप से निर्लिप्त भाव से पुत्र का पोषण व मार्गदर्शन करती है, अतएव पुत्र का यह परम कर्तव्य है कि वह अपनी माता का भरण-पोषण करे तथा उसका परित्याग कदापि न करे। पुत्र का यह कर्तव्य माता के पतित हो जाने पर भी बाधित नहीं होता अर्थात् यदि माता कुमार्गगामी भी हो जाए तब भी पुत्र अपनी माता के भरण-पोषण के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।

स्त्री की इसी श्रेष्ठता के कारण उसे कतिपय विशेषाधिकार व रियायतें भी दी गई हैं। मनु, जिसके विधान को हिंदू समाज में सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है, ने स्त्रियों को घर में देवी के समकक्ष माना है। स्मृतिकार लिखता है: ''संतानोत्पादन के लिए वस्त्राभूषण से आदर सत्कार के योग्य घर की शोभारूपिणी ये स्त्रियाँ घरों में लक्ष्मी के समान हैं (जिस प्रकार शोभा के बिना घर सुन्दर नहीं लगता, उसी प्रकार स्त्री के बिना भी घर सुंदर नहीं लगता; अत: श्री और स्त्री में कोई भेद नहीं)'' (*मनुस्मृति* 9/26)।

गृहस्थाश्रम में पत्नी की केंद्रीय भूमिका की ओर संकेत करते हुए स्मृतिकार कहता है कि संतान, धर्मकृत्य, सुश्रूषा, श्रेष्ठ रति और पितरों के तथा अपने लिए स्वर्ग- ये सब स्त्रियों के अधीन हैं (वही, 9/28। अन्यत्र स्मृतिकार कहता है कि अपना कल्याण चाहने वाले कन्या के पिता, भाई, पिता और देवर को चाहिए कि वे सदा (विवाह के बाद भी) कन्या का पूजन करें तथा वस्त्राभूषण से उसे अलंकृत करें। जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में इनकी पूजा नहीं होती उस कुल में सब कर्म निष्फल हो जाते हैं (*मनुस्मृति* 2/55.56)।

अन्य धर्मशास्त्रकारों ने भी ऐसे ही मत व्यक्त किए हैं। उदाहरणत: याज्ञवल्क्य स्त्री की पवित्रता के संबंध में लिखते हैं- ''सोम देवता ने (नारी को) पवित्रता दी, गंधर्व ने मधुर वाणी दी, अग्नि ने सब प्रकार से पवित्र होने की शक्ति दी; अतएव स्त्रियाँ (सर्वत्र) पवित्र होती हैं'' (*याज्ञवल्क्यस्मृति*, 1/71)। महाकाव्यों में भी ऐसे ही मत व्यक्त किए गए हैं। महाभारत में स्त्री को गृह में जीवन व प्रकाश का संचार करने वाली तथा पारिवारिक सुख तथा समृद्धि का स्रोत माना गया है। उसे पारिवारिक समृद्धि और सौहार्द की अधिष्ठात्री देवी तथा धैर्य एवं क्षमा आदि गुणों का मूर्त स्वरूप माना गया है। महाभारत में स्त्री को सिर्फ परिवार का संचालक ही नहीं वरन् संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के सुसंचालक के रूप में देखा गया है। स्त्री को संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का संचालक मानने का मूल कारण स्त्री में अंतर्निहित सृजन व पोषण की क्षमता है। वह सिर्फ बच्चे को जन्म ही नहीं

देती वरन् उसका पोषण भी करती है तथा उन्हें संस्कारों के माध्यम से नैतिक मूल्यों से अवगत कराती है। पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन के संचालन में स्त्री की अपरिहार्य भूमिका का व्यापक व प्रभावपूर्ण उल्लेख महर्षि विश्वामित्र ने किया है। महर्षि विश्वामित्र ने कहा है कि जीवन के चार मूलभूत लक्ष्यों- न्यायसंगत जीविका, भौतिक सुखों व संपदाओं की प्राप्ति व संरक्षण, इच्छाओं की पूर्ति तथा आध्यात्मिक उत्थान की प्राप्ति पत्नी पर निर्भर करती है।

स्त्री के महत्व व उद्धारक भूमिका के संबंध में ऐसी अनेक उक्तियों से भारतीय वैदिक व उत्तरवैदिक साहित्य भरा पड़ा है। दुर्गा सप्तशती में कहा गया है कि पत्नियां पुरुष का स्थूल जगत् से उद्धार कर उन्हें आध्यात्मिक जगत् की ओर उन्मुख करती हैं (*दुर्गा सप्तशती*, अर्गला स्तोत्रम्, 24)। मनुस्मृति कहती है, ''एक आचार्य दस उपाध्यायों के बराबर, एक पिता सौ आचार्यों के बराबर और एक माता सहस्रों पिताओं के बराबर होती है'' (*मनुस्मृति* 2/145)। महाभारत में पत्नी की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि पत्नी ही एकांत में प्रियवचन बोलने वाली संगिनी है। धर्मकार्य में ये स्त्रियां पिता की भांति पति की हितैषिणी होती हैं और संकट के समय माता की भांति दु:ख में हाथ बंटाती हैं (*महाभारत: आदिपर्व*, 74/13)। पारिवारिक जीवन की बागडोर स्त्रियों के हाथ में ही होती है ऐसा ऋग्वेद में उल्लिखित है। ऋग्वेद में नववधू को निर्देशित करते हुए कहा गया है कि आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें। वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण में रखने वाली बनें। वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें (*ऋग्वेद*, 10/85/26)। आप सास, श्वसुर, ननद और देवरों की साम्राज्ञी (महरानी) के समान हैं। आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हैं (*ऋग्वेद*, 10/85/46)।

उपरोक्त मंत्र सिद्ध करते हैं कि वैदिककाल में गृहस्थ जीवन में स्त्री की प्रस्थिति अत्यंत सशक्त थी। ऋग्वेद में पति एवं पत्नी शब्द का प्रयोग गृहस्वामी एवं गृहस्वामिनी के अर्थ में हुआ है। स्पष्ट है कि यहाँ उनके बीच उच्चता व अधीनता का नहीं वरन् पारस्परिक सहयोग का संबंध अपेक्षित है। यदि कहीं श्रेष्ठता की बात हुई है तो पुरुष की तुलना में स्त्री को ही श्रेष्ठ बताया गया है। महाभारत में कहा गया है कि हे राजन्! स्त्रियों का सदैव सम्मान किया जाना चाहिए। जहां स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवगण संतुष्ट होते हैं (महाभारत, अनुशासन पर्व, 15/5)। एक अन्य स्थल पर महाभारत में कहा गया है:

''संतान की उत्पत्ति, उत्पन्न हुए बालक का पालन-पोषण तथा लोकयात्रा का प्रसन्नतापूर्वक निर्वाह इन सबको स्त्रियों के अधीन समझें। इनके सम्मानित होने पर सभी कार्य सिद्ध होते हैं'' (*महाभारत*, अनुशासन पर्व, 46.11)।

मैकडोनाल्ड तथा कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि प्राचीनकालीन भारत में गृहस्थ जीवन में स्त्री को अत्यधिक सम्मान व स्नेहपूर्ण स्थान प्राप्त था। गृहस्थ जीवन में स्त्री के सम्माननीय स्थान के मूलत: दो कारण थे: प्रथम; यह मान्यता है कि व्यक्ति का जन्म तीन प्रकार के ऋणों- ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण- के साथ होता है और इन तीन प्रकार के ऋणों को क्रमश: तीन विधियों- वेदाध्ययन, यज्ञसंपादन तथा पुत्रों की उत्पत्ति- से चुकाया जा सकता है (*महाभारत,* अनुशासन पर्व, 12/28.55)। अत: पितृऋण से निवृत्ति बिना पत्नी के नहीं हो सकती क्योंकि वही पुत्रोत्पत्ति की माध्यम है। द्वितीय; कोई भी पुरुष सपत्नीक ही अतिथियों तथा ऋषिगणों का सत्कार कर सकता है। इस प्रकार गृहस्थ आश्रम जो सभी आश्रमों का आश्रय स्थल कहा गया है, उसकी आश्रय प्रदान करने की यह भूमिका पत्नी पर ही निर्भर करती है। जिस प्रकार समुद्र सभी नदियों को आश्रय देता है उसी प्रकार एक सुगृहिणी सभी का स्वागत करती है (*महाभारत*, अनुशासन पर्व, 12/266.9)। यह मान्यता है कि गृहस्थाश्रम में ही जरूरतमंद लोगों की सेवा कर श्रेष्ठतम यज्ञ का संपादन किया जा सकता है।

पत्नी, पुत्री, माता आदि भूमिकाएँ जिन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है, में स्त्री की स्थिति अत्यधिक सम्मानित है, साथ ही साथ प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ऐसी स्त्रियों के प्रति भी, जो नारीत्व के शास्त्रीय आदर्श को विर्दीण कर सामाजिक मानदंडों के विपरीत भूमिकाओं को स्वीकार करती हैं, मानवीय आचरण करने का निर्देश दिया गया है। पतित स्त्री (वेश्या) के प्रति धर्मशास्त्रों का दृष्टिकोण इस तथ्य की पुष्टि करता है। यहाँ तक कि 64 प्रकार की कलाओं की अधिष्ठात्री व रक्षिका होने के कारण समारोह के अवसर पर गणिकाओं की उपस्थिति शुभ मानी गई है।

इस प्रकार स्त्री के बिना दृश्य जगत् अकल्पनीय माना गया है क्योंकि समस्त लौकिक कर्तव्य स्त्री पर निर्भर होते हैं। मानवप्राणी ही नहीं वरन् देवगण भी स्त्री शक्ति के सहयोग के बिना अधूरे माने गए हैं। सौंदर्य लहरी में कहा गया है कि शिव एवं शक्ति, जाया एवं पति न्याय से प्रपंचरूप शरीर का निर्माण करने में समर्थ हैं। जाया (स्त्री) शक्ति युक्त है एवं उससे वियुक्त होकर शिव प्रपंच रूप संतान (अर्थात् सृष्टि) करने में समर्थ नहीं है (सौंदर्य लहरी, 1/1)।

इसके तीसरे अनुभाग में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के आरोप 'भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री को गौण स्थान प्रदान किया गया है' का उत्तर देने का प्रयास किया गया है।' अपने तर्क में ये विद्वान 3 बातें कहते हैं:

(क) कन्या के जन्म को सदैव ही शोक का विषय माना गया है।

पारिवारिक जीवन की बागडोर स्त्रियों के हाथ में ही होती है ऐसा ऋग्वेद में उल्लिखित है। ऋग्वेद में नववधू को निर्देशित करते हुए कहा गया है कि आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें। वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण में रखने वाली बनें। वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें। आप सास, श्वसुर, ननद और देवरों की साम्राज्ञी के समान हैं। आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हैं

(ख) स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया, अतः स्वाभाविक था कि वे योग्यता में पुरुष की तुलना में कम रहीं। सहशिक्षा का भी पूर्णतः निषेध किया गया।

(ग) स्त्री को विवाह-विच्छेद व पुनर्विवाह के अधिकार से भी वंचित रखा गया।

किन्तु उपरोक्त सभी तर्क सतही अध्ययन के परिणाम हैं क्योंकि प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन इन तर्कों की निस्सारता को सिद्ध करता है।

प्रथम आक्षेप के प्रत्युत्तर में अनेक साक्ष्य उद्धृत किए जा सकते हैं। वैदिक साहित्य इन तथ्यों को प्रमाणित करता है कि प्राचीनकाल में ऐसे दंपती थे जो पुत्री रत्न की प्राप्ति हेतु इच्छुक थे। वृहदारण्यक उपनिषद् में पंडिता पुत्री की कामना तथा उसके लिए विशेष प्रकार के कर्मकांड के संपादन का उल्लेख आता है-

''जो चाहता है कि मेरी पुत्री विदुषी हो और पूरे सौ वर्षों की आयु तक जीवित रहे, वह और उसकी पत्नी तिल और चावल की खिचड़ी पकाकर उसमें घी मिलाकर खायें। इससे वे उक्त योग्यता वाली कन्या को जन्म देने में समर्थ होते हैं।'' (*वृहदारण्यक उपनिषद्*, 4/4/17)

इस प्रकार सुसंस्कृत दंपती पुत्री रत्न की प्राप्ति के लिए उतने ही इच्छुक थे, जितने की पुत्र की प्राप्ति के लिए। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा कि सुसंस्कृत और योग्य कन्या पुत्र से श्रेष्ठतर है (*संयुक्त निकाय*, 3)। इस प्रकार की सुसंस्कृत कन्या कुल का गौरव संवर्द्धन करने वाली मानी गई है (*कुमारसंभवम्*, 6/63)। महाभारत के वनपर्व में कहा गया है- ''सौम्य। भगवान् ब्रह्माजी के कृपाप्रसाद से तुम्हें शीघ्र ही इस पृथ्वी पर एक तेजस्विनी कन्या प्राप्त होगी'' (*महाभारत*, वनपर्व, 293/17)। यजुर्वेद के एक मंत्र में नववधू को यह आशीर्वाद दिया गया है कि वह पुत्रों एवं पुत्री को पाप्त करने वाली हो (*यजुर्वेद*, 6/25)।

उपरोक्त उद्धरण इस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि भारतीय बौद्धिक परंपरा में पुत्री को कदापि अवांछनीय नहीं माना गया है। कुछ विद्वानों ने तो पुत्री को पुत्र से भी श्रेष्ठ बताया। उन्होंने तर्क दिया कि इतिहास में ऐसे अनेक पुत्रों का उल्लेख मिल जाएगा जो पितृहंता हुए किंतु एक भी ऐसी पुत्री का उल्लेख नहीं मिलता जिसने पिता का वध किया हो। इसके विपरीत ऐसी पुत्रियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने अभिभावकों को विपत्ति से उबारा। इस संदर्भ में कुन्ती एवं लोपामुद्रा का उदाहरण द्रष्टव्य है। सोमदेव के कथासरित्सागर में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को पुत्र के जन्म पर प्रसन्न एवं पुत्री के जन्म पर शोकमग्न नहीं होना चाहिए।

द्वितीय आक्षेप स्त्री के शिक्षा संबंधित स्थिति के आधार पर लगाया जाता है। इस आक्षेप का सशक्त प्रत्युत्तर वैदिककालीन ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की लंबी श्रृंखला से मिलता है। इन ऋषिकाओं ने वैदिक मंत्रों की रचना की जिन्हें वैदिक संहिताओं में भी सम्मिलित किया गया। सर्वाणुक्रमणिका में उल्लेख मिलता है कि ऋग्वेद के रचयिताओं में बीस महिला ऋषिकाएं थीं

द्वितीय आक्षेप स्त्री के शिक्षा संबंधित स्थिति के आधार पर लगाया जाता है। इस आक्षेप का सशक्त प्रत्युत्तर वैदिककालीन ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की लंबी श्रृंखला से मिलता है। इन ऋषिकाओं ने वैदिक मंत्रों की रचना की जिन्हें वैदिक संहिताओं में भी सम्मिलित किया गया। सर्वाणुक्रमणिका में उल्लेख मिलता है कि ऋग्वेद के रचयिताओं में बीस महिला ऋषिकाएं थीं। इनमें से कुछ कल्पित व्यक्तित्व हो सकते हैं किंतु साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनमें से कतिपय व्यक्तित्व यथार्थ थे, जिनमें प्रमुख हैं: विश्ववारा, सिक्ता, निवावरी एवं घोषा जिन्होंने ऋग्वेद के क्रमशः 1.79, 5.28, 8.90, 9.81.11-20 तथा 10.39-40 मंत्रों की रचना की। दसवें मंडल के 145वें तथा 159वें मंत्र की रचना निश्चिततः स्त्री ऋषिकाओं ने की थी यद्यपि उनके नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद है। यह स्पष्ट नहीं है कि क्या इन ऋषिकाओं का नाम वास्तव में इन्द्राणी और शची था जैसा कि परंपराओं से विदित होता है? इसके अतिरिक्त उन ऋषिओं जिनके लिए नित्य प्रार्थना और दैनिक तर्पण का विधान किया गया है उसमें कतिपय ऋषिकाओं यथा- सुलभा, मैत्रेयी तथा वादवा प्रतिथेयी का भी उल्लेख मिलता है (*आश्वलायन गृह्यसूत्र*, 3/4.4)।

विद्यार्जन के अधिकार के आधार पर स्त्रियों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है- ब्रह्मवादिनी तथा सद्योवधू। ब्रह्मवादिनी स्त्रियां जीवनपर्यंत दर्शन तथा धर्मविज्ञान के अध्ययन में संलग्न रहती थीं जबकि सद्योवधू स्त्रियां विवाह तक अर्थात् 15-16 वर्ष की अवस्था तक विद्यार्जन करती थीं। ब्रह्मवादिनी स्त्रियां जिनका संपूर्ण जीवन शिक्षा को समर्पित था, वे वेद के अध्ययन के अतिरिक्त पूर्व मीमांसा जैसे दुरूह विषय का भी अध्ययन करती थीं। महाभाष्य में एक स्त्री धर्मतत्ववेत्ता द्वारा कास्कृत्स्नी नामक मीमांसा पर आधारित ग्रंथ लिखे जाने का उल्लेख मिलता है और ऐसी छात्राओं को जो कास्कृत्स्नी विधा के अध्ययन में संलग्न थीं, को कास्कृत्स्ना कहकर संबोधित किया गया।

वृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित याज्ञवल्क्य- गार्गी संवाद उपनिषद्कालीन समाज में स्त्री की सशक्त शैक्षणिक स्थिति व दार्शनिक क्षमता का द्योतक है। राजा जनक की सभा में आयोजित दार्शनिक शास्त्रार्थ में विदुषी गार्गी ने अत्यंत जटिल तथा दुर्बोध दार्शनिक प्रश्न याज्ञवल्क्य के समक्ष रखे। उसके द्वारा उठाए गए प्रश्न इतने गहन व जटिल थे कि याज्ञवल्क्य ने रुष्ट होकर कहा-

''हे गार्गी! तू अपने प्रश्न के अतिप्रश्न न कर, अर्थात् न्यायोचित प्रकार को छोड़कर आचार्य परंपरा द्वारा पूछने योग्य शास्त्रगम्य देवता के अनुमान से मत पूछ। इस प्रकार पूछने से तेरा मूर्द्धा- मस्तक विपतित-विस्पष्टतया पतित न हो जाए। ..... अतः हे गार्गी! यदि तुझे मरने की इच्छा न हो तो अतिप्रश्न न कर।'' (*वृहदारण्यक उपनिषद्*, 3/6.8)

काव्य रचना के क्षेत्र में भी तत्कालीन स्त्रियों ने कीर्तिमान स्थापित किए हैं। ऐसी

अनेक कवयित्रियां हुई जो अपनी विशिष्ट काव्यशैली के लिए विख्यात रहीं जिनमें एक प्रमुख नाम शिलभट्टारिका का है, जो अपनी सरल काव्यशैली के लिए जानी गई। काव्य क्षेत्र में विजयंका को कालिदास के समकक्ष माना जाता है। संस्कृत साहित्यकारों में उसकी सशक्त और गौरवमयी छवि का संकेत इस तथ्य से मिलता है कि राजशेखर जैसे महान काव्यकार ने उसकी तुलना शिक्षा की देवी सरस्वती से की है।

तृतीय आक्षेप भी एकपक्षीय प्रतीत होता है क्योंकि धर्मशास्त्रीय साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्रियों को विवाह-विच्छेद तथा पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। स्वयं मनु जिस पर बहुधा स्त्री विरोधी होने का आरोप लगाया जाता है, ने विधान किया है कि उन्मत्त, पतित, नपुंसक और पापरोगी की सेवा नहीं करने वाली स्त्री का पति न तो त्याग करे और न उसके धन या भूषण आदि को ही ग्रहण करे (*मनु.* 9/79)। स्मृतिकार पुत्रों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते समय पंनर्भव पुत्र का उल्लेख करता है और अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री के पुनर्विवाह की स्वीकृति देता है- ''पति से छोड़ी गई या विधवा स्त्री अपनी इच्छा से दूसरे को पति बनाकर जिस पुत्र को उत्पन्न करती है, उसे 'पौनर्भव' पुत्र कहते हैं। यदि अक्षतयोनि में वह स्त्री दूसरे पति के पास जाए और द्वितीय पति से विवाह कर ले, अथवा कुमारावस्था वाले पति को छोड़कर दूसरे पति के पास जाकर पुनः प्रथम पति के पास आने पर स्त्री के साथ वह प्रथम कुमार पति विवाह कर ले, तो वह स्त्री 'पुनर्भू' स्त्री कहलाती है'' (*मनुस्मृति* 9/175.76)। अर्थशास्त्र में कौटिल्य विधान करता है-

''जिन शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियों के पति कुछ समय के लिए विदेश गए हों वे एक वर्ष तक, और पुत्रवती स्त्रियां इससे अधिक समय तक अपने पतियों के आने की प्रतीक्षा करें। यदि पति, उनके भरण-पोषण की पूर्ण व्यवस्था करके गए हों तो इससे दुगुने समय तक पत्नियाँ उसकी प्रतीक्षा करें। जिनके भोजन वस्त्र का प्रबंध न हो उनके बंधु-बांध वों को चाहिए कि चार वर्ष या इससे अधिक आठ वर्ष तक वे उनका प्रबंध करें। इसके बाद पहले विवाह में दिए गए धन को वापस लाकर वे उस स्त्री का दूसरा विवाह करने की छूट दे दें'' (*अर्थशास्त्र*, 3/60/4/3)। पाराशर का मत भी कौटिल्य के मत से साम्यता रखता है, उनके अनुसार पति के नष्ट हो जाने, मृत होने, विदेश चले जाने, नपुंसक तथा पतित होने- इन पाँच आपत्तियों के समय में कन्या का दूसरे पति के साथ विवाह कर देना चाहिए (*पाराशरस्मृति*, 4/30)। कौटिल्य स्त्री को विवाह विच्छेद का अधिकार देता है और साथ ही ऐसा प्रावधान भी करता है, जिससे पुरुष मनमाने ढ़ंग से पत्नी पर विवाह विच्छेद के निर्णय को आरोपित न कर सके। कौटिल्य निर्देशित करता है कि पति से द्वेष-वैमनस्य रखने वाली स्त्री, पति की इच्छा के विरूद्ध तलाक नहीं दे सकती है। इसी प्रकार पति भी अपनी पत्नी को तलाक नहीं दे सकता है। दोनों में परस्पर समान दोष होने पर ही तलाक संभव है (*अर्थशास्त्र*, 3/59/3/5)।

विधवा स्त्री के संदर्भ में उल्लिखित प्रावधानों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विधवा स्त्री के लिए तीन प्रकार के विकल्प बताए गए हैं: (1) आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना, (2) नियोग के द्वारा पुत्रोत्पत्ति करना तथा (3) पुनर्विवाह करना। महाभारत तथा पौराणिक साहित्य में ऐसे अनेक नायकों का उल्लेख आया है, जिनका जन्म नियोग के द्वारा हुआ। यहाँ तक कि मनु ने भी इस संस्था को स्वीकृति दी किंतु उसने यह शर्त रखी कि ऐसी विधवा जिसका पुत्र हो वह नियोग के द्वारा दूसरे पुत्र की प्राप्ति नहीं कर सकती है। ब्रह्मचर्य को विधवा स्त्री के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया गया है (*पाराशरस्मृति*, 4/31। साथ ही साथ विधवा के आर्थिक जीवन को सुरक्षित करने के लिए यथोचित उपाय किए गए हैं। महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि दीप, अनाथ, वृद्ध तथा विधवा स्त्रियों के योगक्षेम एवं जीविका का सदा ही प्रबंध करें (*महाभारत*, शांतिपर्व, 86/24; 42/10.12)। गौतम धर्मसूत्रकार ने विधवा को पति की संपत्ति में सपिंड संबंधियों के साथ दायाद के रूप में स्वीकार किया। विष्णु ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि पुत्र विधवा माता का परित्याग करता है तो संपूर्ण संपत्ति की उत्तराधिकारिणी विधवा होगी (*विष्णु धर्मसूत्र*, 17/43)। वृहस्पति ने तो और भी सशक्त स्वर में विधवा के आर्थिक अधिकार की वकालत की। वे तर्क देते हैं कि वेदों और स्मृतियों में पत्नी को पति का अर्द्धांग कहा गया है और जब तक मृतक का आधा शरीर जीवित है तब तक कोई अन्य संपत्ति का अधिकारी कैसे हो सकता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी के लिए संयुक्त रूप से प्रयुक्त संबोधन 'दंपती' सम्पत्ति पर पति-पत्नी के समान अधिकार का द्योतक है।

इन साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि नारीवादी चिंतकों का यह आक्षेप पूर्णतः सही नहीं है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों को उत्तराधिकार संबंधी अधिकार प्राप्त नहीं थे। यदि तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि तत्कालीन समाज में कतिपय मर्यादाओं के साथ स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष आर्थिक अधिकार प्रदान किए गए थे। सिर्फ भ्रातृयुक्त कन्याएँ ही पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकार से वंचित की गई। किंतु पुत्रहीन व्यक्ति की संपत्ति पर स्त्री के उत्तराधिकार को स्वीकार किया गया है। याज्ञवल्क्य ऋषि विधान करते हैं- ''जिसके बारह प्रकार के पुत्रों में से किसी भी प्रकार का पुत्र न हो उस पुत्रहीन के मर जाने पर पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाइयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति, बंधु,

यह आक्षेप पूर्णतः सही नहीं है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों को उत्तराधिकार संबंधी अधिकार प्राप्त नहीं थे। तत्कालीन समाज में कतिपय मर्यादाओं के साथ स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष आर्थिक अधिकार प्रदान किए गए थे। सिर्फ भ्रातृयुक्त कन्याएँ ही पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकार से वंचित की गई। किंतु पुत्रहीन व्यक्ति की संपत्ति पर स्त्री के उत्तराधिकार को स्वीकार किया गया है

शिष्य और ब्रह्मचारी में पहले-पहले के न होने पर उसके बाद वाले धन के अधिकारी होते हैं। यह विधि सभी वर्णों के लिए है'' (*याज्ञवलक्य स्मृति*, 2/135.136)।

वृद्ध मनु ने भी पुत्रहीन व्यक्ति की विधवा को पति की संपत्ति का अनन्य उत्तराधिकारी स्वीकार किया है- ''यदि मृतक की पत्नी का कोई पुत्र न हो और वह सात्विक एवं ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए किसी भी प्रकार की तामसिक वृत्ति में संलिप्त न हो तथा किसी परपुरुष से कोई अवैध संबंध न रखे तो ऐसी स्त्री अपने मृतक पति के लिए पिंडदान करने तथा मृतक की संपूर्ण संपत्ति प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है'' (*याज्ञवल्क्यस्मृति*, 2/135 पर मिताक्षरा टीका में उद्धृत वृद्ध मनु का मत। वृद्ध मनु के इस मत को दायभाग; 11/1/70 तथा विवाह रत्नाकर (पृ0 589) में भी उद्धृत किया गया है)।

मनु पैतृक संपत्ति पर पुत्री के अधिकार को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हुए कहता है कि पुत्रहीन नाना के सब धन को दौहित्र ही प्राप्त करता है। संसार में पौत्र तथा दौहित्र में कोई भेद नहीं है, क्योंकि उन दोनों के माता-पिता एक ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं (*मनु*. 9/131.133)। उसे माता के स्त्रीधन का प्रथम उत्तराधिकारी माना गया है। ये तथ्य सिद्ध करते हैं कि उत्तराधिकार संबंधी प्राचीन विधि समानता पर आधारित थी।

बहुधा धर्मशास्त्र में स्त्री की स्थिति के संदर्भ में अनेक भ्रांतियां प्राचीन शास्त्रों की गलत व्याख्या के फलस्वरूप भी उत्पन्न होती हैं। ऐसा एक उदाहरण डॉ. कुमकुम राय द्वारा की गई मनुस्मृति के एक श्लोक

क्षेत्र व बीज का संबंध अभिन्नता का है और एक दूसरे के अभाव में दोनों ही अस्तित्वहीन हैं। बीज कितना ही स्वस्थ क्यों न हो और क्षेत्र कितना ही उपजाऊ क्यों न हो, एक-दूसरे के अभाव में दोनों ही सृजन प्रक्रिया में अपूर्ण व असमर्थ हैं

की व्याख्या है। मनुस्मृति के नौवें अध्याय के 33वें श्लोक की व्याख्या करते हुए कुमकुम राय लिखती हैं-

''इस श्लोक में स्त्री के गर्भ को क्षेत्र (खेत) के समतुल्य बताया गया है जिसमें पुरुष अपना बीज आरोपित करता है। इस प्रक्रिया में बीज (पुरुष) की भूमिका प्रमुख तथा क्षेत्र (स्त्री) की भूमिका गैण मानी गई है क्योंकि बीज (पुरुष) सक्रिय कर्ता होता है और संतति की प्रकृति का निर्धारक होता है वहीं क्षेत्र (स्त्री की भूमिका मात्र निष्क्रिय ग्रहणकर्ता की होती है। साथ ही क्षेत्र (अर्थात् स्त्री के गर्भ) पर पुरुष का स्वामित्व होता है और इस प्रकार वह क्षेत्र से उत्पन्न होने वाले संतति पर भी अनन्य अधिकार रखता है।''[14]

इस व्याख्या के आधार पर कुमकुम राय यह आक्षेप लगाती हैं कि मनु ने स्त्री को पुरुष का अधीनस्थ माना है। किंतु बीज-क्षेत्र के इस उद्धरण को यदि उसके उचित संदर्भ में देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री को 'क्षेत्र' मानना तथा पुरुष को 'बीज' मानना किसी भी प्रकार स्त्री-पुरुष के बीच उच्चता व अधीनता के संबंध का नहीं वरन् उनके पारस्परिक पूरकता का द्योतक है। क्षेत्र व बीज का संबंध अभिन्नता का है और एक दूसरे के अभाव में दोनों ही अस्तित्वहीन हैं। बीज कितना ही स्वस्थ क्यों न हो और क्षेत्र कितना ही उपजाऊ क्यों न हो, एक-दूसरे के अभाव में दोनों ही सृजन प्रक्रिया में अपूर्ण व असमर्थ हैं। इस पारस्परिक पूरकता के संबंध की पुष्टि मनु के अगले श्लोक (9/34) से होती है, जिसमें कहा गया है कि कहीं पर बीज प्रधान है और कहीं पर क्षेत्र। जहाँ बीज तथा क्षेत्र (पुरुष तथा स्त्री)- दोनों समान हैं अर्थात् उन दोनों के मध्य में तीसरा कोई नहीं है, वह संतान श्रेष्ठ मानी जाती है (मनु. 9/34)। मनु का यह मत बीज की श्रेष्ठता व क्षेत्र की अधीनता की भ्रांति को पूर्णतः समाप्त कर देता है।

इस प्रकार भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री को पुरुष के अधीनस्थ नहीं वरन् सहयोगी के रूप में देखा गया है। यद्यपि दोनों के लिए विहित नियमों में बहुधा अंतर देखने को मिलता है किंतु इस अंतर का ध्येय एक को दूसरे पर आधिपत्य जमाने की स्वतंत्रता देना नहीं वरन् दोनों की भिन्न प्रकृतियों को यथोचित सम्मान देना है। भारतीय बौद्धिक परंपरा में विविधता को चाहे वह जाति या लिंग या प्रथाओं के आधार पर ही समाज की शक्ति के रूप में देखा गया और इसलिए अनावश्यक एकरूपता थोपने के प्रयास को सर्वथा वर्जित माना गया है। संभवतः स्त्री-पुरुष के धर्म व अधिकारों की भिन्नता भारतीय मनीषा का विविधता के प्रति इसी अनुराग का प्रतिफल है। Ⓜ

संदर्भ-

1. **ब्रह्मवादिनी रोमशा** ऋ. 1/126/7 मन्त्र की द्रष्ट्री है। वेद के इस सूक्त में **'रोमशा'** नाम बुद्धि का है, जिसमें उत्कृष्ट शब्द व ज्ञान रूप रोम हैं उसका नाम रोमशा है (**रु + मनिन्, लोमादित्वात्** पा. 5/2/100, **मत्वर्थ शः, टाप**)। सम्पूर्ण सूक्त में बुद्धि एवं बुद्धि से युक्त उद्यमी पुरुष का प्रतिपादन है। बुद्धि के नाना विवेक, मनन, चिन्तन रोमरूप हैं। यह बुद्धि दुराचारों का नाश करती है। इस बौद्धिक चिन्तन का जिस नारी ने इस सूक्त के माध्यम से दर्शन किया, उसका प्रचार-प्रसार किया, वह रोमशा नाम से कही गयी। जिसका तात्पर्य हुआ कि नारी विविध ज्ञान वाली है, सभी समस्याओं की समाधात्री है, अनेकानेक उलझनों की परामर्शदात्री है। यह बुद्धिमती रोमशा नारी जब भावयव्य क्रियाशील कर्मठ पुरुष की (**भावं क्रियां यौति मिश्रयति इति भावयवः, भावयव एव भावयव्यः**) पत्नी = रक्षिका होती है तभी उसका विकास होता है, यही सूक्त का सार है। **'लोपामुद्रा ऋषिका'** ऋ. 1/179, सूक्त का द्रष्टी है। **'लोपामुद्रा'** प्रसन्नता हर्ष का नाम है। **लोपां लुप्तां सम्पत्तिं, प्रसन्नतां, मुदं राति ददाति इति लोपामुद्रा**, जो लुप्त हर्ष को, सम्पत्ति को पुनः देवे, वह लोपामुद्रा कही जाती है। इस ब्रह्मवादिनी ऋषिका ने तपश्चर्या का नाद **'न मृषा**

श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव।' 1/179/3 'जो श्रम नहीं करता उसकी इन्द्रिय रूप देवगण रक्षा नहीं करते। परिश्रम द्वारा संसार की जीत में हम सबको पराजित कर दें', इस ऋचा द्वारा सर्वत्र फैलाया। ऋषिका लोपामुद्रा ने पति अगस्त्य के साथ तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते हुए स्त्री जाति के संयमित जीवन का उद्घोष किया। **'विश्ववारा आत्रेयी'** द्वारा दृष्ट ऋ. 5/28/1-6 सम्पूर्ण सूक्त है। सूक्त में नारियों द्वारा अग्निहोत्र करने का निर्देश है तथा नारियाँ पाप से दूसरों की रक्षा करती हैं इसका सन्देश है। विश्ववारा का अर्थ है विश्वं पापं वारयति सा विश्ववारा अर्थात् जो वेदोक्त अग्निहोतादि शुभ कर्मों का प्रचार कर दुराचारों का निवारण करती है उस सदाचार प्रचारिका स्त्री का नाम विश्ववारा है। **'शश्वती आङ्गिरसी'** 8वें मण्डल के प्रथम सूक्त के 34वें मन्त्र की ऋषिका है। सूक्त में प्रखर बुद्धि का विश्लेषण है। तदनु शश्वती नाम बुद्धि का है, जो सदा जीवात्मा के साथ रहती है। शाश्वत् वर्तते इति शाश्वती। अंगिरा पुत्री ने इस सूक्त का दर्शन किया, अतः बुद्धि विषयक ज्ञान का दर्शन करने के कारण उसका नाम ही शश्वती पड़ा। शश्वती ऋषिका ने नारी को बुद्धि का प्रतीक और पुरुष को आत्मा का प्रतीक मानकर दाम्पत्य-जीवन की शुद्धता का प्रचार किया।

'आत्रेयी अपाला' ऋषिका 8वें मण्डल के 91वें सूक्त की द्रष्ट्री है। अपाला का अर्थ हुआ 'स्वशरीरदानेन न कमपि पुरुषं पालयति सा अपाला' जो अपने शरीर दान के द्वारा किसी भी पुरुष का पालन न करे अर्थात् ब्रह्मचारिणी कन्या।

अपाला दृष्ट सूक्त में आत्मसंयमी नारी का प्रतिपादन है। आत्मसंयमी कन्या के निष्कलंक होने से माता-पिता सभी अपने को धन्य समझते हैं। ऐसी कन्या के लिए सूक्त में **'यती'** शब्द प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मचारिणी कन्या के उपलक्षण से जो भी आत्मसंयमी नारी है जिसे पति ने त्याग दिया है उसकी दृढ़ता, पवितर्ता किस प्रकार की हो, इसका मन्त्रों में कथन किया गया है और बताया है ऐसी नारी अपनी तपश्चर्या से पति आदि को भी चुनौती देकर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इसी प्रकार अन्य ऋषिकाओं के नाम का भी अनेक मंत्रों से घनिष्ठ संबंध है।

2. See, *The Republic*, Book III, trans., Richard W. Sterling and William C. Scott, New York, W.W. Norton, 1985, 387e-388a, 395, 431b-c, 605d-e.
3. Plato, *The Laws*, trans. with an introduction by Treavor J. Saunders, London, Penguin Books, 781, pp. 262-263.
4. Aristotle, *The Art of Rhetoric*, I, 1367a, trans. John Henry, Loeb Classical Library, London, 1967.
5. "They must all share in (moral goodness), but not in the same way—each sharing only to the extent required for the discharge of his or her function. The ruler, accordingly, must possess moral goodness in *its full* or perfect form because his function ... demands a master-artificer, and reason is such a *master artificer*; but *all other* persons need only possess moral goodness *to the extent* required of them. It is thus clear that ... temperance and similarly fortitude and justice-*are not*, as Socrates held, the *same* in a woman as they are in a man. Fortitude in the one, for example, is shown in connection with ruling; in the other, it is shown in connection with serving; and the same is true of the other forms of goodness .... To speak in general terms, and to maintain that goodness consists in "a good condition of the soul" or in "right action" or in anything of the kind, is to be guilty of self-deception. Far better than such general definitions is the method of simple enumeration of the different forms of goodness...." (Aristotle, Politics, I, 1260a(A) trans. Earnest Barker, Oxford University Press, London, 1946).
6. Emile, p. 703.
7. Emile, trans. B. Foxley, New York, 1969, p. 325, 328. Emphasis mine.
8. Hegel, *Philosophy of Rights*, trans. T.M. Knox, London, Oxford University Press, 1973, p. 144.
9. Ibid. pp. 263-64.
10. See, Blomberg Logic, vol. XXIV, p. 29; translated by Michael Young Lectures on Logic (Cambridge: Cambridge University Press, 1992), p. 17. As Young notes in his Introduction (p. xxiv), these lectures could not be earlier than 1770.
11. Mary Wollstonecraft, *Vindication of the Rights of Woman*, Harmondsworth, Penguin, 1978, p. 263.
12. J. S. Mill, *The Subjection of Women*, London, Virago, 1983, p. 1.
13. See, here taken from the book of, Valerie Bryson, *Feminist Political Theory*, 1992, The Macmillan Press Ltd., p. 71.
14. Kumkum Roy, '*Where Women are Worshipped there the Gods Rejoice*: *The Mirage of the Ancestress of the Hindu Woman*'. in Tanika Sarkar and Urvashi Butalia (ed.), Women and the Hindu Right, New Delhi, Kali for Women, 1995, p. 18.

हरियाणा में नया मिशन लागू

राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन व हनी मिशन (NBHM)

मधुमक्खी पालन, संवर्धन व प्रोजेक्ट्स पर अनुदान राशि

	मद	अनुदान राशि
1.	मधुमक्खी पालन उपकरणों की निर्माण इकाई	20 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 8 लाख रुपये प्रति परियोजना
2.	पंजीकरण एवं बीमा	प्रति परियोजना
3.	कस्टम हायरिंग केन्द्र	75 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 25 लाख रुपये प्रति परियोजना
4.	प्रशिक्षण 200 घंटे के लिए (25 प्रतिभागी प्रति बैच)	कौशल विकास के मापदंडों के अनुसार 800 रुपये प्रतिदिन/प्रतिभागी
5.	शहद और उत्पादों का संग्रह, व्यापार, ब्राँडिंग, विपणन आदि केन्द्र	30 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 20 लाख रुपये प्रति परियोजना
6.	शहद और अन्य प्रसंस्करण इकाइयां/ प्लांट	500 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 300 लाख रुपये प्रति परियोजना
7.	शहद और अन्य मधुमक्खी, शीत भंडारण, आदि	80 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 40 लाख रुपये प्रति परियोजना
8.	टेस्टिंग लैब	100 लाख रुपये के प्रोजेक्ट पर अधिकतम 50 लाख रुपये प्रति परियोजना

बी ब्रीडस, मधुमक्खी कालानिया, मधुमक्खी के बक्से (सुपर सहित), मधुमक्खी पालन उपकरण व प्रशिक्षण के लिए MIDH योजना के अंदर लाभ ले सकते हैं

- उपरोक्त योजना का लाभ लेने व अधिक जानकारी के लिए किसान/मधुमक्खी पालक अपने सम्बन्धित जिला उद्यान अधिकारी या उप-निदेशक उद्यान, एकीकृत मधुमक्खी पालन विकास केन्द्र, रामनगर, कुरुक्षेत्र से सम्पर्क करें।
- किसी भी मद में आवेदन के लिए उप-निदेशक उद्यान, एकीकृत मधुमक्खी पालन विकास केन्द्र, राम नगर, कुरुक्षेत्र पर ibdcramnagar@gmail.com पर किया जा सकता है।

उद्यान विभाग हरियाणा

सेक्टर-21, पंचकूला-134112

Website : www.hortharyana.gov.in | Email : horticulture@hry.nic.in

प्रभात

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

संपादक मंडल

• प्रो. देवेंद्र स्वरूप • श्री रामबहादुर राय • श्री अच्युतानंद मिश्र • श्री जवाहरलाल कौल
• श्री नंदकिशोर त्रिखा • श्री के.एन. गोविंदाचार्य • श्री ब्रजकिशोर शर्मा • डॉ. विनय सहस्रबुद्धे
• श्री अशोक टंडन • डॉ. सीतेश आलोक • श्री आलोक कुमार • श्री बलबीर पुंज
• डॉ. चमनलाल गुप्त • डॉ. भारत दहिया • श्री बनवारी • श्री हितेश शंकर • श्री प्रफुल्ल केतकर
• डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस' • श्री अतुल जैन • डॉ. राजीव रंजन गिरि • डॉ. वेद मित्र शुक्ल
• श्री राहुल देव • श्री उमेश उपाध्याय • श्री जगदीश उपासने • श्री सुशील पंडित
• श्री ज्ञानेंद्र बरतरिया • श्री भरत पंड्या • श्री मुज़फ़्फ़र हुसैन • श्री प्रभात कुमार • श्री स्वदेश शर्मा

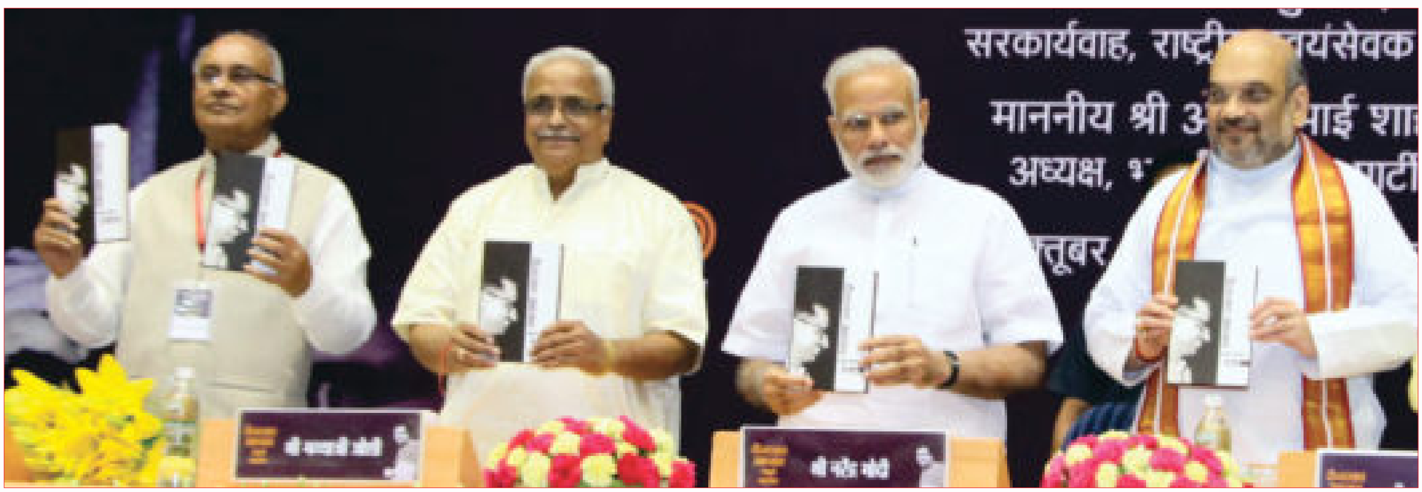

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

''यह पंडितजी की जीवन-यात्रा, विचार-यात्रा और संकल्प-यात्रा की त्रिवेणी है। यह दिन इस त्रिवेणी का प्रसाद लेने का दिन है। पं. दीनदयाल उपाध्यायजी कहा करते थे कि अपने सुरक्षाबलों को मजबूत किए बिना कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण नहीं रख सकता, इसलिए सुरक्षा-तंत्र मजबूत होना ही चाहिए। पंडितजी द्वारा कही गई बातें आज भी इतनी ही प्रासंगिक हैं।''

—**श्री नरेंद्र मोदी**, प्रधानमंत्री, भारत

''विचारों का छोटा सा बीज पं. दीनदयालजी ने बोया था, आज वह वटवृक्ष के रूप में खड़ा होकर न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में अग्रसर है। उनका साहित्य उनकी सरलता, दूरदर्शिता और संकल्पशक्ति का परिचय कराएगा।''

—**श्री अमित शाह**, राष्ट्रीय अध्यक्ष, भाजपा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2008 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23257555
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
दूरभाष : 011-23210074
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

भारतीय नारी- एक विहंगम अवलोकन

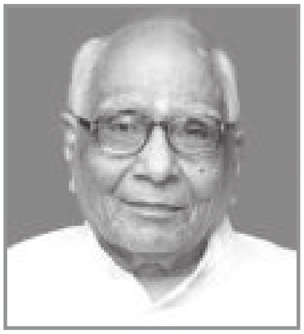

रंगा हरि

स्त्री–पुरुष ही नहीं, दुनिया के किसी भी प्राणी की जैविक भूमिका उससे अलग नहीं की जा सकती, जो है। प्रकृति निर्धारित भूमिका की बात छोड़ दी जाए तो भारत की मूल अवधारणा में स्त्री को कहीं भी पुरुष से कमतर नहीं माना गया है। पश्चिम की तरह भारत की स्त्री पार्श्व भूमिका की निर्वाहिका नहीं, बल्कि यहाँ स्त्री और पुरुष सच्चे अर्थो में सहगामी और सहधर्मी हैं। एक सांगोपांग विवेचन

इस इक्कीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक चर्चित विषयों में से एक है स्त्री एवं पुरुष के परस्पर संबंध। स्त्री एवं पुरुष इस मानव सभ्यता के दो अभिन्न घटक हैं। इन दोनों के संयोग के अभाव में सृष्टि असंभव है। जिस प्रकार विद्युतशक्ति के दो ध्रुवों के मिलन के बिना उस शक्ति की चेतनता का प्रवाह असंभव है उसी प्रकार मानव एवं प्राणी जगत की निरंतरता हेतु स्त्री एवं पुरुष युग्म का संगम अनिवार्य है। परन्तु विभिन्न प्रासंगिक एवं अप्रासंगिक कारणों से, विश्व भर में इन संबंधों की चर्चा उभर आई है और वह भी विशेषत: इस शताब्दी में, एवं इस चर्चा के भी कई आयाम हैं। इस विश्वव्यापी चर्चा से भारत प्रभावित न हो, यह असंभव है। वैश्वीकरण के इस युग में यह स्वाभाविक ही है कि भारत इस चर्चा का अंग बन जाए। अतएव, हमारे यहाँ के विचारवान बंधुओं ने भी इस विषय पर चिंतन करने का निश्चय किया तथा मुझे मेरे बंधुओं द्वारा जो विषय प्राप्त हुआ है वह है "हमारे राष्ट्रीय जीवन में स्त्री!"

परन्तु विषय में प्रवेश करने से पूर्व हमें अपनी विशेष पृष्ठभूमि की स्पष्ट अवधारणा का ज्ञान होना अनिवार्य है।

1– **भारत देश की प्राचीनता:** सर्वप्रथम तो यह तथ्य ध्यान में रखना होगा कि भारत आज उपस्थित 200 देशों जैसा अर्वाचीन देश नहीं है। भारत देश की आयु न जाने कितनी सहस्राब्दी है। न जाने कितनी सहस्राब्दियों से आज तक भारत का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन इसी प्रकार अभंग चलता आया है।

2– **लोक जीवन की विविधता:** इस देश की दूसरी विशेषता है, भारत की विविधता, जो अन्य भूखंडों के छोटे छोटे राष्ट्रों में किसी भी प्रकार परिलक्षित नहीं होती है। भारत की इसी विविधता का उल्लेख भारत के महर्षियों ने 'नाना धर्माण बहुधा विवाचसं' के रूप में किया है। महर्षियों ने इस विविधता को भिन्न भिन्न प्रकृति की अनेक भाषा बोलने वालों के जनसमूह के रूप में वर्णित किया है। इसके साथ ही इन मनीषियों ने यह भी स्पष्ट किया कि यह विविधतापूर्ण सामाजिक जीवन वैसा ही था जैसा चिड़िया के घोंसले में रहना अर्थात "भवति विश्वं एक नीड़।"

3– **उतार-चढ़ाव के अनुभव:** इसकी तीसरी विशेषता है उतार–चढ़ाव के अनुभव। लौकिक जीवन में भारत जैसा देश अन्यत्र नहीं मिलेगा जिसने इतिहास में इतने उतार–चढ़ाव देखे हों। यहाँ की जनता ने जहां एक ओर विशाल साम्राज्य की स्थापना की तो वहीं शताब्दियों की दासता का भी स्वाद चखा।

4– **आत्मसातीकरण:** इसकी चौथी विशेषता है नवागतों को आत्मसात करने की। जिस प्रकार हर प्रकार के तत्व को व्योम स्वयं में आत्मसात कर लेता है, शनै: शनै: आबद्ध करता है, वैसे ही भारत के इतिहास में आगंतुक आक्रांता भारत के परिवेश में आत्मसात हो गए, उन्होंने अपना अस्तित्व भारत के संग विलीन कर लिया। भारत वर्ष की यह अद्‌भुत पाचन क्षमता मानव जाति के इतिहास का अद्वितीय चमत्कार रही है।

5– **दार्शनिक:** भारत की जो एक और विलक्षण विशेषता है वह है दार्शनिकता। यदि हम अन्य देशों के साथ भारत की तुलना करते हैं तो पाएंगे कि जहां अधिकतर

अन्य देशों का दार्शनिक स्तर सेमेटिक मजहबों का है तो वहीं भारत मूलत: वैदिक चिंतन-मंथन के दार्शनिक स्तर पर अपनी पहचान स्थापित किए हुए है। इसी दार्शनिक स्तर ने भारत को अपूर्व अनुपम दृष्टिकोण प्रदान किया है। इन विशेषताओं को न तौलते हुए, न देखते हुए यदि हम मानवता से संबंधित किसी भी समस्या का आंकलन करेंगे तो वह पूर्णतया अशास्त्रीय एवं युक्तिहीन होगा, वह विकल एवं विकट होगा। स्त्री एवं पुरुष का संबंध भी इस विषय में अपवाद नहीं हो सकता है। दुनिया भर की समस्त विचारधाराओं को संज्ञान में रखते हुए भारत को अपने असल स्वत्व के प्रकाश में इस विषय का मूल्यांकन एवं विवेचन करना होगा।

श्रुतियों के कालखंड में स्त्री

भारत के मनीषियों ने ब्रह्म को आदिम अस्तित्व के रूप में वर्णित किया है। अर्थात ब्रह्म न तो पुरुष था और न ही स्त्री। ब्रह्म तो विशाल अनंत अखंड सत था। उस परम एक के भीतर इस विचार का स्पंदन हुआ कि मुझे अनेक बनना है। इसके फलस्वरूप उस सत के दो भाग हुए, दाने की दो दालों की भांति वह दो भागों में विभाजित हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद के दृष्टा के शब्दों में 'तस्मात् इदं अर्ध वृगलं इव'। वह पति पत्नी बन गए। - पति: च पत्नी च अभवंता- उससे मनुष्यों का जन्म हुआ। - तत: मनुष्या: अजायन्त' (बृाउ। अ। 1। ब्र 4-3)। आदि चौतन्य में जब इस विचार का प्रस्फुटन हुआ कि सृष्टि होनी चाहिए, उसी क्षण युगपत् स्त्री एवं पुरुष का आविर्भाव हुआ। उनका पति पत्नी का संबंध स्थापित हुआ तथा आगे जाकर मनुष्य जाति का जन्म हुआ। अर्थात यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता कि पुरुष प्रथम आया या स्त्री। दाने का दाल की तरह फट जाना, कितना सारगर्भित उदाहरण है। कौन सी दाल का प्रादुर्भाव सबसे पहले हुआ, कौन सोचेगा? कौन कहेगा? मानव के दो हाथों को बायाँ एवं दायाँ कह सकते हैं, परंतु उपर्युक्त प्रश्न का सुसंगत उत्तर देना अत्यंत ही दुष्कर कार्य है। यद्यपि हम यह नि:शंक रूप से कह सकते हैं कि दोनों ही अर्धांगी हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। हमारे द्रष्टाओं ने नर को अर्धांगी कहा है तो स्त्री को अर्धांगिनी। दोनों के परस्पर मिलन से ही पूर्णता प्राप्त होती है।

आगे जाकर समूचे भारतवर्ष का स्त्री विषयक दृष्टिकोण यही रहा। एक राष्ट्र के रूप में भारत के जीवन में जो भी उतार-चढ़ाव आए, उनके बावजूद यह दृष्टिकोण स्थिर रहा। उदाहरण के रूप में स्मृतिकार मनु भी मनुस्मृति में लिखते हैं "ब्रह्मा जी, अपने शरीर के दो भाग करके आधे भाग से पुरुष एवं आधे से स्त्री हो गए।"[1]

अर्थात भारतीय दर्शन की यदि हम बात करते हैं तो पाते हैं कि स्त्री एवं पुरुष सम-प्रधान हैं। निसर्ग कृत लिंगभेद के अतिरिक्त दोनों में कोई भेद नहीं है। स्त्री-पुरुष संबंधी प्रश्न हमारे कुछ भी हों, हमें इस मूल तथ्य को सदैव स्मरण रखना चाहिए। तभी हमें हमारी राष्ट्रीय अस्मिता के अनुकूल समाधान प्राप्त होगा। देवमंदिर कहें, राजभवन कहें या फिर अन्य कोई संस्थान, जहां तक पुरुष जा सकता है वहीं तक स्त्री भी जा सकती है। जहां तक ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जा सकते हैं वहीं तक अरुंधती भी जा सकती हैं। दोनों ही नभ में चिरकाल तक विराजमान हो सकते हैं। प्राकृतिक चेष्टाओं को यदि त्याग दिया जाए तो स्त्री एवं पुरुष की योग्यता समान है।

इस तथ्य को समझने के लिए हमारे लिए आवश्यक है कि हम कुछ और तथ्यों को जानें। सेमेटिक दृष्टिकोण, जिसे हम पश्चिमी दृष्टिकोण कहते हैं, में स्त्री का स्थान गौण है। उनके धर्मग्रंथों के अनुसार सृष्टि का निर्माण करने वाले ने सर्वप्रथम पुरुष का निर्माण किया तत्पश्चात पुरुष की आवश्यकताओं के अनुसार एवं उसकी चाह से पुरुष की पसली से स्त्री का निर्माण किया, जो पुरुष के मनोरंजन एवं आवश्यकतापूर्ति के लिए थी। अन्य शब्दों में यदि हम कहें तो स्त्री का निर्माण पुरुष से, पुरुष के लिए एवं पुरुष के उपरांत हुआ। एवं उसी स्त्री ने पुरुष को ईश्वर का वर्जित सेब खाने के लिए प्रलोभित किया। इसके परिणामस्वरुप वह आदिम पापिन बन गई। अब जो जनसमूह इस कथन पर आस्था रखेगा उसका दृष्टिकोण भारतीय जनमानस के दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न ही होगा।

साभार : http://www.allabouthinduism.info/tag/shruti/

वैदिक संहिताओं का अध्ययन करते समय यह भी संज्ञान में आता है कि भारत में पुरुष संतों के समान स्त्री भी ऋषि रूप में प्राप्त होती हैं। पवित्र मंत्रों की आत्मानुभूति दोनों को ही प्राप्त हुई है तथा दोनों की गणना ऋषिगणों में की गई। यद्यपि संस्कृत भाषा में स्त्री ऋषियों के लिए ऋषिका शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है अपितु यह भी सत्य है कि स्त्री ऋषि के लिए ऋषि शब्द का ही प्रयोग होता रहा। हमारे वैदिक पूर्वजों ने कभी स्त्री को हीन भावना से नहीं देखा। उन्हें जो आध्यात्मिक अधिकार भगवान से प्राप्त हुआ, उस आध्यात्मिक अधिकार को उन्होंने अपने अर्धवृगल अर्थात स्त्री के साथ बांटा। उन्होंने उस अधिकार पर एकाधिकार नहीं किया। हमारे पूर्वजों की आस्था ने उन्हें यह करने नहीं दिया। इसी आस्था का परिणाम था कि स्त्री भी वेदाध्ययन की अधिकारिणी मानी जाती थी। उसे भी वेदविद बनने का उतना ही अधिकार था जितना कि किसी पुरुष को। मंत्रद्रष्टा बन सकती थीं। ऋग्वेद की बात यदि हम करते हैं तो पाते हैं कि लगभग 25-30 ऐसी ऋषिकाओं का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। अकारादि क्रम से वह हैं - अगस्त्य, स्वसा, अदिति, अपाला, इंद्राणी, इन्द्रमातर:, इन्द्रस्नुषा, उर्वशी, कुशिकारात्री, गोधा, लोपामुद्रा, वाक्-आम्भृणी, विश्वावारात्रेयी, शची-पौलोमी, श्रद्धा - कामायनी, शश्वती - अंगीरसी, सरमा-देवशुनी, सूर्या-सावित्री, सार्पराज्ञी, सिकता-निवावरी। इन सभी ऋषियों के स्फुरित मंत्र कुल मिलाकर 266 हैं। सभी मंत्र दिव्य हैं। वर्तमान में भी विवाह के अवसर पर सूर्या-सावित्री के मंत्रों का ही उच्चारण किया जाता है। आज भी विवाह सूर्या-सावित्री के मंत्रों के बिना पूर्ण नहीं

होता है। यही स्त्री की शक्ति है कि उसके द्वारा बनाए हुए मंत्रों से ही विवाह संपन्न होता है। इस युग में भी वेद विधान से होने वाले विवाह में ऋषिका सूर्या के मंत्र ही हैं, जिन्हें अनिवार्य रूप से गाया जाता है। ऋग्वेद के दशम मंडल के 85वें सूक्त में सूर्या सावित्री द्वारा रचे गए कुल 47 मंत्र हैं। उन मंत्रों में से अंतिम मंत्र है "समस्त देव हमारे दोनों के हृदयों को परस्पर मिला दें। जल वायु, धाता सरस्वती, हम दोनों को संयुक्त करें।"

सूर्या जैसी ही दूसरी ऋषिका अदिति हैं। वेदों में उनकी भी गरिमा का उल्लेख है। वेदों में उनके कई नामों का उल्लेख प्राप्त होता है, सर्वताति (सर्वग्राहिणी), विश्वनज्य (विश्वहितैषिणी), ज्योतिष्मती (प्रकाशवती), राजपुत्रा, यज्ञवर्धिका आदि प्रमुख हैं। अदिति नाम का वास्तविक अर्थ है बंधनमुक्त, स्वाधीन एवं स्वतंत्र। अदिति का उल्लेख संहिताओं में पापों से बचाने वाली देवी के रूप में उद्घृत है। अदिति की उपमा एक सुन्दर नौका से की गई है। अर्थात अदिति रूप वाली वह नौका आकाशरूप वाली मंगलमयी है। वह यात्री को देवत्व प्रदान करने वाली है। उसकी यात्रा अत्यंत सुरक्षित और हर्ष देने वाली है। उस नौका रूपी ऋषिका में बैठने का पर्याप्त स्थान है। वह पूर्णतया छिद्रहीन है। मान्यता है कि सक्षम कर्णधारी वह हमें कल्याण में ले जाएगी। हमें पापों से मुक्त कराएगी। हम सब उसकी शरण लें।

इसी प्रकार की अन्य मंत्र रचने वाली भी ऋषिकाएं हैं। जितनी भी यह ऋषिकाएं थीं, वह सभी स्वयं में विशिष्ट थी, अनन्य थीं। उनमें से कोई भी एक दूसरे की प्रतिछाया नहीं थीं। अपाला ने स्वयं के तप से यह सिद्ध किया कि वह अबला नहीं है। अखंड तप से उसने अपने शरीर को रोगमुक्त किया एवं पति की प्रिया बनी। घोषा वेदप्रचारिका थीं। वहीं एक और अन्य जूहू ब्रह्मवादिनी महिला थीं एवं अपने जीवन के उतार-चढावों के बावजूद बृहस्पति की ब्रह्मजाया बन गई थीं। दक्षिणा अपने नाम के अनुरूप ही दान की प्रतिपादिका ब्रह्मवादिनी है। वह दानी व्यक्ति को ही सही राजा मानती हैं।[4] विश्व में सेवाधर्म से परिचित कराने वाली सर्वप्रथम महिला दक्षिणा ब्रह्मवादिनी ही हैं। आत्मसंयम का ज्वलंत दृष्टांत यदि हम कहीं पाते हैं तो वह

अदिति की उपमा एक सुन्दर नौका से की गई है। अर्थात अदिति रूप वाली वह नौका आकाशरूप वाली मंगलमयी है। वह यात्री को देवत्व प्रदान करने वाली है। उसकी यात्रा अत्यंत सुरक्षित और हर्ष देने वाली है। उस नौका रूपी ऋषिका में बैठने का पर्याप्त स्थान है। वह पूर्णतया छिद्रहीन है। मान्यता है कि सक्षम कर्णधारी वह हमें कल्याण में ले जाएगी। हमें पापों से मुक्त कराएगी। हम सब उसकी शरण लें

है विदर्भ राजा की एकमात्र पुत्री एवं ऋषि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा में। कहा जाता है कि अम्भृणी ऋषि की पुत्री वागाम्भृणी अद्वैत दर्शन की एक वैदिक उपज्ञाता हैं। वह महर्षिगण जिन्हें सबसे पहले राष्ट्र का बोध हुआ, जिन्होनें सबसे पहले राष्ट्र दर्शन को लिखा, वागाम्भृणी उन्हीं महर्षियों में से एक हैं। उन्होंने कहा था "मैं समस्त राष्ट्रीय संपदा की स्वामिनी हूँ। यज्ञीय विभूतियों में मैं ही प्रथम ज्ञानवती हूँ।[5]

मुझे प्रतीत होता है कि मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं के इतने उदाहरण पर्याप्त होंगे। जिज्ञासु अतृप्तगण कृपया इसका विस्तृत अध्ययन करें और अपने देशवासियों का ज्ञानवर्धन करें। यह देश अवश्य ही उनके प्रति कृतज्ञ रहेगा।

वेदों एवं उपनिषदों के साहित्य में मने मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं के जैसे ही अन्य कथापात्र भी परिलक्षित होते हैं। उनमें से वाचक्नवी गार्गी का स्थान अद्वितीय है। नि:शंक कहा जा सकता है कि बृहदारण्यक उपनिषद के मुख्य कथापात्र महाद्रष्टा याज्ञवल्कय और गार्गी हैं। गार्गी अडिग अटल बिना किसी लिंगभेद वाले भाव के, अदम्य आत्मविश्वास से, सात्विक ज्ञाननिष्ठा से, पूर्ण तर्क शुद्धता से याज्ञवल्क्य से इस प्रकार शास्त्रार्थ करती हैं कि एक उदाहरण बनकर प्रस्तुत होती है। गार्गी में कोई झिझक नहीं है, गार्गी में स्वयं के ज्ञान को लेकर एक गौरव भाव है। वह जब शास्त्रार्थ करती हैं तो स्त्रियोचित गरिमा के साथ अपने तथ्यों को प्रस्तुत करती हैं। इस शास्त्रार्थ को सुनकर महाराज जनक एवं अन्य बहुश्रुत श्रोतागण अमृतानंद के महार्णव में खो जाते हैं। यह भारतीय आध्यात्मिक इतिहास की सबसे स्वर्णिम बेला है। न जाने कितने लोग इन अमूल्य क्षणों के साक्षी बन रहे हैं।

हम सबने देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण इन तीन ऋणों के विषय में सुना है। परंतु हमारे आध्यात्मिक इतिहास में मातृऋण का भी विलक्षण उदाहरण प्राप्त होता है। माण्डुकी एक महान ऋषि थे। उनकी तीन पत्नियां थीं। तीसरी पत्नी शूद्र्कुल की थीं। उनका नाम इतरा था। इतरा का एक पुत्र था महीदास। होता यह था कि जब भी माण्डुकी ऋषि पडितों के मध्य जाते तो वह अन्य पत्नियों के पुत्रों को ले जाते, और महीदास को छोड़ जाते। एक दिन सभी भाई पुन: अपने पिता के साथ किसी सभा में गए। वहां पहुँचते ही महीदास को उन्होंने सबसे अलग बैठा दिया। यह देखते ही बालक का कोमल हृदय अत्यंत ही आहत हुआ और पिता ने भी अपने पुत्र के हृदय की पीड़ा को नहीं समझा। घर पहुँचते ही महीदास ने यह पूरा का पूरा प्रसंग अपनी माँ को सुनाया। माँ का हृदय पीड़ा से भर उठा। माँ भी इस भेदभाव को स्वीकार नहीं कर पाई तथा अत्यंत ही पीड़ा से भरकर उन्होंने अपने पति का घर त्याग कर वन की शरण ली। इतरा स्वयं एक शिक्षित स्त्री थीं। पति से भी उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। उसने अपने पुत्र को तप:पूर्ण शिक्षा प्रदान की। महीदास ज्ञानी बन गया। पंडितों की सभा से उसे निमंत्रण प्राप्त होने लगे। एक बार उसे पंडितों की एक सभा का निमंत्रण मिला। सभा में शास्त्रार्थ हुआ, और उनके द्वारा लिखे गए ब्राह्मण को वेद्विदों ने स्वीकारा। एक मत से सभी ने उस ब्राह्मण को महीदास का नाम देने का निश्चय किया। परन्तु महीदास ने सभा में खड़े होकर विनम्रतापूर्वक कहा "मैंने जो कुछ सीखा और समझा और लिखा उसका पूरा का पूरा श्रेय मेरी माता को जाता है। अत: आप समस्त वेदवत्ताओं से मेरी प्रार्थना है कि आप इसे मेरी माता के नाम पर करें!"

सभा में उपस्थित सभी सदस्यों ने इसका करतल ध्वनि से स्वागत किया तथा ब्रह्मवेत्ता महीदास कृत ब्राह्मण को महीदास की माँ इतरा के नाम पर ऐतरेय नाम प्रदान किया। महीदास ने मातृऋण चुकाया और ऐतरेय ब्राह्मण का नाम शाश्वत हो गया।

इसी प्रकार का एक और बोध प्रसंग है केन उपनिषद का। अनीश्वरीय शक्ति पर विजय प्राप्त करने के उपरांत इंद्र, अग्नि एवं वायु गर्व से उन्मत्त हो गए थे। उन्हें स्वयं की शक्ति पर अभिमान हो गया था एवं वह किसी को भी कुछ नहीं समझते थे। तभी उन्हें उचित सबक देने तथा विद्या से अवगत कराने के लिए महाकाय यक्ष उनके सम्मुख आया। और उसने अग्नि एवं वायु की शक्ति की परीक्षा ली। दोनों ही इस परीक्षा में विफल रहे। यक्ष ने एक तिनका अग्नि के सम्मुख रखा, वह उसे जलाने में एवं वायु उसे उड़ाने में विफल हुआ। दोनों की इस असहाय स्थिति को देखकर उद्विग्न हुए देवेन्द्र जब रंग पर आए तो महाकाय यक्ष गायब हो गया तथा उसके स्थान पर एक सर्वांगविभूषिता स्त्रीस्वरूपा देवी प्रकट हुई। और उन्होंने कहा "मैं उमा हेमवती हूँ। यही कहने आई हूँ कि आपकी शक्तियाँ सीमित हैं। वह इस असीमित ब्रह्मशक्ति का सहस्रांश भी नहीं हैं!" इस प्रकार से इन तीनों देवताओं का गर्वभंग हुआ। इस महत्वपूर्ण प्रसंग से यह भी बोध होता है कि ईश्वरीय शक्ति स्त्री का भी रूप धर सकती है।[6]

इस प्रकार के कई उदाहरण हमें वैदिक साहित्य संहिता में प्राप्त होते हैं। जिनसे कई बातें प्रमाणित होती हैं यथा-

उस कालखंड में भी परिवार की न्यूनतम इकाई कुटुंब था। उस काल में स्त्री एवं पुरुष में विभेद नहीं था। दोनों एक ही इकाई के दो पक्ष थे। उसके लिए रथ के दो पहियों की उपमा प्रदान की गई है।

उस काल में बाल विवाह नहीं था। विवाह होने पर पिता कन्या से भी उसका अभिमत पूछता था। कहीं कभी पिता कन्या के हित के अनुसार एवं कन्या की इच्छा के अनुसार ही वर का चयन करता था। जैसे सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या का पाणिग्रहण उसकी इच्छा के अनुसार किया था। किंतु हर प्रकार की विवाह की मुख्य बात थी कुटुंब की दृढता एवं भद्रता। अतः सभी वैदिक विवाहों में सप्तपदी कर्म का आग्रह था। अग्निदेव को साक्षी मानकर वधू द्वारा रखे गए सात कदमों से अभिप्राय था कि प्रथम पद से अन्न, दूसरे से शक्ति, तीसरे से व्रत विधान, चौथे से मैत्री, पांचवे से गो संपदा, छठे से धन संपदा और सातवें से पूर्वजों का मंगला प्रसाद मिलता रहे। संक्षेप में इससे नवपरिणीता कन्या कुटुंबनी अथवा गृहलक्ष्मी बन जाती। उसी दिशा में आगे बढकर पत्नी संबंधित अन्य शब्दों का भी विकास हुआ। प्रतिदिन के यज्ञ कर्म में साथ रहकर सहयोग करने वाली को पत्नी कहा गया।[7] संतानोपत्ति द्वारा वंश परंपरा को अक्षुण्ण रखने वाली है दारा।[8] विवाह में कन्यादान एवं पाणिग्रहण के उपरांत कन्या के लिए सर्वप्रथम स्त्री शब्द का प्रयोग किया गया। इसका अर्थ हुआ कि स्त्री वह है जो नर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर गृहस्थी का कार्य करने, यज्ञ करने, दान देने, अतिथि-साधु-भिक्षुओं को सुभिक्षा देने का कार्य करती है। संक्षेप में कहा जाए तो वह गृहस्थाश्रम का धर्म पालन करने के लिए बाध्य थी। भार्या का अर्थ है घर का भरण पोषण करने वाली स्त्री। कई लोग इस शब्द का अर्थ उचित नहीं लेते हैं और कहते हैं कि जो भर्ता के अधीन है वही भार्या है। परंतु पाराशर स्मृति यह स्पष्ट लिखती है कि "घर वही है जहां पर भार्या रहती है। गृहस्थ को गृही तभी कहते हैं, जब वह भार्या के साथ रहता है।[9] गर्भ का आधान जिसमें होता है वह स्त्री है।[10] दारा का शब्द विशेष ध्यान देने लायक है। उसमें विसंगति प्रतीत होती है। यह स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है, परंतु यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से सदैव ही पुल्लिंग है। आगे चलकर यह बहुवचन भी है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के पीछे व्याकरण न होकर व्यावहारिक तथ्य था। मानव समाज की सबसे पहले गठित इकाई अर्थात गृह, उसके द्वार संभालने वाली स्त्री, उसे दारा कहा गया। (यह स्मरण रहे कि मराठी में द्वार को दारा कहते हैं।) जैसे कई प्राचीन मंदिरों के दो दो पालक होते हैं, उसी प्रकार गृह मंदिर के चारों ओर की पालिका मानी गई कार्यदक्षा भार्या को दाराः कहा गया, जिनका दायित्व बहुमुखी था। इससे यह पूर्णतया स्पष्ट हुआ कि महिला संबंधित वैदिक दृष्टिकोण गार्हिक दायित्व पर आधारित था, न कि वैषयिक। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन पूर्वजों ने संतानोत्पत्ति का कार्य गौण माना था।

ऊपर वर्णित शब्द जाया से स्पष्ट है कि जो महिला गर्भाधान हेतु अक्षम है उसे जाया न माना जाए। अतः संतति की दृष्टि से अतिरिक्त विवाह मान्य था। विधवा विवाह भी मान्य था। विधवा का परिणेता दिधिषु कहलाता था, स्त्री परपूर्वा मानी जाती थी एवं दोनों के पुत्र को पौनर्भव के रूप में जाना जाता था। सामान्यतया समाज में एक पत्नी धर्म का ही पालन होता था। विवाह के नियम कड़े नहीं थे, अपितु वह धर्म के मूल्यों एवं आस्थाओं पर आधरित थे।

उत्तराधिकार की दृष्टि से पुत्र का होना अधिक काम्य माना जाता था, परंतु ऐसा नहीं था कि स्त्री संतान का स्वागत नहीं था। कन्या को विद्या ग्रहण का, यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार था। वेदवेत्ताएं दो प्रकार की हुआ करती थीं। सद्योद्वाहा एवं ब्रह्म वादिनी। वेदाध्ययन पूर्ण होने तक अविवाहित रहने वाली थीं सद्योद्वाहा अर्थात समर्पित विद्यार्थिनी। विद्या प्राप्ति के पश्चात भी जीवनव्रती बनकर एकनिष्ठ जीवन बिताने वाली हुआ करती थी ब्रह्मवादिनी अर्थात संन्यासी की संन्यासिनी। बाद में इस परंपरा को महात्मा बुद्ध ने आगे बढ़ाया।

पत्नी का अर्थ और उसका महत्व बताते समय उसकी यज्ञ संबंधी सहकारिता का उल्लेख किया गया था। यहाँ पर उससे

वेदवेत्ताएं दो प्रकार की हुआ करती थीं। सद्योद्वाहा एवं ब्रह्मवादिनी। वेदाध्ययन पूर्ण होने तक अविवाहित रहने वाली थीं सद्योद्वाहा अर्थात समर्पित विद्यार्थिनी। विद्या प्राप्ति के पश्चात भी जीवनव्रती बनकर एकनिष्ठ जीवन बिताने वाली हुआ करती थी ब्रह्मवादिनी अर्थात संन्यासी की संन्यासिनी। बाद में इस परंपरा को महात्मा बुद्ध ने आगे बढ़ाया

थोड़ा और अधिक कहना ही उचित होगा। वैदिक संहिता काल में स्त्री को कई स्वतंत्र यज्ञ कराने का भी अधिकार था। उसका उल्लेख भी हमें प्राप्त होता है। कई ऋचाएं ऐसी हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री को यज्ञ में भाग लेने, यज्ञ करने तथा दूसरों से यज्ञ कराने का पूरा अधिकार था। ऐसी स्त्रियों के लिए संहिताओं में शुद्धा, पूताः, यज्ञीया आदि स्त्रीलिंग बहुवचन के विशेषण दिए गए हैं। अर्थव कहता है "यह पूज्य शुद्ध स्त्रियाँ हैं, इनको मैं ज्ञानियों के हाथों में पृथक पृथक प्रदान करता हूँ। मैं जिस कामना से यज्ञ करता हूँ, वह मेरी कामना सफल हो।"[11] इसके अतिरिक्त पति पत्नी द्वारा संयुक्त अनुष्ठानों द्वारा वर्णन है, पराशर ऋषि कहते हैं कि "हे अग्ने, उन याजकों ने सम्यक प्रकार से जानकार अपनी पत्नियों सहित नमस्कार के योग्य तेरे घुटनों के बल बैठकर पूजा की।"[12] इसी प्रकार व्रतनिष्ठ केली कन्या के यज्ञानुष्ठान का दृश्य भी है। यह वर्णन मिलता है आत्रेयी अपाला का। उसका वर्णन है "नदी की तरफ स्नान के लिए जाती हुई कन्या ने मार्ग में सोम को प्राप्त किया। वह उसे घर लाते हुए बोली "मैं तुझे इंद्र के लिए निचोडूँगी, हां इंद्र के लिए ही निचोडूँगी।"[13]

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास तीनों ही आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम है। यही आश्रम भारतीय समाज घटना का मूल सिद्धांत है। इस आश्रम व्यवस्था का केंद्र घर और उसका संचालन करने वाली गृहणी है। भारतीय संदर्भों में कहा भी गया है "गृहणी गृहमुच्युते!। घर के समस्त दायित्वों का संचालन करने वाली दारा कहलाई, यह कथन पूर्व में भी कहा जा चुका है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए घर में उसे विशेष कार्यो का जो प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था, उसका पूरा का पूरा उत्तरदायित्व उसकी माँ पर होता था। अतः पश्चिम में जो आज हम गृहणी के लिए प्रचलित हाउस वाइफ शब्द पाते हैं वह भारत का ही दिया हुआ शब्द है अर्थात गृहमाता या गृहलक्ष्मी। नवागत स्नुषा को भी व्यावहारिक जीवन द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता था। वास्तव में पितृगृह से यह आरंभ होता था। जिन दिनों गोपालन सामाजिक जीवन का अभिन्न भाग था, उन दिनों गो दोहन भी अनिवार्य था। इस अनिवार्य कर्तव्य का निर्वहन करने की जिम्मेदारी घर की पुत्री की हुआ करती थी। यही कारण है कि उसे दुहिता अर्थात दोहन करने वाली कहा गया। इसका तात्पर्य यह है कि घर की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर दूध संबंधी समस्त कार्य उसी दुहिता का था। बीच-बीच में आने वाले व्रतों में आवश्यक पंचगव्य को तैयार करने का कार्य भी उसी का था। अतिथि सत्कार भी उसी का कार्य था। इस प्रकार जब वह इन कार्यों में कुशल हो जाती थी तो उस बेटी का विवाह होता था। अर्थात वह वधू बन जाती थी। वधू का अर्थ है श्वसुर के घर का भार उठाना। इसीलिए कहा गया है "वहति श्वसुरगृहभारं या सा वधू!" उसका आरंभ होता है पिता के घर से। अतः परिभाषा है कि उह्यते पितृगेहात पतिगृह वधू"। अतः उसे विवाह की मंगलबेला पर आशीर्वाद दिया जाता था "हे वधु, तू ससुर, सास, ननद और देवरों की साम्राज्ञी बन। सबको महारानी सदृश संभाल।"[14] इस प्रकार सुसंस्कारित प्रशिक्षित जिम्मेदार स्त्रियों के कंधे ही थे, जिन्होनें इस विश्वविख्यात हिन्दू संयुक्त परिवार को हर युग में अक्षुण्ण रखा।

वेदकालीन स्त्री का दायित्व मात्र परिवार तक ही सीमित नहीं था। उसका प्रभाव हमें शहर नगर तक व्याप्त दिखाई देता था। यही कारण है कि उसे पुरंध्री भी कहा जाता है। चूंकि स्त्री अपने पति, पुत्र, पुत्री सहित परिवार के समस्त सदस्यों एवं अपने पुर अर्थात जो नगर उसके दायित्व में था, उसकी देखरेख करती थी, तो उसे पुरंध्री कहा गया। यही परिभाषा शब्दकल्पद्रुम कोश में दी गई है। इसके अनुसार स्त्री का अर्थ है "स्वजनसहितं पुरं धारयतीति पुरंध्री" यजुर्वेद के 22वें अध्याय के 22वें मंत्र में आए "पुरान्ध्रियोषा' का अर्थ पंडित सातवलेकर सर्वगुण संपन्न नगर का नेतृत्व करने वाली स्त्री से देते हैं। (यजुर्वेद का सुबोध भाष्य -2, पृष्ठ 386)। इससे यह बार बार स्पष्ट होता है कि वैदिक काल की स्त्री का कर्मक्षेत्र उसका अपना ग्राम और नगर क्षेत्र भी हुआ करता था।

वैदिककाल के समाज द्वारा गठित हर समाज की अपनी अपनी सामूहिक इकाइयां भी हुआ करती थीं, यथा सभा, समिति, परिषद, राष्ट्रं आदि। इनमें समय के अनुसार स्त्रियों का चयन भी हुआ करता था। वह भी सदस्या बन सकती थीं। अथर्ववेद की ऋषिका कितने आत्मविश्वास से सभा में बोलती है, यह इस उदाहरण से स्पष्ट होता है "मैं बोलती हूँ, तू न बोल। तू सभा में निश्चयपूर्वक बोल। तू केवल मेरा ही होकर रह, किसी और का नाम तक न ले!" तथा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद।[15]

वैदिक काल में हम यह भी देखते हैं कि स्वराज्य की रक्षा के लिए भी स्त्रियों का नाम आगे आया है। उसके भी उदाहरण हमें परिलक्षित होते हैं। खेल नामक राजा की पुत्री थी विश्पला। वह युद्ध विद्या में निपुण थी। शत्रु ने उसके पिता के राज्य पर आक्रमण किया तो वह तलवार लेकर युद्ध के मैदान में कूद पड़ी थी। भीषण युद्ध में उसकी टांग कट गई। परंतु उसने हिम्मत न हारी। किंतु उसने तनिक भी हिम्मत न हारी और अश्विनी कुमार की शरण में जाकर लोहे की टांग लगवाकर आई और फिर उसने युद्ध किया और जीत प्राप्त की।[16] वह पूरे राज्य में सर्वादृत बन गई। यह एक सर्वथा भिन्न प्रसंग है। महर्षि मुद्गल के गोधन का अपहरण हुआ। तुरंत ही ऋषिपत्नी मुद्गलानी ने रथारोहण कर पशु तस्करों का पीछा किया। युद्ध की घोषणा के साथ ही राज्य की सेना की पर्याप्त सहायता की। अंत में मुद्गलानी गोधन वापस लेने में सफल हुई।[17]

संक्षेप में, स्त्री पुरुष की उत्पत्ति के विषय में, महान विचारकों की जो संकल्पना थी, वह उनकी भूमिका के अनुसार ही थी। स्त्री और पुरुष उनकी दृष्टि में एक समान ध्रुव थे। दोनों के संयोग के बिना सृष्टि कार्य संभव नहीं था। यह प्रश्न ही नहीं था कि कौन उच्च है और कौन गौण। परंतु उन्होंने स्त्री और पुरुष के मध्य जो नैसर्गिक अंतर था उसकी भी अनदेखी नहीं की। यह अनदेखी करना व्यावहारिक नहीं था। उन्होंने जो नियम बनाए थे वह सृष्टि के संचालन हेतु आवश्यक थे। जो नियम उन्होंने बनाए उन्हीं के अनुसार सृष्टि का चक्र घूमा तथा स्त्री एवं पुरुषों में लिंगोचित गुण एवं भावों का विकास हुआ। शारीरिक क्षमता में पुरुष प्रबल रहा तो वहीं स्त्रियों में यह क्षमता कम रही। पुरुष अपने स्वभाव के

अनुसार कृषि, शासन, सैन्य संचालन आदि में कार्यरत हुआ, और स्त्री का कार्य क्षेत्र बना गृहपालन, शिशुपालन आदि! स्त्री और पुरुष का जीवन एक समग्रता का भाव लिए हुए था। यदि पुरुषों में साहस था तो वहीं स्त्रियों में क्षमा का भाव था। संभवतया यही कारण होगा कि विश्व के अधिष्ठान अर्थात धर्म को पुल्लिंग में स्थान दिया गया और धर्म की तेरह पत्नियों अर्थात श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेघा, तितिक्षा, लज्जा और मूर्ति को स्त्रीलिंग में स्थान दिया गया। स्त्रियों का स्थान जहां कर्मेंद्रियों में पीछे था तो वहीं वह ज्ञानेंद्रियों में वह पुरुषों के समान थी। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में समान थी, इस वास्तविकता को वेदकालीन समाज ने कभी विस्मृत नहीं किया। जहां तक पुरुष जा सका, वहीं तक स्त्री भी पहुँची। उसने भी विद्या प्राप्त की, वह भी उपनीता हुई, ब्रह्मवादिनी बनी, अमरतत्व की दीक्षा प्राप्त कर उमा हेमवती बनी। उत्तम गृहनाथा बनी। मंत्रद्रष्टा बनी। संगमनी राष्ट्री बनी। स्त्री ने यज्ञ कराए और वह सभासद भी बनी, वैदिक काल में स्त्री पुरंध्री भी बनी और अवसर पड़ने पर वह रणांगना भी बनी। वैदिक काल में स्त्री की रोती हुई छवि किसी ने शायद ही देखी हो। वैदिक काल में स्त्री स्वरक्षिता थी।

इतिहासकालीन स्त्री

भारत के इतिहास के दो पृष्ठ अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं और वह हैं रामायण और महाभारत। जिनके रचनाकार हैं महर्षि वाल्मीकि एवं महर्षि वेदव्यास। रामायण के स्त्री पात्र मुख्यतया तीन प्रकार के प्राप्त होते हैं। एक प्रकार है महल की महिलाओं का, उसमें महारानी कौशल्या, कैकई, सुमित्रा, तारा, शूपर्णखा, मंदोदरी, सीता और सुलोचना आदि हैं। दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ हैं अहिल्या और शबरी। तीसरे प्रकार की स्त्रियाँ हैं, मंथरा, अशोकवाटिका की प्रहरियाँ आदि। इनके जीवन के विश्लेषण से कई बातें सिद्ध होती हैं। महल की सभी स्त्रियाँ शिक्षित थीं। सभी स्त्रियाँ दैवीय आपत्ति टालने के लिए कई प्रकार के पूजापाठ करती थीं। महाराज दशरथ के निधन के उपरांत भी यह तीनों रानियाँ उनकी अंत्येष्टि करती हैं। इससे निष्कर्ष लिया जा सकता है कि उन दिनों स्त्रियों को श्राद्ध और दान का भी अधिकार था। (जो वर्तमान में हमें मात्र केरल की स्त्रियों में दिखाई देता है।)

यदि किष्किंधा की तारा और लंका की शूपर्णखा को देखते हैं तो पाते हैं कि तारा और शूपर्णखा दोनों ही राजनीति में दक्ष हैं। राज के आसपास दो धनुर्धारी पुरुष विचरण कर रहे हैं, यह जानकारी सबसे पहले तारा को ही गुप्तचरों से प्राप्त होती है तथा सूचना के आधार पर ही वह बालि को सतर्क करती है। जब सुग्रीव पहली बार हारकर दूसरे ही दिन एक बार पुनः सामना करने आता है तो वह दुश्चिंता से भर जाती है, एवं बालि को आगाह करते हुए कहती है, "सुग्रीव का इस प्रकार आना अत्यंत ही अटपटा लगता है, मुझे भय है कि उसके पीछे कोई अज्ञात प्रबल छिपा है।" उसकी चेतावनी सर्वथा सत्य निकली। बाद में उसने अत्यंत दुखमय अवस्था में भी अपने पुत्र अंगद के लिए भविष्य सुरक्षित करवाया एवं अपनी बुद्धि चातुर्य से उसने उसे युवराज बनवाया।

शूपर्णखा की कहानी उससे विचित्र है। राजकन्या के नाते वह लंका एवं आसपास के क्षेत्रों में स्वतंत्र विचरण करती थी। लक्ष्मण द्वारा स्वयं पर हुए अत्याचार के परिणामस्वरूप वह सीधे लंका के दरबार में जाकर लंकाधिपति रावण को डांटना आरंभ करती है। वह अपने इतने लंबे वक्तव्य में एक बार भी स्वयं पर हुए अत्याचार का उल्लेख न करके, जनस्थान पर शासन की तरफ से हुई गुप्तचर व्यवस्था की चूक पर प्रश्न उठाती है। वह इस चूक के लिए रावण को दोष देती है। एक कुशल राजनीतिज्ञ की भूमिका लेकर वह चेतावनी देती है, "राजन, दूसरों का सदुपदेश नकारना आपकी प्रकृति है। देश की अंतर्बाह्य गतिविधियों की ओर से आप अंधे हैं। आप आडंबर के दास बन गए हैं। सूझबूझ कर निर्णय लेने में निकम्मे हो गए हैं। इस राज का अविलंब सत्यानाश होगा। महाहय आप घोर विपत्ति के कगार पर हैं।" (वाल्मीकि रामायण आरण्य 33, संक्षेप - 1,23)

लक्ष्मण द्वारा अपमानित शूपर्णखा ने एक बार भी रावण को अपने भैया कहकर संबोधित नहीं किया। उसका निवेदन प्रखर किंतु सभ्य शब्दों में था। इस विषय में मनु की संसद की अवधारणा ध्यान आती है कि "सभा में प्रवेश न करें, किया तो युक्ति संगत बातें कहिए। सभा में प्रवेश करके अनर्गल बोलना, अथवा गूंगे बैठना दोनों ही गुनाह है।" मनु के मापदंड से शूपर्णखा यशस्वी सदस्या दिखती हैं।[18]

इसी प्रकार रानी कौशल्या की चेतावनी भी है, परंतु उसका भाव रौद्र न होकर दीनता का है। राजकुमार राम को वनवास भेजने की घोषणा सुनकर वह राजा दशरथ से कहती हैं कि "राजन तुम्हारे द्वारा इस राष्ट्र का घात हुआ है। स्वराज्य का घात हुआ है। मंत्रिमंडल सहित हम सभी प्रजाजनों का घात हुआ है।"[19]

रामायण काल में इस विशाल भारतवर्ष में तीन सभ्यताएं दिखती हैं। लंका सभ्यता, किष्किंधा सभ्यता और अयोध्या सभ्यता। इन तीनों की तीन धुरियों अर्थात तारा, शूपर्णखा एवं कौशल्या की राजनीतिक सूझबूझ के बारे में बतलाया जा चुका है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि रामायणकालीन स्त्रियाँ भी पूर्णतया शिक्षित थीं एवं इतना ही नहीं वह राजकार्य, गृहकार्य एवं नीति तीनों में ही कुशल थीं।

आध्यत्मिक साधना में भी महिलाएं मग्न थीं। राम एवं लक्ष्मण ने तीव्र तपस्विनी के रूप में ही अहिल्या का दर्शन किया था। यदि अहिल्या ज्ञानयोगिनी थी तो वनवासी शबरी भक्तियोगिनी थी। अनेक रामायणों में यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि रावण की पत्नी मंदोदरी भी अखंड साधिका थीं। संक्षेप में यह देख सकते हैं कि वैदिक काल से आई शिक्षा एवं ज्ञान की नीतियों को रामायण

रामायण के स्त्री पात्र मुख्यतया तीन प्रकार के प्राप्त होते हैं। एक प्रकार है महल की महिलाओं का, उसमें महारानी कौशल्या, कैकई, सुमित्रा, तारा, शूपर्णखा, मंदोदरी, सीता और सुलोचना आदि हैं। दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ हैं अहिल्या और शबरी। तीसरे प्रकार की स्त्रियाँ हैं, मंथरा, अशोकवाटिका की प्रहरियाँ आदि

काल में भी तनिक भी नहीं परिवर्तित किया गया।

महाभारत कालीन स्त्रियों का मूल्यांकन कठिन है। इस महाकथा का रंगमंच अत्यंत ही विस्तृत है। इस कथा का न्यायोचित प्रतिपादन अलग-अलग व्याख्यानों का विषय है। अत: स्वयं मर्यादित रहकर दो तीन उदाहरणों से मैं अपनी बात रखूंगा।

यद्यपि यह प्रसंग अत्यंत ही छोटा है। खुली राजसभा में एडी से चोटी तक अपमानित द्रौपदी का प्रश्न है कि मुझे इस प्रकार जुए में दांव पर लगाना क्या न्यायोचित है। उपस्थित सभासद उत्तर दें।[20] स्वयं भीष्म पितामह का उत्तर था, "इस प्रश्न का उत्तर देने में मैं असमर्थ हूँ।" (तस्मात् न शक्नोमि विवंक्तु एतत) दोनों ही पक्षों के वरिष्ठों को मौन देखकर द्रौपदी के जीवन के इस अंधकारमय क्षण के विषय में उनका उदगार था, "वह सभा नहीं, जहां वृद्ध नहीं, वह वृद्ध नहीं जो धर्म के विषय में चुप साधते हैं। वह धर्म नहीं जहां सत्य नहीं। वह सत्य नहीं जो छल से बाधित है।"

आज यह तथ्य सर्वविदित है, परंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि इसे सबसे पहले अकलंकित कुलांगना के अंत:स्थल के बडवानल से निकले अग्निबाण ने ही उसे सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उस क्षण उससे बड़ा पुरुष उस सभा में कोई नहीं था। उसके हृदय में उस अपमान के क्षण में भी प्रज्ज्वलित संस्कृति की लौ की ऊंचाई की कल्पना करिए। याज्ञसेनी यज्ञ से उभरी सेनानी ही थी। उसे भलीभाँति ज्ञात था कि धर्मानुसार वह क्या ले सकती है और क्या नहीं? जब धृतराष्ट्र ने उससे वर मांगने के लिए कहा तो उसने धर्मपुत्र को दासता से मुक्त करने का वर माँगा। दूसरा वर मांगने की जब आज्ञा हुई तो उसने शेष चार पतियों को मुक्त करा लिया। अंधे राजा ने कहा "मैं कृतकृत्य हूँ एक वर और मांगो!" परंतु केशमुक्त कन्या ने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया "भगवन लोभ धर्म का नाशक होता है, मैं तीसरा वर नहीं ले सकती हूँ। वैश्य एक वर मांगने का अधिकारी है, क्षत्रिया स्त्री दो की अधिकारी है, क्षत्रिय पुरुष तीन तीन के हैं, विप्रजन शत शत के हैं। आपके द्वारा प्रदत्त दो वरों से मेरे सारे पतिदेव मुक्त हुए हैं। उनके भरोसे मुझे इस जगत के समस्त सुख प्राप्त होंगे एवं यश प्राप्त होगा।"[22]

राजा दुष्यंत ने उस पर असहनीय अत्याचार किए। उन्होंने गांधर्व विवाह में वचन भंग किया और शकुंतला को वन से राजमहल नहीं लेकर गए। इसी बीच आश्रम में पुत्र का जन्म हुआ। जब अपने शिशु को संस्कारवान बनाकर माता शकुंतला राजमहल आई तो स्मरण होते हुए भी राजा ने उसे धिक्कारा

उस क्षत्राणी के कहे गए लोभो धर्मस्य नाशाय की नाद उस सभा में कई क्षणों तक प्रतिध्वनित होती रही होगी। किंतु कितने लोग थे जो उस काल को आमंत्रित करने वाली घड़ी में उस संदेश को समझ पाए होंगे। द्रौपदी शास्त्रवेत्ता भी थी। अष्टौप्रहर उसका व्यवहार भी तदानुसार था। यही कारण था कि अत्यंत ही विकट स्थिति में संपूर्ण संयम से सिंहासनस्थ राजा को शास्त्रोक्ति सुझा सकीं।

दूसरा उदाहरण है राजमाता कुंती का। महात्मा विदुर के घर पर उन्हें मिलने पर दूत रूप में आए कृष्ण ने पूछा "पुत्रों के लिए क्या संदेश दूं, क्योंकि दुर्योधन ने मेरी बात नहीं मानी है।" उस स्वाभिमानी धीरोदत्ता ने निर्भीक होकर उत्तर दिया "जिस कार्य हेतु क्षत्राणियां संतान को जन्म देती हैं, उसका समय आ गया है।"[23] आगे चलकर जब महायुद्ध जीतकर पांडव प्रमुख युधिष्ठिर कुरुकुल के राजाधिराज बने तो राजमाता कुंती भी धृतराष्ट्र दंपती के साथ वानप्रस्थ के लिए निकली। पुत्रों द्वारा अत्यंत आग्रह करने पर उन्होंने उत्तर दिया, "पुत्रों मैंने पूर्वकाल में पति द्वारा अर्जित विभा यथेष्ट भोग लिया है। अब पुत्रों द्वारा अर्जित वैभव नहीं भोगना चाहती हूँ। वानप्रस्थी सास-ससुर ही सेवा शुश्रूषा ही मेरा तप होगा। उसी में मेरा पुण्य है। उसी से मेरा देहत्याग होगा।"[24]

अब जरा आज के छल से, बल से तो कभी-कभी न्यायालय के निर्णय के बावजूद अधिकार की कुर्सी पर चिपक बैठे नेतागण से तुलना करें, माता कुंती की महानता ध्यान में आएगी। आध्यात्मिक आचार्यो ने यह सत्य ही कहा है, "सत्संग से निसंग, निसंग से निर्मोह, निर्मोह से निर्मलत्व, निर्मलत्व से निर्वाण।" माता कुंती उसी स्तर की थीं। आत्मसंयमी योगीराज के समान उस राजमाता ने राजवैभव को तज दिया था।

इसी कड़ी में एक और उदाहरण हम देख सकते हैं, और वह है शकुंतला का, यह शकुंतला कालिदास की शकुंतला नहीं है बल्कि महर्षि व्यास की शकुंतला का है। राजा दुष्यंत ने उस पर असहनीय अत्याचार किए। उन्होंने गांधर्व विवाह में वचन भंग किया और शकुंतला को वन से राजमहल नहीं लेकर गए। इसी बीच आश्रम में पुत्र का जन्म हुआ। जब अपने शिशु को संस्कारवान बनाकर माता शकुंतला राजमहल आई तो स्मरण होते हुए भी राजा ने उसे धिक्कारा। मूल शब्द हैं "राजा स्मरन अपि न स्मरामि अब्रवीत" (आदिपर्व 74-19) राजा ने उसे दुष्ट तापसी कहा। राजा की यह वाणी सुनते ही वह कण्व दुहिता शोक और आघात से पीली पड़ जाती है, दुखी हो जाती है, वह खंभे के समान निश्चल रहती है, उसकी आँखें क्रोध और अपमान से लाल हो जाती हैं एवं उसके होंठ कांपते हैं। उसका कटाक्ष दाहक सा तीक्ष्ण धधकता है, जैसे मानो सामने वाला भस्म हो जाएगा। किंतु तप से अर्जित तेज को स्वयं में समाहित करके वह क्षणमात्र ध्यानमग्न हो जाती है, उसके उपरांत भर्ता से वह सात्विक रोष से भरकर बोलना आरंभ करती है। "महाराज आप जानबूझकर प्राकृत जनों की भांति झूठ क्यों बोल रहे हैं? अंत:साक्षी की अवहेलना मत करिए। आप क्या सोचते हैं कि मैं अकेली हूँ? जगतसाक्षी मुझमें स्थित है। वह आपके इस पाप पर निगाह फेर रहा है। देवगण समस्त सत्य को जानते हैं। सूर्य, चंद्र, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल, यम, प्राण, दिन रात यह सब धर्म को देखते पुरुष की कृति को जानते हैं। सुनिए महाराज, पति ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है। यह बालक आप ही हैं, पुम नामक नरक से तारने वाला पुत्र ही है। हे भूपाल, भार्या को आपने कौन समझा? गृहकार्यो में दक्ष है भार्या, प्रजावती है भार्या, पतिप्राणा है भार्या, पुरुषों की अर्धा है भार्या, यह भार्या

ही है जो पुरुषों की सर्वश्रेष्ठ सखा है। भार्या ही है जो धर्म, अर्थ एवं काम का मूल है। तारिणी है भार्या, भार्यावान क्रियावान है, भार्यायुक्त पुरुष ही सफल गृहस्थ है। श्रेय का मूल भार्या है और निश्रेयस की नौका भार्या है। भार्या के बिना ऋषि भी प्रज्ञावान बनेगा क्या? (आदिपर्व- 74, संक्षेप)

शकुंतला इतना सब कुछ निर्भीकता से कहती हुई मर्माघात करती है। "महाराज रेत में लोटपोट करने वाला मिला नन्हा बालक भी जब अपने पिता की गोद में चढ़ता है तो कलेवर पुलित न होने वाला पिता कौन है? क्षुद्रजीवी चींटियाँ भी स्वयं के अंडों को कहाँ तोड़ती हैं? यदि आप मेरी उपेक्षा करते हैं तो मैं जाऊंगी वापस। परंतु आप स्वयं के आत्मजात का त्याग न करिए। यही मेरा अनुरोध है।" तभी आकाश से हुई एक भविष्यवाणी से समस्त दृश्य बदल गया, जो अभी तक शोकांतुका थी वह शुभांतिका हुई।

पर यहाँ का प्रतिपाद्य महाभारत की शकुंतला का जाज्वल्यमान व्यक्तित्व है। उसमें विशेष ध्यान देने की बात है कि आश्रम के संस्कारों के कारण विस्फोटक घड़ी में वह संयमित रह पाई। जो हमने पूर्व में शब्द पढ़े हैं उनके अनुसार वह जाया थी परंतु पुल्लिंग बहुवचनीय दारा। सामाजिक दृष्टि से यहाँ एक और तथ्य दृष्टिगोचर होता है। ऋषियों के आश्रम में उन दिनों कन्या का प्रवेश था और कन्याओं के पास आश्रम के संचालन का दायित्व होता था। वेदों की ऋचाएं कन्याओं को रटी रहती थीं। उन्हें शास्त्रों का ज्ञान था। अतिथि सत्कार में वह प्रवीण थीं। उन्हें युक्तिसंगत बात करने में भी संकोच नहीं था। आर्जव उनका स्वभाव था। संक्षेप में कहा जाए तो वैदिक कालीन परंपराएं इतिहास के इस युग तक प्राप्त होती हैं।

द्वारिका की द्वारपालिकाएं: मगध के जरासंध के संभाव्य आक्रमणों से बचकर सुख शांति से रहने के लिए श्रीकृष्ण ने द्वारका में यादव वंश के लिए भारत की पश्चिमी सीमा पर द्वारिका नगरी की स्थापना की थी। यह सैनिक दृष्टि से अप्रतिहत सागर वेष्टित नगरी थी। अप्रतिम योजक कृष्ण के कारण वहां की स्त्रियाँ भी अस्त्र-शस्त्र की कला में पारंगत थीं। अपने गणराज्य का विशेष वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण पांडवों से कहते हैं "वहां नारियां तक युद्ध लड़ना जानती हैं, तो महारथों का कहना ही क्या? इसी के कारण हम अकुतोभय वहां रहते हैं।"[25]

वेदकालीन शब्दावली के अनुसार यदि कहें तो कहेंगे कि द्वारिका की समस्त स्त्रियाँ पुरांध्रियाँ थीं या फिर विश्प्लाएं थीं।

महर्षि व्यास का महाभारत अद्भुत ग्रंथ है, व्यास जीवन कथाओं के रचनाकार हैं। अत: उस ग्रंथ से ही दो प्रसंग उठाकर मूल्यांकन करना अधिक बोधगम्य होगा। महाभारत में दो पर्व हैं, शांतिपर्व एवं अनुशासन पर्व। एवं यह दोनों ही पर्व युधिष्ठिर के भीष्म द्वारा शंका निवारण के पर्व हैं। उन दोनों ही पर्वो में युधिष्ठिर स्त्री संबंधित प्रश्न भी करते हैं और पितामह भीष्म अपने पौत्र को उत्तर देते हैं। यदि उसी संदर्भ को देखते हैं तो भी यह स्त्रियों के लिए उचित होगा। यहाँ पर कुछ प्रतीक रूप से विषयानुसार संदर्भित किया जा रहा है।

"स्त्री कौन है? स्त्री है ऐश्वर्य चाहने वालों की आराध्या, उसका पालन-पोषण प्रामाणिकता के साथ किया जाए तो वह स्त्री श्री बन जाती है।[26] पुत्री कौन है? वह है साक्षात लक्ष्मी। वह शुभा है, वह शोभना है। मंगलकार्यों में पूज्य है।[27] भार्या कौन है? इस प्रश्न के लिए शकुंतला द्वारा दिया गया उत्तर देखें। माता कौन है? वनपर्व के अंत में यक्ष युधिष्ठिर से पूछते हैं "भूमि से भारी कौन आचार्यों से गुरुतर है एक उपाध्याय, दस उपाध्यायों से गुरुतर है पिताश्री और दस पिताओं से गुरुतरा है माता, माता भूमि से भी गुरुतरा है।"[28]

इसे हम संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं कि वेदकालीन और इतिहासकालीन सभ्यताएं भिन्न थीं, परंतु उनकी संस्कृति अभिन्न थी। सैकड़ों वर्षों के अंतराल के बावजूद समाज पर शाश्वत मूल्यों ने प्रभाव बनाए रखा था। राष्ट्र जीवन अखंडित रूप से अनवरत चलता रहा था।

बौद्ध - जैन धर्मों की साध्वियां

यहाँ मैं इतिहास के कालखंड से एक लम्बी छलांग लेना चाहता हूँ। इस लंबे कालखंड में आध्यात्मिकता के स्तर पर बौद्ध, जैन धर्म का उद्भव हुआ और उसका विकास हुआ। मौर्य, गुप्त, चोल, पांड्य साम्राज्यों का उदय एवं अस्त देखा। शास्त्र एवं साहित्य कलाओं का अविर्भाव हुआ। विख्यात वैज्ञानिकों का जन्म हुआ। पूर्वकालीन राष्ट्रजीवन आगे बढ़ा। इस दीर्घ कालखंड में इस विशाल देश में एक स्वतंत्र स्वायत्त परंतु एकात्म राष्ट्रजीवन का विकास हुआ। स्वभावत: स्त्री संबंधी जीवन भी उस समग्र जीवन का भाग था। अनिवार्यत: बहुधात्व अथवा बहुलत्व इस समाज की विशेषता थी। देश में जिस प्रकार

राजा रवि वर्मा की कृति सखियों के साथ शकुंतला
साभार : https://ravivarma.org/shakuntala-and-friends-by-raja-ravi-varma/

वेदकालीन ब्रह्मवादियों से भी इन दिव्यात्माओं का जीवन कर्मण्य था। सारी थेरियाँ बुद्ध संघ की योजना से अज्ञात सुदूर देश-प्रदेशों में धर्म प्रचारिका बनकर गई। सागर पार कर श्रीलंका गई संघमित्रा का नाम विख्यात ही है, जो महान सम्राट अशोक की पुत्री थीं

समय बदल रहा था उसकी परछाई देश के बदलते रीति-रिवाजों में भी दिखाई दी।

जैसा हमने वैदिक काल में ऋषिकाओं को देखा वैसे ही हमने बौद्ध संप्रदाय में थेरियों को देखा। यह थेरियाँ बौद्ध साध्वियां हुआ करती थें। बौद्ध धर्म के आरंभ में बौद्ध धर्म में मात्र पुरुषों का ही प्रवेश था। परंतु बाद में स्त्रियों का प्रवेश बौद्ध धर्म में भगवान बुद्ध ने किया। बौद्ध धर्म की पहली दीक्षित स्त्री थीं भगवान बुद्ध की धात्री गौतमी। वह प्रथम थेरी थीं।

ज्ञानवृद्ध बुद्ध को स्थविर कहा जाता और भिक्षुणी को स्थविरा कहा जाता या फिर स्थविरिणी। पालि भाषा में उसी का अपभ्रंश हुआ होगा थेरी। ज्ञानवृद्ध बौद्ध भिक्षुणी थी थेरी। बौद्ध इतिहासकारों ने तिहत्तर थेरियों को पहचाना है और उनका उनके नाम से उल्लेख किया है।

थेरियाँ सभी वर्णों से थीं। गणिकाएँ भी जीवन सुधारकर थेरियाँ बन चुकी थीं। भगवान बुद्ध ने श्री कृष्ण की गीतावचन का पालन किया है, कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है।"[29] जैसे महाभारत में व्याधगीता और उद्धवगीता है वैसे ही बौद्ध धर्म के साहित्य में भी असंख्य थेरी गाथाएं हैं। सभी की विषयवस्तु आध्यात्मिक है। वैदिक संहिताओं में जैसा स्थान सूर्या जैसी ऋषिकाओं के मंत्रों का है, वही स्थान थेरी साध्वियों की गाथाओं का बौद्ध धर्म में है।

सबसे लंबी गाथा थेरी सुमेधा की है। वह जन्म से राजकुमारी थी। उसकी दांपत्य में आस्था नहीं थी। जबकि राजा अनिकर्त उसका पाणिग्रहण चाहते थे। माता-पिता दोनों के ही आग्रह को टालते हुए वह अपने निर्णय पर अडिग रही। उसने अपने पिता के सम्मुख अपना निर्णय यह कहते हुए स्पष्ट किया कि "महाराज सांसारिक जीवन में मेरा चाव शून्य है। आपका मरण जन्म से ही सुनिश्चित हो जाता है। उससे किसी को कोई भी छुटकारा नहीं है। धन, मन प्रताप, प्रतिष्ठा सभी क्षणिक हैं। मोह लोहे के समान दु:ख ही दु:ख देगा। कृपया आप अपने महल लौट जाइए। मेरे हृदय के भीतर एक और प्रकार की अग्नि ही धधक रही है।" राजकुमारी सुमेधा ने जीवन का दुर्गम पथ स्वीकार किया और अंततः तपोमय जीवन से निर्वाण प्राप्त किया।

ऋषिदासी और एक थेरी थीं। वह अपनी गाथा में अपनी कथा सुनाती हैं। पाटलिपुत्र में दो भिक्षुणी थीं। उन्होंने पूछा "ऋषिदासी, आप क्यों भिक्षुणी बनना चाहती हैं? कृपया हमसे खुलकर बताएं। आप तो सुंदर युवती हैं एवं क्षमता की धनी हैं। आप इन सबकी इन क्षमताओं की उपेक्षा करके ब्रह्मचारिणी बनना चाहती हैं?"

ऋषिदासी ने अंतरंग खोल दिया और कहा, "सुनिए मैं उज्जयिनी के धनिक श्रेष्ठी की एकमात्र संतान हूँ। अयोध्या के प्रमुख वणिक से माँ बाप ने मेरी शादी करा दी। प्रथम दिन से ही मैंने सब घरवालों की सब प्रकार की सेवा प्रामाणिकता से की। फिर भी एक दिन मेरे पतिदेव ने सास-ससुर से कहा "पत्नी से मेरी पटती नहीं है।" मेरे सास-ससुर ने कहा कि उसका क्या दोष है, वह तो शीलवती है। इतना कहने पर भी मेरे पति हठी थे। मुझे घर से निकालने पर अड़े हुए थे। मुझे निरुपाय होकर अपने माता-पिता के घर वापस आना पड़ा। मेरे पिता ने मेरा दूसरा विवाह कराया। वह भी धनिक थे। परंतु मेरी स्थिति वही की वही रही। मेरा विवाह एक बार पुन: कराया गया। परंतु उसकी हालत तो और भी बुरी थी। घर पर एक बार भिक्षा मांगने एक भिक्षुक आया और उसके यौवन को देखकर मेरे पिता ने उससे मुझे स्वीकारने के लिए प्रार्थना की। उस भिक्षुक ने अपनी सम्मति दे दी। फिर हम दोनों दंपती बने। जैसे ही थोड़े दिन बीते मेरा पति पुन: संन्यास में लौट गया। जीवन का चक्र कैसे घूमता है, मैंने यह पर्याप्त देखा है। मैंने फिर एक दिन अपने माता-पिता से कहा "मैंने सब कुछ देखा, और उससे थोड़ा तो सीखा ही है। अब विरक्त होना चाहती हूँ।" दोनों ही गर्म हुए, परंतु मैं अपनी बात पर अड़ी रही। अंततोगत्वा माता-पिता ने भी अपनी एकमात्र पुत्री को अनुमति दी और आज मैं यहाँ पर खड़ी हूँ और वह भी संन्यास की अदम्य इच्छा से।" आज ऋषिदासी की गाथा में 46 गीत उपलब्ध हैं।

इस प्रकार शुभा, भद्रकुंडलकेशी, उत्पलवर्णा, अंबापाली, तिस्सा, धीरा, मित्रा, भद्रा, उपसामा, मुक्ता, धर्मतृष्णा, धर्मशक्ता आदि थेरियाँ थीं। इन थेरियों में विधवाएं और गणिकाएं भी थीं। घोर तप और जीवनशुचिता के युग में सभी को समाज में परम श्रद्धेय स्थान प्राप्त हुआ था। वेदकालीन ब्रह्मवादियों से भी इन दिव्यात्माओं का जीवन कर्मण्य था। सारी थेरियाँ बुद्ध संघ की योजना से अज्ञात सुदूर देश-प्रदेशों में धर्म प्रचारिका बनकर गई। सागर पार कर श्रीलंका गई संघमित्रा का नाम विख्यात ही है, जो महान सम्राट अशोक की पुत्री थीं। प्राचीन अर्वाचीन आध्यात्मिक विचारधाराओं के विश्वसंचार का इतिहास स्पष्ट बताता है कि यह बुद्धधर्मी ब्रह्मवादिनियाँ विश्व की सर्वप्रथम धर्मप्रसारिकाएं थीं। उन कर्मनिष्ठ अनिकेत अभय समर्पितों ने कृणवन्तो विश्वं आर्य का ऋषिघोष क्रियान्वित किया था।

बुद्धसंघ ने कई स्थानों में बुद्ध मंदिर बनवाए थे, जिन्हें बुद्ध विहार कहा जाता था। उन मंदिरों में अनिवार्य रूप से विद्यालय अनुषंग सम्मिलित था। आज भी मलयालम भाषा में विद्यालय के लिए भाषाई शब्द है पल्लिक्कूडम, जिसका अर्थ है मंदिर का अनुषंग। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ इन अनुषंगीय पाठशालाओं में बौद्ध कन्याओं की शिक्षा का भी श्रीगणेश हुआ। यही कारण था, कि सनातन धर्मीय कन्याओं से अधिक बुद्धधर्मीय कन्याएं शिक्षित परिलक्षित होती हैं। आगे जाकर थेरियों द्वारा धार्मिक साहित्य अस्तित्व में आया।

जैन धर्मीय साध्वियों का योगदान भी इसी प्रकार का प्राप्त होता है। जैन धर्म में अपना सब कुछ त्याग कर जैन धर्म का पालन करना अत्यंत ही सामान्य प्रथा बन गई थी। आज भी वह प्रथा चल रही है और

उसका पालन भी कड़ाई से किया जाता है। यह दृश्य भारत में बहुत ही आम है जब साध्वियों का छोटा छोटा समूह सड़क की छोर पकड़ कर नंगे पैरों से शांत मूक धीमे-धीमे आगे बढ़ता है। सूर्योदय के पश्चात रवाना होकर सूर्यास्त से पूर्व नियत स्थानों तक पहुंचना उनकी परंपरा है। वर्तमान तथा कथित प्रगतिशील युग में भी जैन साध्वियां सामान्य समाज से आदर प्राप्त हैं। अभी कुछ ही दिन हुए हैं जब एक पश्चिमी भारत में अति संपन्न घराने की अति शिक्षित कन्या अपने माता-पिता के आशीर्वाद से अकिंचन साध्वी बन चुकी थी। ऐसी आत्मा के सम्मुख क्यों नहीं कोई झुकेगा?

संक्षेप में काँटों से भरे इस मार्ग में, जिस पर चलकर सर्वोच्च उत्थान को प्राप्त किया जा सकता था, उस मार्ग का पथिक बनने में किसी भी प्रकार का बंधन लांछन कन्या पर नहीं था। अत: हम देखते हैं कि वेदकालीन परंपरा यहाँ भी कायम रही थी। आत्मदीपो भव अर्थात अपने आप ही दिया बनें, यह उनका आत्मकथ्य था।

स्मृतियों की भूमिका

जब एक ओर थेरी साध्वियों की गतिशीलता दिख रही थी और दूसरी तरफ स्मृतियों द्वारा प्रतिगामिता प्रमाणित की जा रही थी। स्मृतियों ने पुराने सामाजिक जीवन को विधि निषेधों की कर्कश में परिवर्तित कर दिया। अब समाज का मनुष्य यांत्रिक संस्था के रूप में परिवर्तित होता जा रहा था। वेदकालीन स्त्री जीवन भी इसका शिकार बन गया था, ऐसा प्रतीत होता था।

वैदिक युग में जो सिद्धांत था कि एक ही दाने की दो दालें हैं, उसका प्रतिपादन समाज से विस्मृत होता जा रहा था। मनु ने मार्गदर्शन दिया कि "सदाचार से हीन, परस्त्री में अनुरक्त पति भी पतिव्रता स्त्रियों का देवता के समान पूज्य होता है।"[30] वेदकालीन आध्यात्मिक स्वतंत्रता इस युग में क्षीण दिखती है। मनु स्त्रियों के प्रति थोड़े कठोर दिखाई देते हैं और वह कहते हैं कि स्त्रियों के लिए अलग यज्ञ नहीं, अलग व्रत नहीं, अलग उपवास भी नहीं, पति की सुश्रूषा ही उसका यज्ञ है। उसी से उसको स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।"[31] इसके आगे चेतावनी के स्वर में बताते हैं कि जो स्त्री पति के जीवित रहने पर उपवास व व्रत का आचरण करती है तो वह पति की आयु का हारण करती है, और उसके फलस्वरूप नरक को जाती है।[32] वैदिक गृहस्थी में जिसका दायित्व गोसंवर्धन था और फलत: पुत्री दुहिता कहलाई वह स्मृतिकारों की दृष्टि में एकदम सिमट गई। स्मृति में उसकी स्वतंत्रता को एकदम सीमित करते हुए कहा गया कि "बाल्यकाल में, युवावस्था में, वार्धक्य में भी स्त्री को अपनी स्वतंत्र इच्छा से घर का काम करना मना है।"[33] विषय पर जोर देते हुए वह आगे लिखते हैं, "स्त्री बचपन में पिता के, जवानी में पति के और पति के मर जाने पर बुढापे में पुत्र के वश में रहे। स्वतंत्र कभी न रहे। स्वतंत्र होने से वह दोनों ही कुलों को बदनाम कर देगी।"[34]

मनु यहाँ पर पर स्त्रियों के दुर्व्यवहार के बारे में नहीं बोल रहे हैं। बल्कि उनके अलग एकांत में रहने पर संभाव्य जोखिम पर अपनी शंका जता रहे हैं। उनका तात्पर्य यहाँ पर सभी व्यक्तियों से है जैसे व्यक्ति, कुल, समाज की रक्षा करने का दायित्व पिता, पति, पुत्र आदि पुरुषों पर है। मनु जब यहाँ पर बात करते हैं तो वह एक सुसंस्कारित सामाजिक, सदाचारी पारिवारिक जीवन के अस्तित्व की बात करते हैं।

परंतु यह निर्विवाद है कि स्मृति काल में भारतीय स्थिति वेदोपनिषद काल से घट चुकी थी। परंपरागत सोलह सिंगार संप्रति अनिवार्य ही थे, परंतु स्त्री के कार्य में वेदमंत्रों को गाना कम हो चुका था। केवल विवाह कार्य ही अपवाद रह गया था। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों का वेदपाठ बंद हुआ था। स्त्रियों का जनेऊ धारण करना बंद हो गया था। वह ब्रह्मोपदेश नहीं कर सकती थीं। उनके मंत्रोच्चारित अनुष्ठानों पर प्रतिबंध लग गया। उनके लिए होम हवन आदि वर्जित हो गए। पति सेवा मात्र ही गुरुकुल जाना उद्देश्य हो गया। उनके लिए गृहकार्य ही सर्वोपरि हो गया।[35] अर्थात स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हुआ और वह मात्र पुरुष का अनुबंध बन गई।

यहाँ यह प्रतीत होता है कि किसी न किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। स्त्री प्रतिष्ठा का विषय लेकर अनेक सुधीजन हैं जो मनु का श्लोक दोहराते हैं जिसका अर्थ है "जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवताओं का वास होता है और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती हैं वहां पर सही क्रियाएं विफल हो जाती हैं।"[36] ध्यान से विश्लेषण करें, यह संबोधन पुरुष के नाम पर है। यहाँ पर वही सब लिखा गया है जो पुरुषों से अपेक्षित है। जो श्लोक हमें स्त्री विषयक लगता है वह दरअसल पुरुष के लिए है। जबकि स्त्री विषयक जो श्लोक हमने पहले देखे हैं, वह इससे कहीं अलग हैं। वह सामाजिक आदेश हैं। जो श्लोक पूर्व में लिखे गए हैं वह सामाजिक आदेश हैं, वह अपेक्षा के श्लोक नहीं हैं। उनका संबंध प्रत्यक्ष स्त्री जीवन से है। स्त्री को शिक्षा से वंचित रखना और फिर उसका पूजन करना दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। शिक्षाविहीन स्त्री पूज्य हो सकती है, परंतु सभी पूज्य स्त्रियाँ शिक्षाभूषित हों यह कहना संभव नहीं है। पूज्य मानना भाव भावना का विषय है। शिक्षा संपन्न करना सामाजिक स्तर और प्रतिष्ठा की बात है।

स्पष्ट दिखता है कि वेदकालीन उन्मुक्त उन्नत जीवन पर स्मृतियों ने बेड़ियाँ डाल दीं। मनु की स्मृति इन बंधनों के पीछे के कारणों को नहीं बता रही है। उसका स्वर कानूनी आदेश का है। स्वर्ग की अप्राप्ति, नरक की प्राप्ति आदि सभी जीवनोत्तर संभावनाओं पर जोर देते हुए प्रमाणशून्य तर्कों को वह पुष्ट करती है।

मनु की स्मृति का रचनाकाल कौन सा था? उस समय का इतिहास क्या था, राजनैतिक प्रभुत्व किसका था, उसका प्रजा पर असर क्या था, इन विषयों के बारे में कोई ठोस निष्कर्ष उपलब्ध नहीं है। आगे चलकर मनु की स्मृति उनकी ही रची हुई स्मृति है या फिर किसी और ने उसमें जोड़ा है, यह भी स्पष्ट नहीं है। कौन से मनु ने लिखा है यह भी स्पष्ट नहीं है। किस किस लोकाचारों ने मनुस्मृति में अपना मत जोड़ा है यह भी स्पष्ट नहीं है। याज्ञवल्क्य, पराशर आदि अन्य स्मृतिकारों के विषय में भी हालत यही है। आखिरकार जो तथ्य निसंदेह नजर में आता है वह है कि वेदकालीन स्त्री स्थिति का क्षरण स्मृतिकाल में हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जो स्त्री हमें मंत्रद्रष्टा मिलती थी, जो स्त्री स्वतंत्र दिखती थी, जो स्त्री शास्त्रार्थ कर सकती थी, उस स्त्री का जन्मस्रोत ही सूख गया।

सूर्या, अपाला, लोपामुद्रा, आदि का दिव्योदय असंभव हुआ। वह पत्नी जो अग्निहोत्र में पति की सहभागिनी थी, वह केवल संतान की उत्पत्ति का कारण बन गई। गार्गी, मैत्रयी, इतरा आदि धीमतियाँ शनैः शनैः ऐसे तारे बनती गई जिन्हें छूना असंभव होता गया। धीरे धीरे संस्कृत भाषा ही स्त्री समूह के लिए अपाठ्य बनती गई। निशेषजाड्यापहा सरस्वती भगवती; भारतीय स्त्री के लिए अनुकरणीय नहीं बल्कि भजनीय बन गई।

अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह प्रक्रिया कालिदास के पूर्ववर्ती रहे महाकवि भास से आरंभ हुई। उनके सभी तेरह नाटकों में यह नियम बन गया था कि कथापात्र स्त्री प्राकृत भाषा ही बोलेंगी। बाद में वह संस्कृत नाटकों की अनिवार्य प्रथा बन गई। व्याकरण साहित्य संबंधी कोई कितने भी तर्क दे दे, यह स्पष्ट है कि यह देखकर सामान्य इंसान हैरान और दंग रह जाता है कि जब महाकवि भास के श्रीकृष्ण संबंधी महाकाव्य बालचरितम नाटक में कृष्ण के पिता वसुदेव संस्कृत बोलते हैं और देवकी प्राकृत बोलती हैं। मध्यम व्यायोग में भीमसेन घटोत्कच संस्कृत बोलता है और उसकी माँ हिडिंबा और ब्राह्मणी दोनों ही प्राकृत बोलती हैं। दूतघटोत्कचम में राजा धृतराष्ट्र संस्कृत बोलता है, जब रानी गांधारी प्राकृत बोलती है। देवकी-वासुदेव, गांधारी धृतराष्ट्र सभी स्तर में, स्थिति में, संस्कार आदि सभी में एकदम समान भूमि पर खड़े हैं, इन सभी का जीवन एक है, परंतु फिर भी एक भाषा के अधिकारी नहीं है। वहां उच्चता और निम्नता है। यह कितना अस्वाभाविक है।

महाकवि कालिदास भी इसी विरोधाभास पथ के पथिक थे। उनके विक्रमोवर्शीयम में स्वयं देवकन्या उर्वशी प्राकृत बोलती हैं तो उनके पुत्र शुद्ध रूप से संस्कृत का पाठ करते हैं। विश्वोतर शाकुंतलम में अप्सरा मेनका की सुपुत्री शकुंतला, जिसका बालपन से पालन-पोषण ही महर्षि कणव के आश्रम में हुआ, वह प्राकृत बोलती है और राजा का सेनापति संस्कृत बोलता है। उदाहरण के रूप में हम देख सकते हैं कि अन्यतो गमिष्यामि के उत्तर में शकुंतला "अणणदो गमिस्सम" बोलती है। यह क्या विडंबना है? जंगली पुरुष की जीभ से संस्कृत और एक देवकन्या के मुख से प्राकृत? इसका हल क्या होगा? निष्कर्ष यही निकल कर आता है कि जो वेदकालीन एक दाने से दो दालों का सिद्धांत था, वह और विस्मृत हुआ और उस पथ का व्यतिक्रम हुआ। यह अत्यंत ही खतरनाक तर्क था कि संस्कृत नाटकों में पुरुष संस्कृत बोलेगा और स्त्री प्राकृत बोलेगी। यह नियम पात्रों के आधार पर न होकर मात्र लिंग के आधार पर था।

यही पुरुषपक्षीय मनोभाव आगे जाकर भारतीय साहित्य का स्वभाव बन गया। यही प्रतीत होता है। मातृवत पर दारेषु उपदेश दिया गया परंतु समाज में प्रचलित साहित्य में स्त्री को गौण दिखाया गया। स्त्री की निंदा सहज हो गया। इस कालखंड में सत्यवान-सावित्री, नल-दमयंती, दुष्यंत-शकुंतला, अत्री-अनुसूया जैसी कथाओं का सर्जन बंद हुआ। बदले में स्त्री अवहेलना ही कथा का विषय बन गया। इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है 'कथा सरितसागर'। उसमें यथानाम सैकड़ों स्त्री पुरुष संबंधी कथाएँ हैं। परंतु उनमें से एक ने भी समाज जीवन में उपर्युक्त उत्कृष्ट कथाओं की श्रेणी में प्रवेश नहीं किया।

विश्वप्रसिद्ध पंचतंत्र का ग्रंथ इस दिशा में एक अच्छा उदाहरण है। उसमें से चयनित बालकथाएँ बच्चों को सुसंस्कृत करने के लिए अतीव फलदायी हैं। परंतु उनमें से अनेक कथाएँ ऐसी हैं जिनका पाठ दंपती और परिवार बंधु साथ मिलकर नहीं कर सकते हैं। वह पाठ सर्वथा अयोग्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका रचयिता संभवतया स्त्री के प्रति विद्वेष रखने वाला है। तमाम स्त्री जातियों के प्रति भी उनके उदगार सम्मानजनक नहीं है। उसी को पुष्ट करने के लिए वह दो चार उदाहरण भी देते हैं जैसे "वह एक से बकवाद करती है, दूसरे को अनुराग से देखती है, तीसरे को हृदय से चाहती है, उसके सही प्रिय को कौन जानें!"[37]

आर्जव भगवान कृष्ण के अनुसार दैवीय संस्कृति का गुण है। पुरुष एवं स्त्री दोनों के ही लिए यह आवश्यक है। मानो वह पंचतंत्रकार कहता है स्त्री में यह गुण जन्मतः नहीं है। वह लिखते हैं "स्त्री के हृदय में जो है, वह उसकी जीभ पर नहीं। जो उसकी जीभ पर है, वह बाहर नहीं निकलता, वह वही करेगी जो उसका मन होगा। उसका चाल चलन बहुत अजीब है।[38] संकेत है कि स्त्री में आर्जव का गुण बिलकुल नहीं है। आगे चलकर वह फिर से कहता है स्त्री में कुछ जन्मजात दोष है जैसे असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अमर्यादित लोभ, अशुचिता और निर्दयता।"[39] यहाँ पर वह यह संकेत देते हैं कि स्त्री जन्म से ही आसुरी स्वभाव की है।

अनियंत्रित काम सभी के लिए नाशकारी है। किंतु ग्रंथकार स्त्री समूह को विलग करते हुए लिखते हैं "कोटि कोटि काठों से भी आग मुक्त नहीं होती। सभी नदियों से सागर संतृप्त नहीं होता। यमराज असंख्यों की मृत्यु से संतुष्ट नहीं होता और उसी प्रकार सुंदरी स्त्री कितने भी पुरुष हों, उनसे तृप्त नहीं होती।"[40]

और स्त्री की प्रकृति के विषय में एक बार पुनः कहता है कि स्त्री के लिए कोई अभोग्य नहीं, पुरुष की उम्र से उसे कोई मतलब नहीं, रूप विरूप का कोई संबंध नहीं, सारे पुरुष उसके संभोग्य हैं।[41]

संक्षेप में इतिहासोत्तर कालखंड में भारतीय स्त्री की स्थिति सिकुडती गई। पुरुष का वर्चस्व तुलना में अधिक हो गया और समाज में स्त्री "अंतर्जनम" हो गई। (केरल के ब्राह्मण अपनी स्त्रियों के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है चार दीवारों के भीतर रहने वाली।) अर्थात कुल की द्वारपालिका द्वार के भीतर की ही बंदिनी बन गई। स्त्री पुरुष के लिए उपाहस्या बन गई। पूजा-पाठ में उसका स्थान मात्र देखने और सुनने का रह गया। इतना ही नहीं बल्कि यह स्त्री के लिए अत्यंत ही पीड़ादायक था कि पुरुष के पतन के लिए भी वही दोषी ठहराई गई।

यह ज्ञात तथ्य है कि किसी भी समाज

महाकवि भास के सभी नाटकों में यह नियम बन गया था कि कथापात्र स्त्री प्राकृत भाषा ही बोलेंगी। बाद में वह संस्कृत नाटकों की अनिवार्य प्रथा बन गई। बालचरितम नाटक में कृष्ण के पिता वसुदेव संस्कृत बोलते हैं और देवकी प्राकृत बोलती है

एवं वैयक्तिक उत्थान एवं पतन स्त्री-पुरुष के स्वभाव पर निर्भर हैं। स्वयं का आचरण उसका हेतु है। एक के पतन के लिए दूसरे को उत्तरदायी ठहराना एकदम गलत है, अनुचित है। उपनिषदकालीन राजा का यहाँ पर कहना विचारणीय है। उनका कहना है "मेरे राज्य में स्वैरी नहीं है, तब स्वैरिणी कौन बनेगी?" न स्वैरी, स्वैरिणी कुत:" (छान्दोग्य - 5-11।5)। इसका तात्पर्य है कि पुरुष अथवा स्त्री अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण स्वैरी और स्वैरिणी बनते हैं। अपनी व्याभिचारिता के लिए दूसरे को दोष देना अन्याय है। परंतु हम इस चर्चित कालखंड में यह अन्याय होते देखते हैं।

फिर भी एक दूसरा ही चित्र हमारे सामने आता है, वह है तमिल प्रदेश का। विश्व की अभिजात (क्लासिकल) भाषाओं में आज भी बोले जाने वाली भाषाओं में तमिल भी है। वाक्संपदा में यह भाषा अत्यंत ही पुष्ट है। उदहारण के लिए उसमें जब यह वाक्य बोला जाता है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, तो उन्होंने इन शब्दों के लिए चारों ही मौलिक शब्द लिए जैसे अरम, पोरुल, इप्पम, वीडु। जब अन्यंत्र संस्कृत -प्राकृत विभेदन हुआ और स्त्री के लिए संस्कृत अप्राप्य होती रही तो भी तमिल प्रदेश में स्त्री अपना कर्म और धर्म अपनी तमिल भाषा में करती रही। सर्वाधिक हर्ष की बात तो यह है कि इस काल खंड में कणणवी, औवैयार, आण्डाल आदि साध्वियों का दिव्योदय हुआ। आज भी ओवैयार, आंडाल के सैकड़ों कीर्तन भजन तमिलनाडु की गलियों में गूंजते हैं। इन दिव्यात्माओं द्वारा वेदकालीन ब्रह्मवादिनी परंपरा रामसेतु के प्रदेश में अखंडित रही थी।

इस काल का सिद्धपुरुष तिरुवल्लुर अपने श्रीवचनों अर्थात तिरुक्कल में स्त्री एवं पुरुष दोनों के ही गुण-धर्मों के विषय में चर्चा करते हैं। वह कहते हैं कि पति की आमदनी के अनुसार, आनंद से जीवन बिताने वाली, घर की प्रतिष्ठा - परंपरा को सम्हालने वाली, चरित्र को वैभव से ऊपर रखने वाली, सत्य का आचरण करने वाली, अपने सद्व्यवहार से दुर्व्यव्हारियों के ह्रदय में आतंक का संचार करने वाली, कर्तव्य पालन से सिद्धि प्राप्त करने वाली स्त्री होनी चाहिए।

एक राष्ट्र के रूप में भारत पर ऐसी विपदा प्रथम बार आई थी। संपूर्ण समाज इस महामारी का प्रथम परिचय महसूस कर रहा था। समाज के मतिमान लोग अपने अपने सिद्धांतों को ही पलटने में लग गए थे। जहां पहले रूपवती स्त्री पूरे परिवार की शान होती थी, वही रूपवान स्त्री आगे जाकर परिवार के लिए जोखिम बन गई

पुरुषों से वह कहते हैं कि परपत्नी प्रेम मूर्खता है। धर्मार्थ के जानकार उससे सर्वथा मुक्त रहते हैं। परपत्नी को न देखना ही सच्चा पौरुष है। वही धर्म है, वही सदाचार है। उसी में कल्याण है। (तिरुक्कल-धर्मप्रकरण, अधिकार 6:15, संक्षेप)।

इतिहास बताता है कि दक्षिण में उत्पन्न यह जो दृष्टि थी जो औवैयार आंडाल की भक्ति से उत्पन्न हुई वह आने वाले पराधीनकाल में पूरे देश में भक्ति आन्दोलन के रूप में रूपांतरित हुई और राष्ट्रीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने में सहायक हुई।

पराधीन काल में स्त्री

स्त्री के लिए सबसे महत्वपूर्ण काल पराधीन काल रहा, क्योंकिं यह काल उसके लिए वाकई में काल बनकर आया और उसकी स्वतंत्रता एकदम समाप्तप्राय हो गई। पराधीन काल को आंकलन की दृष्टि से दो में विभाजित किया जा सकता है, पहला है निकट पश्चिमी और दूसरा है सुदूर पश्चिमी। निकट पश्चिम के आक्रांता इस्लाम मजहब के अनुयायी थे और वह जब आक्रमण करते थे तो राजनीतिक ही नहीं बल्कि मजहबी आक्रमण होता था। उनका व्यवहार असहिष्णुता और कट्टरपंथ का था। वह स्वभाव में कठमुल्ले थे। उनकी परिपाटी सहमति की न होकर असहमति और जोर जबरदस्ती की रही थी। जबकि जो सुदूर पश्चिम के आक्रमणकारी आए, उनका आक्रमण राजनीतिक और धार्मिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक भी था। उन आक्रांताओं में पुर्तगाली ही असहिष्णु एवम हठी थे, शेष कूटनीतिज्ञ थे। निकटपश्चिमी आक्रांताओं का रवैया ताड़का का था तो सुदूर पश्चिमी वालों का रवैया पूतना का था। देश के लिए अंततोगत्वा दोनों ही खतरनाक थे। इस प्राचीन देश के विशाल स्त्री समूह पर उन दोनों ही खेमों का क्या प्रभाव पड़ा, हम इसकी चर्चा करेंगे।

जो आक्रांता निकट से आए, उनका स्वभाव था स्त्री का हरण करना, उसका बलात्कार करना, स्त्री की गुलामी, उसकी मंडी लगाना आदि। उन्होंने भारत के मुख्य नगरों में भी मंडी लगाई थी। छोटी-छोटी कन्याएं भी इस अत्याचार से बची नहीं थीं। एक राष्ट्र के रूप में भारत पर ऐसी विपदा प्रथम बार आई थी। संपूर्ण समाज इस महामारी का प्रथम परिचय महसूस कर रहा था। समाज के मतिमान लोग अपने अपने सिद्धांतों को ही पलटने में लग गए थे। जहां पहले रूपवती स्त्री पूरे परिवार की शान होती थी, वही रूपवान स्त्री आगे जाकर परिवार के लिए जोखिम बन गई। यह समस्या हो गई कि आखिर उस रूपवती स्त्री की रक्षा किस प्रकार की जाए। समाज के सम्मुख यह समस्या बार बार आकर खड़ी हुई, समाज के सामने यह समस्या बार बार आई कि आखिर वह किस प्रकार अपने घरों की स्त्रियों को उन आक्रांताओं से सुरक्षित रखे जो स्त्रियों को कुछ समझते ही नहीं हैं। हिंदू समाज को विवशता में कूर्मन्याय अपनाना पड़ा। कछुआ जब खतरे का अनुभव करता है तब वह अपनी कड़ी खोपड़ी के भीतर मुंह और चारों पैर कर लेता है। और उसमें सुरक्षित रहता है। इस गतिविधि को कूर्मन्याय कहते हैं। यह आत्मसंरक्षण का सहज उपाय है। मतांध, कामांध आक्रांताओं से बचने के लिए पराधीन समाज को उपाय करने पड़े और पराभूत समाज को स्त्रियों को घर के भीतर रखना पड़ा। घूंघट की प्रथा का विकास हुआ, स्त्रियों का सहज संवाद विरल हुआ। विवाह की बेला सूर्यास्त के बाद होने लगी। नगर प्रदक्षिणा बंद कर दी गई। पुष्पिता होने से पहले ही स्त्री का विवाह किया जाने लगा। सगाई की प्रथा गुप्त होने लगी। विवाह से पूर्व वर वधू का मिलना भी बंद हो गया। बाल विवाह जैसी कुप्रथा का चलन हुआ।

इसका प्रत्यक्ष असर स्त्री शिक्षा पर पड़ा। मंच पर प्रदर्शित सांस्कृतिक कलाओं से बढ़ती उम्र की कन्याओं को वंचित होना पड़ा। धीरे धीरे नृत्य नर्तन संभ्रांत स्त्रियों हेतु निषिद्ध हो गया। मात्र संगीत शास्त्र ही इस प्रक्रिया से सुरक्षित रहा। उसका मुख्य कारण था कि वह कोठी के भीतर के कमरे से ही गूंजता रहा। उससे सार्वजनिक आपत्ति संभव नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मंचीय कार्यक्रमों का ह्रास हुआ परंतु घरेलू कार्यक्रम निरंतर रूप से चलते रहे।

एक ऐसा समाज जिसे प्रपीड़ित किया गया, उसने बदलती परिस्थितियों में कैसे समाजानुकूल रूप से स्वयं को परिवर्तित किया उसका उदाहरण हमें हिंदू समाज को देखने से मिलता है। श्रावण पूर्णिमा का धार्मिक पर्व हुआ करता था रक्षाबंधन। राखी की रक्षण क्षमता पर जोर देते हुए श्लोक यह कहता है कि इससे महाबली दानवेंद्र राजा बंधित था। उससे मैं आपको भी बाँध रही हूँ। यह राखी आपकी रक्षा हमेशा करेगी। उसे सतत रहने दो!"[42], बलि की कलाई पर व्रतस्थ महारानी मंत्रित बांधती थी। इसी के आधार पर यह उत्सव आरंभ हुआ। प्रारंभ में सदिच्छा से रक्षासूत्र पत्नी बांधती थी। परंतु कालांतर में समय की आवश्यकता के अनुसार ही यह रिश्ता बंधक और बंधित के रूप में एकदम अलग रूप में आ गया। अब इस पर्व का उद्देश्य भाई और बहन और रक्षा का हो गया। समाज बंधुओं के संरक्षण पर जोर देते हुए पर्व के उद्देश्य का और विस्तार हुआ। परिवार की रक्षा तक यह पर्व सीमित न रहकर यह समाज सुरक्षा बन गया। पारिवारिक पर्व सामाजिक पर्व बन गया।

परंतु एक जो तथ्य महत्वपूर्ण हमें परिलक्षित होता है वह यह है कि सामाजिक संकुचन के इस काल में भी स्त्रियों का संकुचन नहीं हुआ। स्त्रियाँ उपेक्षित नहीं रहीं। उनका जीवन एकांत कारावास जैसा नहीं हो पाया। क्योंकि हिंदुओं में संयुक्त परिवार की परंपरा थी। और बाहरी आक्रांताओं के काल में यह परिवार व्यवस्था और भी तीव्र हो गई। यहाँ की व्यवस्था में हवेली, कोठी, वाडा, महल, तिमहला, सतमहला, तरवाड, चौखंड, आदि। जो व्यवस्था उस समय थी वह आज की व्यवस्था से एकदम अलग थी। जैसे आज हम छोटे परिवार को न्यूक्लियर फैमिली कहते हैं, वैसे ही उस समय हर वाडे को एक न्यूक्लियर रिपब्लिक अर्थात छोटा गणराज्य कहा जा सकता था। प्रत्येक परिवार में 100-150 तक भाई-बांधव रहा करते थे और जो परस्पर एक दूसरे की रक्षा के लिए तत्पर रहा करते थे। बाहर की स्वतंत्रता से कटी स्त्रियाँ वहां पर बेरोकटोक सहजता से रह सकती थीं। इसलिए प्रत्येक जाति-बिरादरी का जीवन अपनी अपनी रीतियों के कारण चलता रहा। यही काल था तो जाति की पकड़ धीमी होती चली गई। सामाजिक जीवन छोटे से वर्ग में सिमट गया। समाज रूढ़िग्रस्त हो गया तो भी समग्र हिंदू समाज सुरक्षित रहा।

इस युग में धार्मिक जीवन बनाए रखने के लिए व्यक्ति को भक्तिमार्ग की राह जाना पड़ा। समय की मांग के अनुसार इस समय प्रादेशिक बोलियों का विकास हुआ। प्रत्येक समूह ने अपना-अपना साहित्य विकसित किया। सभी ने अपनी अपनी प्रादेशिक भाषा में भक्तिपूर्वक गाना और साहित्य और नृत्य आरंभ किया। सभी स्त्रियों को अपनी अपनी हवेली के लिए वहां पर पर्याप्त अवसर मिलता रहा। स्त्रियों की भागीदारी भी रही। इसका ही परिणाम था कि इस पराधीनता के काल में भी हिंदू समाज में अनेक साध्वियां हुईं। भक्ति आंदोलन के साधु संतों की प्रथम पंक्ति में उन्होंने स्थान ग्रहण किया। कश्मीर की लल्लेश्वेरी, राजस्थान की संत सोढ़ीनार्था, सहजो बाई, दया बाई, फूली बाई, मीराबाई, गुजरात की लीरलबाई, महाराष्ट्र की जनाबाई, मुक्ताबाई, भक्तिन कान्होपात्रा, बहिणाबाई, कोल्हापुर वेणा बाई और कर्नाटक की अक्क महादेवी आदि विभूतियाँ हमें वेदकालीन ऋषिकाओं की याद दिलाती है। राजनीतिक पराधीनता के काले कालखंड में भी हिंदू स्त्रियों ने आध्यात्मिकता की जिस लौ को जगाया उसने समाज में चेतना का विकास किया। दुनिया के इतिहास में ऐसा उदाहरण कहीं अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है। राजनैतिक रूप से नष्ट हुए अधिकारों को प्राप्त करने के लिए रानी अहिल्या, रानी दुर्गावती जैसी वीरांगनाएं रण में कूद पड़ी।

इसी कालखंड में कालडी में जन्मे आदि शंकराचार्य ने दर्शन के स्तर पर स्त्री संबंधित वैदिक तत्व को पुनः दोहराया। सौंदर्य लहरी में उन्होंने कहा कि जब तक शिव के साथ शक्ति संलग्न रहती है, तभी तक शिव प्रभावी रह सकता है। शक्ति संयोग के बिना शिव हिल भी नहीं सकते हैं।"[43] बृहदारण्यक अर्धवृग्ल की पुनुरुक्ति। यही ज्ञान सनातन राष्ट्र के ह्रदय में निरंतर स्पंदित होता रहा। अतएव उससे अनुप्राणित होकर इतनी अधिक साध्वियां राष्ट्रीय आकाश पर अपनी ज्ञान रश्मियों को प्रखरित कर सकीं।

पुनर्जागरण

सुदूर पश्चिमी आक्रांताओं का चाल चलन बहुत जटिल था। उसके लिए मैंने मायावी पूतना का उदाहरण दिया है। महान रचनाकार शेक्सपियर ने कहा है कि कोई एक हँसते-हँसते भी खलनायक बन सकता है। अर्थात One can smile and smile yet be a villain।

वही स्थिति हमें सुदूर के पश्चिमी आक्रांताओं की दिखती है। उन्होंने हंस हंस कर भारत को आत्मविस्मृत बना दिया। उस से पूरा देश उनके हाथों की कठपुतली बन गया। परंतु यह चाल अधिक दिन नहीं चल पाई। आत्म साक्षात्कार की दिशा में देश ने करवट बदली। उन्नीसवीं शताब्दी में जिस वर्ष में मैकाले साहब ने पूज्य पिता को पत्र लिखा कि आज से तीस वर्ष उपरांत भारत रूप रंग में वैसा ही रहेगा जैसा वह है, मगर रूचि से वह पूरा का पूरा अंग्रेज बन जाएगा। ठीक उसी वर्ष उसी बंग भूमि

कोलकाता में रानी राशमोनी की प्रतिमा

पर गदाधर का जन्म हुआ, जिन्हें भविष्य में रामकृष्ण परमहंस के नाम से जाना गया। उन्हें तांत्रिक विद्या में पारंगत करने के लिए आई अम्बा भैरवी। न जाने किस रूप में, न जाने किस गाँव की भेजी हुई, वह आई और श्रीरामकृष्ण की गुरुवरा बन गई। वह उस संत के आध्यात्मिक पुनर्जागरण के लिए आ पहुँची। संयोग से रामकृष्ण के तपोधाम का निर्माण कराया था अब्राह्मण समाज की रानी राशमोनी। आधुनिक राष्ट्रीय पुनर्जागरण में यही से स्त्री का योगदान आरंभ होता है। यह अत्यंत ही आनंद एवं हर्ष की बात है कि उसी दिशा में श्री रामकृष्ण की सहधर्मचारिणी माँ सारदा देवी ने भी कदम बढ़ा दिए थे। गोपालेर माँ जैसी अन्य माताएं भी इस दिव्य श्रंखला में आ गई।

मध्यकालीन पृथक्करण यहाँ समाप्त हो रहा था और इस दैवीय प्रक्रिया का सबसे बड़ा उदाहरण प्राप्त होता है सिस्टर निवेदिता के आगमन से। रीत, नीत, जन, देश, धर्म सहित सभी क्षेत्रों में नवागमन ही था। सनातन धर्म के पुण्य प्रवाह में वह धीम्ती सर्वात्मना समरस हो गई। वह इतनी समरस हो गई कि अर्थ वृगल के सूत्र को पकड़ कर कहा "यदि पुरुष जितना मानव प्राणी है, उतना ही स्त्री भी है तो मानना पड़ेगा कि विकास हेतु पुरुष को जो हक है, वही है पूर्ण विकास हेतु स्त्री का भी। पुरुष के लिंगोप्लेख में जितनी हिचकिचाहट जताई गई है उतनी ही स्त्री के संबंध में भी अपेक्षित है। पुरुष को उत्कृष्ट बनाने हेतु जितने प्रयास किए जाते हैं, उतने ही प्रयास स्त्रियों को उत्कृष्ट बनाए रखने के लिए भी करणीय है। स्त्री का विकास स्वयं में एक लक्ष्य है। वह एक पवित्र लक्ष्य है। वह पूर्णतया स्त्री केन्द्रित है। वह कदापि पुरुष विकास का अनुषंग न हो।[44]

सामाजिक स्तर पर इससे अधिक व्यापक था आर्यसमाजीय महिलाओं का योगदान। आर्यसमाज के संस्थापक संपूज्य महर्षि दयानंद ने स्त्रियों का उपनयन पुनः आरम्भ कर दिया था और उन्हें यज्ञोपवीत धारण के वैदिक संस्कार से संपन्न किया था। फलस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत में स्त्री की भागीदारी से यज्ञ करने की प्रथा पुनः प्रारम्भ हुई। वह भी होत्री, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रहान बन सकती थी। वेदाधिकार उन्हें पुनः प्राप्त हुआ। आर्यसमाज के झंडे के नीचे कई धर्मप्रचारिकाएं सागर पार करके मोरिशस, फिजी तक पहुँची। इन नई ब्रह्मवादियों ने प्रवासी देशवासियों में आर्य धर्म को बनाए रखा।

अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने में कन्याएं विमुख नहीं रहीं। अंग्रेजी साहित्य रचना में वह अगसर रही। उनमें विशेष नाम है कविवर तोरूदत्ता का। स्वामी विवेकानंद से सात साल बड़ी तोरुदत्त की उम्र मात्र 22 वर्ष ही रही परंतु इतनी अल्पआयु में ही उन्होंने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओँ में कविता रचीं। उनका कविता संकलन एंशीएंट बैलेड एंड लेजेंड ऑफ हिंदुस्तान, उन्नीसवीं शताब्दी में लंदन से प्रकाशित हुआ। उनकी कविताओं में लक्ष्मण, सावित्री, श्रवण, एकलव्य, ध्रुव, प्रह्लाद आदि कथापात्र हैं। उस छोटी आयु में भी भारतीय सनातन धर्म का दर्शन और तत्वबोध अलौकिक है। एक उदाहरण देखते हैं, "पिता हिरण्यकश्यप की आज्ञा का पालन, और अपना ईश्वरार्पित जीवन, इन दोनों के बीच जब पिताजी की कर्कशता के कारण जब परस्पर संघर्ष हुआ, तो उसका उत्तर देते हुए प्रहलाद कहते हैं, "आदरणीय पिताश्री। आप दोनों को सुनने और मानने के लिए मैं कटिबद्ध हूँ। किंतु कभी-कभी बड़ा धर्म और छोटे धर्म के बीच टकराव होता है। उस समय छोटे धर्म को छोड़ना चाहिए। अन्यथा महाहानि हो जाएगी। और हर तरफ विनाश होगा।"[45]

जब हम इन पंक्तियों को पढ़ते हैं तो हमें व्यास रचित राजा शिबी की कहानी याद आती है। उसमें देवेन्द्र श्येन पक्षी के रूप में राजा शिबि से इसी तथ्य को कहते हैं, "महाराज महत्वपूर्ण क्या है, गौण क्या है, इसे ही संज्ञान में रखकर धर्म और अधर्म का निर्णय करना होगा। महत्व जहां है उसको मानकर धर्म का निर्णय करें।"[46]

कुमारी तोरू दत्त की इसी ज्वलंत परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भारतीय आकाश पर नए कवि और कवयित्रियों ने अपनी कलम से लिखना आरंभ किया। उन सभी ने भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाया। अलंकार शास्त्र में पारंगत विद्वान कवि राजशेखर ने कहा था कि पुरुष एवं स्त्री दोनों ही कल्पना भेद के सहारे कवि बन सकते हैं। इनमें केवल मन की प्रभुता का सिद्धांत होगा, लिंग भेद नहीं।[47] इस महान राष्ट्र की महिलाओं ने उसको सिद्ध करके दिखाया। जिन पुरुषों ने प्राचीनकाल में संस्कृत प्राकृत विभाजन लिंगभेद पर करने का पाप किया था, उनको इन प्रबुद्ध स्त्रीजनों ने अपनी विद्वता और अपनी अपनी मूल्यवान कृतियों से सटीक जबाव दे दिया।

पराधीन भारत को स्वाधीन बनाने के लिए जो एक लंबी लड़ाई चली, उसमें

कोलकाता स्थित दक्षिणेश्वर मंदिर
साभार : https://www.Flickr.com/photos/indiantraveller/507469376/in/set-72157600329269569

वास्तव में कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष करना बहुत ही कठिन है। उसका अपना एक संघर्ष का समाज है। वहां का ब्रह्मास्त्र कुटुंबप्रबोधन है। इस अनूठे संघर्ष में हमारी प्रबुद्ध माताओं ने विजय प्राप्त की है। इस संघर्ष के चलते बाल विवाह, वृद्ध विवाह, सती मृत्यु जैसी कुरीतियों ने अंतिम साँसें ली। भारतीय समाज ने कई सुधार स्वीकृत किए जैसे पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा और सागर पार करना आदि

ऊर्जावान नेतृत्व दिया मैडम कामा ने। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में भारत की स्वतंत्र पताका जिस पर वन्देमातरम लिखकर गगन में फहराया गया था, उस क्रांतिकारिणी ने जर्मनी में संपन्न हुए अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन में फहराया था। उनके ही चरणचिन्हों पर देश की मातृशक्ति और स्त्रीशक्ति ने आगे कदम धरे। उस माला में ग्रामीण-नगरीय, शिक्षित -अशिक्षित, कन्या-माता, क्रान्तिकारी -शांतिवादी सहित अनगिन मोती थे।

इसी के साथ समाज सुधार के कार्य मे अनेक गृहणी पूरी शक्ति से स्वयं का कार्यक्षेत्र विकसित उस काल में विकसित हुई कुरीतियों की चुनौती का सामना करने के लिए उठ खड़ी हुई। नई नई संस्थाओं की स्थापना और संचालन के माध्यम से उन्होंने अपने कार्यो को प्रकट किया। सावित्री बाई फुले और कर्वे दो ऐसे दृष्टांत हैं। वास्तव में कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष करना बहुत ही कठिन है। उसका अपना एक संघर्ष का समाज है। वहां का ब्रह्मास्त्र कुटुंबप्रबोधन है। इस अनूठे संघर्ष में हमारी प्रबुद्ध माताओं ने विजय प्राप्त की है। इस संघर्ष के चलते बाल विवाह, वृद्ध विवाह, सती मृत्यु जैसी कुरीतियों ने अंतिम साँसें लीं। भारतीय समाज नें कई सुधार स्वीकृत किए जैसे पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा और सागर पार करना आदि। यहाँ हमें बिना संकोच के यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान में भी यह संघर्ष जारी है। और समाज में अभी भी कई कुरीतियाँ सर उठाए दिखती हैं। इन सभी का उन्मूलन केवल और केवल प्रबुद्ध मन से ही संभव है। जब उन्मूलन होगा तो उसी प्रवाह में नवोदित रीतियों को भी अपनाया जाना संभव होगा।

वर्तमान स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारतीय स्त्री का चित्र अत्यंत ही संभावनाओं से भरा हुआ है। एक ऐसी पीढ़ी सामने आई है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही एक पक्ष हैं और एक समान हैं। इस पीढ़ी की स्त्रियाँ जल, थल और अंबर के कार्यों में एक समान रूप से योगदान करती हैं। वह रूढ़िग्रस्त न रहकर विज्ञान के प्रति सोच रखने वाली स्त्रियाँ हैं। वह आस्था के साथ महत्वाकांक्षा की भी धनी है। हमारे समाज की स्त्रियों को देखकर यह आशा फिर से उत्पन्न होती है कि बहुत ही जल्द हमारा देश एक बार पुन: ही स्त्री शक्ति से गुंजायमान होगा और विविध क्षेत्रों में शीर्ष पर पहुंचेंगी।

अरुणोदय की ओर

यह कार्य पुराना है इसलिए इसमें कोई गलती नहीं है, और यह कार्य नया है और इसलिए यह गलतियों से भरा हुआ है, ऐसा कहना सही नहीं है। समाज के सुधीजन चिंतन-मनन से निर्णय करते हैं। वहीं जो मूढ़ लोग होते हैं वह सीधे दूसरों की हाँ में हाँ मिलाते हैं।[48] इस अमोल तत्व को समाज के सम्मुख महाकवि कालिदास ने प्रस्तुत किया।

इस रूढ़िवादिता का हल महाकवि मैथिली शरण गुप्त सुझाते हुए लिखते हैं: "प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियों को जो हों बुरी, बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी, प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है, जैसी अवस्था हो जहां वैसी व्यवस्था ठीक है।"
भारत-भारती 3-38

इस उक्ति के मर्म को और तरीके से समझाते हुए स्वामी रंगनाथनन्द जी ने कहा कि "संसार सदा से परिवर्तनीय है, मूल्य अपरिवर्तनीय है। परिवर्तनीय संसार का अधिष्ठान अपरिवर्तनीय मूल्य संचय है। वही कल्याणकारी है।"

प्रारंभ से इस देश के समाज का दृष्टिकोण एवं व्यवहार यही रहा है, और इसे सूचित करके दार्शनिक डॉ. राधा कृष्णन ने कहा है, "हिंदुत्व स्थिर नहीं बल्कि गतिशील है; इसलिए संभाव्य चुनौतियों को सुलझाने में सक्षम हैं।"

उसके लिए सामाजिक तैयारी आवश्यक है, इस पर जोर देते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तृतीय सरसंघचालक बालासाहेब देवरस ने सुभाषित की पंक्ति याद दिलाई कि "पिता द्वारा खुदवाया पुराना कुआं है, पानी खारा हो तो भी क्या, मैं तो वही पियूंगा। ऐसा हठ पकड़ कर बैठने वाला बेटा निंदा योग्य है।"[49]

भारत का कोई भी व्यक्ति जब स्त्री और पुरुष के विषय में विचार विमर्श करेगा, और विशेषकर स्त्री विषय में तो उसे निम्न विचारों को नहीं भूलना चाहिए। यह प्रश्न कई सारे पूर्वाग्रहों के कारण बहुत जटिल हो चला है। समवाय का मार्ग ही उचित होगा। यह भी उतना ही सत्य है कि समाज सुधार के दुर्गम पथ पर सुधारवादी हमेशा अल्पसंख्यक होंगे और रूढ़िवादी बहुसंख्यक होंगे। किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि अंतत: सुधार ही है जो विजय का वरण करेगा।

हमेशा ही यथास्थिति प्रतिलोमी रूढ़िवादियों का नारा रहा है कि आचार लंघन करना अत्यंत ही आत्मघातक है। किंतु वास्तविकता यह है कि समाज के आचार में परिवर्तन स्वाभाविक और सतत है। अर्थात यह भी हो सकता है कि जो आज आचार है वह कल अनाचार भी हो सकता है। इस विषय में अंग्रेज कवि टेनिसन का कहना है कि "पुराना क्रम नए क्रम को स्थान देकर किनारे बैठ जाता है। वह भी ईश्वरीय विधान है। नहीं तो वह बासी क्रम संसार को प्रदूषित कर देगा।"[50] स्त्री विषय में भी यह तथ्य अकाट्य है।

भारतीय स्त्री का विकास कितना उत्तुंग, उदात्त, उत्कृष्ट, उपक्रमी, उपकारी हो सकता है, और इसका दैदीप्यमान जीता जागता उदाहरण है माता अमृतानन्दमयी देवी। जैसा श्री कृष्ण योगेश्वर ने गीता में कहा, वैसा है उनका जीवन - सब भूतों की तरफ से द्वेषभाव से रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी, हेतुरहित दयालु, ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख दुखों की प्राप्ति में सम क्षमामय।[51] उनका जीवन ही उनका दर्शन है। उन्होंने गत तीस वर्षों में 22 ब्रह्मस्थान की स्थापना की है। आश्लेषिका साध्वी की

संज्ञा से विश्व प्रख्यात उस तेजस्विनी ने 34वें वर्ष की आयु में प्रथम स्थानं की प्रतिष्ठा की और 28वर्षों में यह परम पवित्र कार्य संपन्न किया। ब्रह्मस्थानं आधुनिक देवमंदिर है, जहां शिव, पार्वती, गणेश और नागरूपी कार्तिकेय देवता हैं। इन स्थापित मंदिरों में पूजन करने का जितना अधिकार पुरुष पुजारी को है उतना ही अधिकार पुजारिन का है। सभी को योग्य प्रशिक्षण दिया जाता है और किसी भी प्रकार का भेदभाव वहां पर नहीं है। साधक -साधिका के ब्रह्मचर्य के क्षरण या स्खलन का भय भी नहीं है। पूरी मानवजाति का साधना स्थल ब्रह्मस्थान है। भारत के बाहर मोरिशिस राष्ट्र में एक ब्रह्मस्थान होने के साथ पूरे भारत में दिल्ली, बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तेलंगाना, तमिलनाडु, केरल, आदि सात राज्यों में इक्कीस ब्रह्मस्थान हैं। भारत के इतने वर्षो के आध्यात्मिक स्थानों के इतिहास में किसी भी महिला द्वारा स्थापित मंदिरों की यह अनूठी श्रंखला है। यही प्रार्थना है कि भविष्य में इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि ही हो। पूज्य अम्मा का अधिष्ठान अध्यात्म है, न कि रूढ़िबद्धीय पंथीय आचार। यही वह बिंदु है जहाँ पर सर्वोच्च न्यायालय के सर्वमान्य न्यायमूर्ति चंद्रचूड का सारगर्भित वाक्य स्मरण में आता है। "आध्यात्मिक साधना सफल करने का जो अधिकार प्रत्येक स्त्री को है, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसे रोकने का कारण कोई भी पंथ या संप्रदाय न बने"[52] अम्मा के इस क्रांतिकारी आधात्मिक कदम में चिर पुरातन ऋषिभूमि की अमृतचेतना सम्मिलित है। उसका संचार साथ ही साथ स्त्री और पुरुष दोनों के अर्धवृगल में ही। यह है उदीयमान जनता की हृदय कामना। Ⓜ

संदर्भ

1. *द्विधाकृताङ्कत्मनो देहमर्धेन पुरुषोङ्कभवत्, अर्धेन नारी......(मनुस्मृति -1 - 32)*
2. *सज्जन्तु विश्वे देवा: समापो हदयानि नौ सं मातरिश्वा सं धाता सम् देष्ट्री दधातु नौ।। (ऋग्वेद - 10-75-47)*
3. *सूत्रमाणं पृथिवीं ध्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् दैवीं नावं स्वचरित्रामनागसमस्त्रवन्तीम: रुहेमा स्वस्तये।। (ऋग्वेद -10-63-10)*
4. *दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावन् ग्रामणीग्रमेति तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य: प्रथमो दक्षिणामाविवाय। (ऋग्वेद -10-107 -5) अर्थ:- दाता को पहले बुलाया जाना है, वह प्रमुख माना जाता है। दक्षिणावान् दानशील ग्रामाध्यक्ष सबसे आगे चलता है। उसे ही मैं सब का पालक राजा मानतू हूँ जो सबसे पहले मनुष्यों के बीच में दक्षिणा देता है। (पं. वेदमूर्ति सातवलेकर)*
5. *अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितूषि प्रथमा यज्ञियानाम् (ऋग्वेद -10-125-3)*
6. *"सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति" (केनोपनिषत् -4-1) अर्थ:- उस, स्त्री ने कहा कि यह ब्रह्म के ही विजय में इस प्रकार आप बडे हो जाइये। इस प्रकार वह ब्रह्म है, ऐसा उस को ज्ञान हुआ।)*
7. *पत्येर्नोज्ञसंयोगे - वेदविधानेनोढा, अन्यत्रोपचारात् पत्या उद्वाहविहितमन्त्रादिना ऊढ़ा इति भरत: (शब्दकल्पद्रुम)*
8. *जाया - तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुन: (ऐतरेय ब्राह्मण)*
9. *यत्र भार्यागृहं तत्र भार्याधीनो गृहे वसेत् न गृहेण गृहस्थ: स्यात् भार्यया कथ्यते गृही। (पराशर स्मृति)*
10. *'स्त्यायाति गर्भो यस्यामिति' (शब्द व्युत्पत्ति)*
11. *शुद्धा: पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणा हस्तेषू प्रपृथक सादयामि। यत्काम इदमभिषिन्चामि वोहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे।। (अर्थ - 6-122-5)*
12. *संजानाना उप सीदन्नभिक्षु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यान। (ऋग्वेद -1-72-5)*
13. *"कन्या वारवायति सोममपि स्तुताविदत् अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सूनवै त्वा शक्राय सूनवै त्वा।" (ऋग्वेद -8-91-1)*
14. *साम्राज्ञी श्वशुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्रां भवननांदरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधि देवृषु। (ऋग्वेद - 10-85-46)*
15. *अहम् वदामि नेत्वं, सभायामह त्वं वद ममेदसस्त्वं केवलो नान्यसौ कीर्तयाश्चन। (अथर्व -7-38-4)*
16. *सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् (ऋग्वेद-1-116-15)*
17. *"येन जिगाय शतवत् सहस्त्रं गावां मुद्गल: पृतनाज्येषु" (जिसके द्वारा मुद्गल ने सैकड़ो हजारो गायों को युद्ध में जीत लिया।) (ऋग्वेद - 10-102-9)*
18. *सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्अब्रुवन् विब्रुवन् वाङ्कपि नरो भवति किल्बिषी। (मनु स्मृति - 8-13)*
19. *हतं त्वया राष्ट्रमिदं स्वराज्यम् हता स्म सर्वा: सहमन्त्रिभिश्च। (वाल्मीकि रामायण - अयोध्या - 61-26)*
20. *इमं प्रश्नं इमे ब्रत सर्व एव सभासद: जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपा:। (महाभारत - सभापर्व - 67-41)*
21. *न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा: न ते वृद्धा: ये न वदन्ति धर्मम् नासौ ध र्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यत् छलेनानुविद्धम्। (महाभारत -सभापर्व - 67-53) (यही श्लोक दुबारा उद्योग पर्व - अध्याय 35-58 में मिलता है।)*
22. *लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन् नाहमुत्सहे अनार्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम एकमाहुर्वैश्यवरं द्वौ तु क्षत्रस्त्रिया वरौ त्रयस्तु राज्ञो राजेन्द्र ब्राह्मणयस्य शतं वरा: पापियांस इमे भूत्वा संतीर्णा पतयो मम वेत्स्यन्ति चौव भद्राणि राजन् पुण्येन कर्मणा। (महाभारत - सभापर्व -71 - 34, 36)*
23. *'यदर्थ क्षत्रिया सूते तस्य कालोयमागत: (महाभारत - उद्योगपर्व - 137 - 10)*
24. *भुक्तं राज्यफलं पुत्रा: भर्तुर्मे विपुलं पुरा। (महाभारत - आश्रमवासिकपर्व - 17 - 17) नाहं राज्यफलं पुत्रा: कामये पुत्रनिर्जितम् पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा विभो (आश्रमवासिकपर्व - 17 - 19) श्वश्रू-श्वश्रुरयो: कृत्या*

शुश्रूषां वनवासिनोः तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेबरम्। (आश्रमवासिकपर्व - 17 - 20)

25. *स्त्रियोऽङ्कपि यस्यां युद्धेयुः किमु वष्णिमहारथाः (महाभारत - सभापर्व - 14 - 51) तपस्यां वयममित्रध्न निवासामो ङ्ककुतोभयाः (महाभारत - सभापर्व - 14- 52)*
26. *श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत। (महाभारत - अनुशासनपर्व - 46 -15)*
27. *नित्यं निवसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता शोभना शुभयोग्या च पूज्या मङ्गलकर्म सु। (महाभारत -अनुशासनपर्व - दक्षिणात्य -22-33)*
28. *दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दृश दश चौव पितृन् माता सर्वा वा पृथिवीमपि। (महाभारत- अनुशासनपर्व - 105 - 14,15)*
29. *"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः...;..."(भगवद्गीता- 9-30)*
30. *विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः (मनुस्मृति - 5-154)*
31. *नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नापयुपोषणम् पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते। (मनुस्मृति - 5- 155)*
32. *पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत् आयुष्यं हरते भर्तुः नरकं चौव गच्छति। (कई लोग इस को प्रक्षिप्त मानते है।) (मनुस्मृति-5-155/6)*
33. *बालया वा युवात्या वा वृद्धया वाङ्कपि योषिता न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि। (मनुस्मृति -5 - 147)*
34. *बाल्ये पितृवशे तिष्ठेत् पाणिग्रहस्य यौवने पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्....... गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले। (मनुस्मृति - 5 - 148, 149)*
35. *अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः संस्कारार्थ शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः पतिसेवा गुरुर्वासो गृहार्थोग्निपरिक्रिया। (मनुस्मृति - 2-66 - 67) अर्थ- शरीर संस्कार के लिए पूर्वोक्त समय पर क्रम से स्त्रियों के विवाह को छोड़ कर सब संस्कारों को बिना मन्त्र के ही करना चाहिए। स्त्रियों का विवाह संस्कार ही वैदिक संस्कार (यज्ञोपवीत धारण), पति सेवा ही गुरुकुल निवास, गृहकार्य ही अग्निहोत्र कर्म, कहा गया है।)*
36. *यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः यत्र तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः (मनुस्मृति - 3 - 56)*
37. *जल्पयन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्। (पञ्चतन्त्र - 1 - 143)*
38. *यदन्तस्तन्न जिह्वायां यज्जिह्वायां न तद्बहिः यद्वितं तन्न कुर्वन्ति विचित्रचरिताः स्त्रियः (पञ्चतन्त्र - 4 - 53)*
39. *अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजाः (पञ्चतन्त्र - 1 - 207)*
40. *नाग्निस्तप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना।*
41. *नासां कश्चिदगम्योस्ति नासां च वयसि स्थितिः विरुपं रूपवन्तं वा स्त्रियास्तिष्ठन्ति सर्वदा। (पञ्चतन्त्र - 1 - 153)*
42. *येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः तेन तां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल। (शब्द कुल्पद्रमं - IV - पृष्ठ 79)*
43. *शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दतुमपि। (सौन्दर्य लहरी)*
44. *If woman is really as much a human being as man, then she has the same right to her fullest possible developement as he has- If we should hesitate to emphasise the sex of man then we ought also to hesitate at emphasising that of woman- If we seek by every avilable means to ennoble the one, then we must seek equally to ennoble the other- The development of woman must be regarded an end, a sacred end- And this for the sake of woman herself and not in anyway as a mere acessory to the happiness or well being of man-* ***(Complete Works if Nivedita & Vol 3 P-453)***
45. *Let not my words, Sire, give you offence To thee, and to my mother, both I give as due all reverence,And to obey thee am not loth- But higher duties sometimes clash With lower & then the last must go & Or there will come a fearful crash In lamentation] fear] and woe-* ***(Ancient Ballads And Legends of Hindustan- & P-115 & Toru Dutt)***
46. *गुरुलाघवमादाय धर्माधर्मविनिश्चये यतो भूयांस्ततो राजन् कुरुष्व धर्मनिश्चयम्। (महाभारत - वनपर्व - 131 - 13)*
47. *पुरुषवत् योषितोपि कविः भवेयुः संस्कारो ह्यात्मनि समवैति न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागं अपेक्षते। (काव्यमीमांसा)*
48. *पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यं सतः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविकाग्निमित्रम् - 1 - 1)*
49. *तातस्य कूपोऽङ्कयमिति ब्रुवाणः क्षारं जलं का पुरुषाः पिबन्ति।*
50. *"The Old order changeth yielding place to new And God fulfills Himself in many ways Lest one good custom should corrupt the world" - Alfred Tennyson*
51. *अद्वेष्टा सर्वभूतानां मेत्रः करुण एव च निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी। (भगवद्गीता - 12 - 13)*
52. *"Religion cannot become a cover to exclude and to deny the right of every woman to find fullfilment in worship." (Dr. Dhanjaya Y Chandrachud - Sep 28 - 2018 - S- C- Judgement.)*

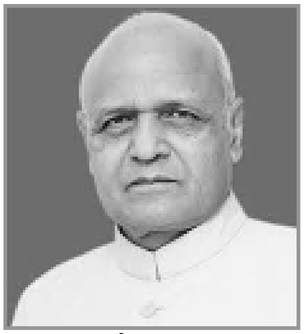

प्रो. भगवती प्रकाश

परिवार, गृहस्थाश्रम समाज और राष्ट्र जीवन

भारतीय लोकजीवन की सबसे बड़ी विशिष्टता है परिवार। वर्णाश्रम व्यवस्था की विभिन्न व्याख्याओं में बारंबार यह बात कही गई है कि सभी चार आश्रमों का आधार गृहस्थ आश्रम ही है और गृहस्थ आश्रम का ध्येय और आधार दोनों परिवार ही है। इसका कारण यह है कि परिवार ही वह संस्था है जो समाज, देश और विश्व को सही दिशा दे सकती है। एक विवेचन

परिवार हमारी सांस्कृतिक विरासत का एवं समाज जीवन हेतु सर्वाधिक अनमोल उपहार है। पारिवारिक सह–जीवन ही हमारी सर्वांगीण उन्नति का आधार भी है। परिवार में जो परस्पर सहयोग, सहायता व सहानुभूति का वातावरण रहता है, वही परिवार के प्रत्येक सदस्य की शक्ति का स्रोत भी होता है। हमारे पारिवारिक जीवन की अनगिनत सुमधुर स्मृतियां, हमें आजन्म प्रेरणा देती हैं। हमारी विविध जानकारियों, व्यक्तिगत व सामाजिक अनुभवों, संस्कारों, जीवन मूल्यों, सामर्थ्य एवं शक्ति का स्रोत भी हमारा परिवार ही है। परिवार–जीवन के ये सभी अजस्र अनुदान हमें जीवन भर प्राप्त होते रहें व उनमें वृद्धि होती रहे, इस हेतु हमारा भी सबसे पावन कर्तव्य अपने परिवार व कुटुंब को सर्वोच्च प्राथमिकता देना है। परिवार में हमारी पारस्परिक सुरक्षा का आधार भी हमारा पारस्परिक सहयोग है। कोई व्यक्ति जन्म से ही कितना भी निःशक्त व अयोग्य हो, उसका परिवार उसके योगक्षेम की सदैव ही पूरी चिंता करता है। जन्म के बाद भी, कभी भी जीवन में कोई भी अयोग्यता आ जाए, तब भी परिवार या कुटुंब ही व्यक्ति का साथ देता है। किसी व्यक्ति में कितनी ही कमियां व दुर्गण हों, उसका परिवार उसका कभी परित्याग नहीं करता है, वरन हर संकट से उबारने में उसका सहयोग करता है। हम अपने जीवन में सतत अनुभव करते हैं कि, जीवन में आगे बढ़ने व जीवन को निष्कंटक बनाने में सर्वाधिक निःस्वार्थ सहयोग, हमें अपने परिवारजनों से ही प्राप्त होता है। सामान्यतः कुटुंबी जन व परिवारजन, बिना किसी स्वार्थ या प्रतिलाभ की अपेक्षा के, हमें सब प्रकार का सहयोग प्रदान करते हैं। लेकिन यह सब पारस्परिक परिवार भाव से ही संभव होता है।

वस्तुतः परिवार पारस्परिकता का पर्याय है। उसमें पितृ प्रधानता, मातृ प्रधानता, व्यक्ति संप्रभुता या वैयक्तिक अहम्मन्यता या स्वच्छंदता को कोई स्थान न होकर पारस्परिक स्नेह, कर्तव्यभावना व अधिकतम आपसी सहकार व सहयोग का भाव सर्वोपरि है।

समाज एवं राष्ट्र जीवन में परिवार व गृहस्थाश्रम का महत्व

समाज जीवन की चार आश्रमों अर्थात ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम में श्रेष्ठतम व सर्वोपरि आयाम गृहस्थाश्रम माना जाता है। गृहस्थाश्रम में ही शिशु, बाल व किशोर से युवा अवस्था में पहुँचने तक नयी पीढ़ी का लालन पालन होता है। अपने अर्थोपार्जन की आयु पर होने के उपरांत वानप्रस्थ व संन्यास की आयु अर्थात वरिष्ठ नागरिकवय प्राप्त होने के उपरान्त वृद्धों की सेवा भी गृहस्थाश्रम में जीवन यापन कर रहे गृहस्थ दंपती ही करते हैं। एकाकी जीवन, चाहे विवाह न होने से हो अथवा विवाह विच्छेद या तलाक हो जाने पर हो, में आबाल वृद्ध किसी के पालन का दायित्व निर्वहन संभव नहीं है। पाष्चात्य देषों में विवाह रहित जीवन, विवाह विच्छेदोपरांत एकाकी जीवन या विवाह विच्छेदोपरांत पुनर्विवाह की दषा में सौतेली माँ या सौतेले पिता युक्त परिवार बहुत आम बात है। भारत में विगत दो दशकों में विवाह विच्छेद व परिवार न्यायलयों में बढ़ते विवाद अत्यन्त चिंताजनक स्थिति की ओर बढ़ रहे है। व्यक्ति के सुखमय जीवन में परिवार सर्वोपरि आधार है। परिवार जीवन में दंपती में आत्मीयतापूर्ण पारस्परिकता पहली आवश्यकता है। व्यक्ति संप्रभुता अथवा एकाकी मातृप्रधानता या एकाकी पितृ प्रधानता परिवार को जोड़कर रख पाए यह आवश्यक नहीं है। पारस्परिक

आत्मीयतापूर्ण पारस्परिक सहयोग की वृत्ति सफल, सुखी व स्थिरतापूर्ण दाम्पत्य की पहली आवश्यकता है।

पाश्चात्य पारिवारिक विघटन दर देश की अर्थव्यवस्था के लिए असह्य

पश्चिमी देशों में उनके सकल घरेलू उत्पाद के 25–25 प्रतिशत तक राषि सामाजिक सुरक्षा पर व्यय हो जाती है। अभिभावकों के समर्थन के अभाव मे बच्चों की छात्रवृति व वृद्धावस्था पेंशन पर इतनी राशि व्यय कर पाना असंभव है। हमारा गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों से युत पारिवारिक जीवन हमें इतने असह्य सामाजिक सुरक्षा व्ययों के दायित्व से बचाये हुए है। हमारी तो सकल घरेलू उत्पाद में करानुपात (टेक्स–जी.डी.पी. अनुपात) ही केन्द्र का 9.5 प्रतिशत व केन्द्र व राज्यों का संयुक्त रूप से भी मात्र 17 प्रतिशत है। कोरोना जनित लॉकडाउन व आर्थिक गतिरोधवश इसमें 2020–21 में तो भारी गिरावट अपेक्षित है। षिक्षा, चिकित्सा व रक्षा व्यय के लिए ही हम कठिनाई पूर्वक ही और अपेक्षा से अत्यंत न्यून संसाधन जुटा पा रहे हैं। यदि गृहस्थाश्रम की अवधारणा और परिवार भाव तिरोहित हो जाने पर बाल आश्रम, छात्रवृत्तियों एवं वृद्धावस्था पेंशन का भार हमारी अर्थव्यवस्था सहन करने में सक्षम ही नही है। परिवार की बच्चों व वृद्धो का एकमेव आश्रय है।

गृहस्थाश्रम व परिवार भाव के प्रति वेद वाक्य

वेदों में ऋषियों ने हमारे राष्ट्र जीवन को चार आश्रमों में (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) बाँटा है। सद्गृहस्थों के परिवार में बच्चे से वृद्ध पर्यन्त सभी लोग कैसे रहें इसे परिवार के सभी सदस्य समझ कर चलें तो 'परिवार सदैव एकात्म, संगठित और सुखी रहेगा।' इसमें भी सर्वोपरि पति–पत्नी के बीच आजन्म सौहार्दपूर्ण व्यवहार प्रमुख है। परिवार व कुटुंब में बच्चों को सद्संस्कार देने के लिए यही पहली आवश्यकता है। इसीलिए ऋग्वेद के मंत्र में परमात्मा आशीर्वाद देता है कि –

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमार्युव्यश्नुतम।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।
(ऋ 10.85.42)

वेद मंत्र में परमात्मा पति और पत्नी को आशीश दे रहा है कि 'तुम दोनों यहीं रहो, (परिवार में) सदैव एकत्र तुम एक दूसरे से अलग न होवो, तुम दोनों सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करो, अपने घर में पुत्र पौत्र और नातियों के साथ खेलते हुए आनंदपूर्ण (प्रसन्न) रहो।' इस प्रकार हिन्दू संस्कृति में विवाह अटूट बन्धन है, जहाँ विवाह विच्छेद (तलाक) का कोई स्थान नहीं है। पति–पत्नी आजन्म साथ रहें यही विधान है।

अविवाहित पुत्र–पुत्री परिवार में रहते हुये भी मन, वचन कर्म से ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुए ज्ञान साधना पूर्वक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का संचय करते रहें। समय आने पर विवाह कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके इस संचित ज्ञान व शक्तियों को गृहस्थ के विभिन्न कर्तव्यों के निर्वहन नियोजित करें। वानप्रस्थ आश्रम में पुनः समाजोपयोगी ज्ञान, कौशल व शक्तियों का ब्रह्मचर्यपूर्वक (संयम से), स्वाध्याय, जप एवं तप द्वारा वांछित समाजोपयोगी गुण अर्जन करके समाजोपयोगी कार्यों में संलग्न होने चाहिए और संन्यास आश्रम में अपने

साभार : https://www.pravakta.com/importance-of-the-family-and-its-changing-nature/joint-indian-family-clipart-joint-family-images/

जीवन में संग्रहीत, समग्र ज्ञान, विज्ञान एवं अनुभव को समाज के उन्नयन में लगाने का आदेश वैदिक व्यवस्था में है। आज के समय में व्यक्ति चारों आश्रमों की अपनी भूमिका घर परिवार में रह कर पूरी करे। प्राचीनकाल जैसे गुरुकुल एवं कुटि प्रवेशक संन्यास लेकर सामाजिक कार्य करना आज समीचीन नहीं रह गया है। लेकिन आश्रम सापेक्ष मर्यादाएं समाज जीवन की गुणवत्ता वृद्धि में परम उपयोगी है।

परिवार में रहते हुए सद्गृहस्थ की भूमिका अपनाकर ही मनुष्य जीवन, समाज जीवन व राष्ट्र जीवन में निखार लाया जा सकता है। इस संयुक्त शक्ति व ऊर्जा से आर्थिक एवं सामाजिक लाभ व अत्यधिक परस्पर अवलंबन मिलता है। इस संगठन की छाया में परिवार के बच्चे, बूढ़े, विधवाएं, अशक्त,उपार्जन न कर सकने वाले, अयोग्य व्यक्ति भी निरापद एवं बड़े आनंदपूर्वक अपना समय काट लेते हे। एक दूसरे के दुख-दर्द को बंटाकर बड़ी से बड़ी मुसीबत को हलकी कर लेते हैं।

इंग्लैंड में मैरिज फाउंडेशन और यूनिवर्सिटी ऑफ लिंकन द्वारा 14 वर्ष की आयु के बच्चों की 10929 माताओं का बाल मनोरोग पर सर्वेक्षण कर उसे नवंबर 2017 में प्रकाशित किया गया। इस सर्वेक्षण में पाया गया कि जिन बच्चों के माता-पिता पृथक हो जाते हैं अथवा बिना विवाह के साथ रह रहे होते हैं उन बच्चों में किशोरावस्था से पहले ही मानसिक रूग्णता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं

पश्चिमी देशों में परिवार विच्छेद जनित बाल मनोरोगों की समस्या

अमेरिका सहित अधिकांश पाश्चात्य देशों यथा यूरोप, आस्ट्रेलिया आदि में भी बढ़ते विवाह विच्छेद व एकाधिक बार पुनर्विवाह, उनके कारण एकल अभिभावक अथवा परिवार में सौतेले माता या पिता या सौतेल बच्चों से युक्त परिवारों की बढ़ती संख्या के कारण वहां बाल व किशोर मनोरोगियों की संख्या बढ़ रही है। वहां कलह पूर्ण परिवारों या विखण्डित अथवा विच्छेदित परिवारों में बाल मनोरोग महामारी जैसी द्रुत गति से बढ़ने लगे हैं। ऐसे विखण्डित या सौतेले परिवारों में एटेंशन डेफिशिएंसी हाइपर एक्टिविटी सिंड्रोम जैसे विकारों से बढ़ती अपराध वृत्ति, संस्कार विहीनता आदि समस्याओं से विवाह रहित युगल सह-जीवन, उसके कारण विवाह रहित मातृत्व आदि जैसी कई अकल्पित समाज शास्त्रीय संकट व विडंबनाएँ भी बढ़ रही हैं। भारत में भी विगत दो दशकों में विवाह विच्छेद (तलाक) की दर 15 गुनी हुई है और इसके बढ़ने की दर उत्तरोत्तर तीव्र होती जा रही है। वर्ष 2001 में यह दर 1 विवाह विच्छेद (तलाक) प्रति 1000 दंपती थी जो 2017 में बढ़कर 15.1 प्रति 1000 दंपती (1.15 प्रतिशत) हो गई है।

इंग्लैंड में मैरिज फाउंडेशन और यूनिवर्सिटी ऑफ लिंकन द्वारा 14 वर्ष की आयु के बच्चों की 10929 माताओं का बाल मनोरोग पर सर्वेक्षण कर उसे नवंबर 2017 में प्रकाशित किया गया। इस सर्वेक्षण में पाया गया कि जिन बच्चों के माता-पिता पृथक हो जाते हैं अथवा बिना विवाह के साथ रह रहे होते हैं उन बच्चों में किशोरावस्था से पहले ही मानसिक रूग्णता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। एक अन्य सर्वेक्षण में (गटमैन एट अल 2015) शोधकर्ता ने पाया कि माता-पिता में से एक ही अभिभावक अथवा परिवार में सौतेली मां अथवा सौतेले पिता होने की दषा में बच्चों में मानसिक स्वास्थ्य की गंभीर समस्या देखी जाती है।

उपरोक्त मेरिज फाउंडेशन के ही सर्वेक्षण में पाया गया कि बिना विवाह के ही साथ रह रहे युगल माता-पिता के बिना विघटन के ही 27 प्रतिशत बच्चों में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ देखी गई। तलाक की दषा में तलाक लेने वाले अभिभावकों के 32 प्रतिशत बच्चों में गंभीर मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ पाई गई। और बिना विवाह साथ रह रहे (लिव इन रिलेशनशिप) वाले जोड़ों के पृथक हो जाने की दषा में 38 प्रतिशत बच्चों में मनोरोग की समस्या पाई गई।

अमेरिका में ही किषोर अवस्था के पूर्व मनोचिकित्सा वार्ड में इलाज ले रहे 154 बच्चों का एक अध्ययन लिंकन पेरिर बिहेवियरल हेल्थ सेंटर पर जुलाई से दिसम्बर 2012 के बीच किया गया। इस अध्ययन में पाया गया कि किषोरावस्था से पूर्व मनोरोग से ग्रस्त होने वाले बच्चों में से केवल 11 प्रतिशत बच्चे ही ऐसे थे जो अपने दोनों नेसर्गिक माता पिता के साथ रह रहे थे। अन्यथा 89 प्रतिशत बच्चे ऐसे थे जिनकी परिवार संरचना किसी न किसी रूप में विखंडित हो गई थी। इन बच्चों में 71 प्रतिशत बच्चे ऐसे थे जिनके परिवार में कलह या विघटन के कारण उनके अभिभावक अथवा भाई या बहिन को भी मानसिक स्वास्थ्य की समस्या रही है।

चीन का परिजनों की सेवा पर बना संग्रहालयः चीन में कम्युनिस्ट क्रांति के पूर्व संयुक्त परिवार होते थे, बुजुर्गों का सम्मान होता था और परिवार में सदस्य एक-दूसरे से घनिष्टता से जुड़े होते थे। चीनी समाज में पारिवारिक मूल्यों का सम्मान व आदर था। 1949 के बाद साम्यवादी व्यवस्था ने चीन की इस पारिवारिक व्यवस्था को प्रभावित किया। अब पुनः आज चीनी परिवार, सामाजिक समूह व सरकार मिलकर अपने पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। वहां एक ऐसा 'सेवा से पुण्यार्जन' नामक 10 लाख डालर (6.5 करोड़ रूपये तुल्य) लागत से संग्रहालय (म्यूजियम) बनाया गया है जिसमें उन लोगों की तस्वीरें प्रदर्शित की गई हैं जिन्होंने बुजुर्ग माता-पिता व अन्य परिजनों की त्यागपूर्वक व निःस्वार्थ भाव से सेवा की है या बच्चों को विशेश स्नेह तथा आदर व सम्मान दिया है। एक करूणा की मूर्ति महामानव या आदर्श पुत्र/पुत्री की तरह अपने अभिभावकों की सेवा करने वाले लोगों की एक चित्र प्रदर्शनी वहाँ प्रस्तुत की गई है। उदाहरणार्थ इस संग्रहालय में एक चित्र उस पुलिस कर्मचारी का है जिसने अपने बिस्तर पर पड़े माता-पिता की वर्षो तक सेवा तथा चिकित्सीय देखभाल की। उन्हें पूरी तरह से दवाई तथा सेवा सदा

समय पर उपलब्ध कराई। यह कहा गया कि यह व्यक्ति मानवीय करूणा व दया का अद्भूत उदाहरण है। एक तस्वीर उस 8 वर्ष की अबोध बालिका की है जिसने अपनी लकवाग्रस्त मां की वर्षो तक सेवा की और इसके साथ-साथ अपनी पढ़ाई भी जारी रखी। एक और ऐसा ही चित्र संग्रहालय में प्रदर्शित है जिसमें एक अध्यापक ने अपनी वृद्ध मां जिसे अल्जाइमर रोग हो गया था, उसकी खूब सेवा की और सदैव अपने साथ रखा और वह जहां भी जाता था उसे अपने साथ रखता था। इसी प्रकार उन दो बेटों के चित्र भी इस संग्रहालय में प्रदर्शित हैं जिनमें, दो पुत्र अपनी मां को एक गाड़ी में बिठाकर चीन के कई शहरों की यात्रा करवा चुके हैं। उनकी मां की यह इच्छा थी कि वह अनेक शहरों की यात्रा करें। यह लगभग श्रवण कुमार की कथा जैसा उदाहरण है।

चीन के परिवार के हित में त्याग की महिमा को दर्शाने वाले 'दी माडर्न फिलिअल पीटी कल्चर म्यूजियम (The Modern Filial Piety Culture Museum) में प्रदर्शित चित्रों को देखने के लिए बड़ी संख्या में लोग अपने बच्चों के साथ आ रहे हैं। इससे बच्चों में बुजुर्गों के प्रति सम्मान व आदर की भावना, सेवा का भाव तथा पारिवारिक मूल्य व आदर्श पुनः जागृत होंगे। पारिवारिक मूल्यों की रक्षा में सन्नद्ध परिवारों व उनके सदस्यों का सार्वजनिक सम्मान भी करना चाहिए। अपने वृद्ध, अशक्त व अक्षम परिजनों की सेवा करने वाले लोगों का सम्मान व उन्हें पुरस्कृत भी करना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यही है कि बाल्यावस्था से ही पारिवारिक मूल्यों के संस्कार दिये जाएं।

वेदों व पुराण आदि शास्त्रों में पारिवारिक जीवन

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। ऋग्वेद को यूनस्को ने विश्व-विरासत घोषित किया हुआ है। वैदिक चिंतन के अनुसार व्यक्ति से परिवार और परिवार और परिवार से समाज व राष्ट्र का निर्माण होता है। वेदों के अनुसार लोक कल्याण की भावना से तप में दीक्षित ऋषियों ने राष्ट्र का निर्माण ही पहल राष्ट्र के तेज, ओज, व बल में सद्ग्रहस्थों का सर्वोच्च योगदान होता है। इसीलिए वेदों में सद्गृहस्थों से युक्त राष्ट्र के उत्कर्ष का शीर्ष निर्देश है। ऋग्वेद में परिवार को तपःस्थली कहा है। नारी सम्मान को उसकी सर्वोपरि साधना कहा है। ऋग्वेद 3(53/6)। पद्म पुराण में पत्नी तीर्थ अर्थात पत्नी का परितोष व सम्मान को भी तीर्थ तुल्य पुण्यप्रद कहा है। उसमें माता-पिता, गुरू व पति-पत्नी को तीर्थ रूप में विवेचित किया है। परिवार में सौहार्द व परस्पर सम्मान के अभाव में तीर्थयात्रा को भी उसी प्रकार निष्फल ठहराया है, जैसे तीर्थजल में निवास करने वाले मछली आदि प्राणियों के लिए उस तीर्थजल में अवगाहन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

वेदों में परिवार जीवन

परिवार में किसे कैसे रहना चाहिए इसकी स्पष्ट मर्यादा वेदों ने बताई है। परिवारों के योगक्षेम, लोक व्यवहार, आर्थिक व कर्तव्यों की मर्यादायें भी वेदों में सविस्तार वर्णित है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी आदि संबंध में पारस्परिक कर्तव्यपालन के साथ-साथ, एक गृहस्थ को स्वयं भी किस प्रकार जीवन-यापन करना चाहिए, इसका संतुलित विवेचन वेदों व हमारे प्राचीन ग्रंथों में है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार में अनेक संबंधों से युक्त होता है। वह किसी का पुत्र है, तो किसी का पिता भी है। किसी का वह भाई है, तो किसी का मामा भी है। किसी का वह पति है, तो किसी का वह दामाद भी है। किसी की बहिन या पुत्रवधु भी हो सकती है। यथा: वेदों में परिवार में इस पारस्परिकता का सुंदर वर्णन किया है।

परिवार में किसे कैसे रहना चाहिए इसकी स्पष्ट मर्यादा वेदों ने बताई है। परिवारों के योगक्षेम, लोक व्यवहार, आर्थिक व कर्तव्यों की मर्यादायें भी वेदों में सविस्तार वर्णित है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी आदि संबंध में पारस्परिक कर्तव्यपालन के साथ-साथ, एक गृहस्थ को स्वयं भी किस प्रकार जीवन-यापन करना चाहिए, इसका संतुलित विवेचन वेदों व हमारे प्राचीन ग्रंथों में है

माता-पिता व संतान की पारस्परिकता

अनुव्रतः पितुः पुत्रेः मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमर्ती वाचं वदतु शन्तिवाम्।।
(अथर्व. 3/30/2)

पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्यः उपरोक्त मत्रं के शब्दों - ''अनुव्रतः पितुः पुत्रः" के अनसुार- पत्रु का कतर्व्य है कि वह अपने पिता के अनुकूल आचरण करने वाला बने व सदैव पिता की आज्ञा का पालन करे उनके अर्थात पिता के बताए मार्ग पर दृढ़तापूर्वक, श्रद्धा एवं प्रेम से, निःशंक होकर चले। क्योंकि, अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः (मनु.) बालक अल्पज्ञान वाला, अविकसित बुद्धि वाला होता है। अतः पिता की बात पुत्र को माननी चाहिए। दूसरी ओर पिता का कर्तव्य है कि वह पत्रु को सद् विचार, सद् प्रेरणा आदि देता रहे और उसके जीवन को निष्कण्टक बनाए रखने योग्य परामर्श व मार्गदर्शन करे।

माता के साथ पुत्र का व्यवहार

इसी प्रकार, ''मात्रा भवतु संमनाः" के अनुसार, पुत्र को माता के मन के अनुकूल होना चाहिए। माता की इच्छा के विरूद्ध आचरण न करें। अर्थात भावात्मक प्रज्ञा के साथ माता के मन को छू सके, वैसा व्यवहार करे।

पति-पत्नी में सामंजस्यः वेदों में पति-पत्नी दोनों का एक दूसरे के मनोनुकूल बनने व पारस्परिक संवेदनाओं को प्रचुर सम्मान देने का निर्देश है। यह सब स्वेच्छापूर्वक होना चाहिए।

पति-पत्नी में सौहार्दः दांपत्य में सौहार्द के सम्बन्ध में वेदमंत्रः

''जाया पत्ये मधुमर्ती वाचं वदतु शन्तिवाम्।" कहता है कि-पति की प्रसन्नता के लिए पत्नी उसके साथ 'मधुमतीं वाचं वदतु' - माधुर्ययुक्त वाणी का प्रयोग करें,

जिससे पति सदा प्रसन्न रहे और वह (पति) भी पत्नी के साथ - 'शन्तिवाम्' - अर्थात शान्त होकर मधुर वाणी का व्यवहार करे।

''**समंजन्तु विश्वे देवाः** समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।। (ऋ. 10/95/47)

में अर्थात जल के समान पति-पत्नी एकरूपता का व्यवहार होना चाहिए। यह मंत्र पति-पत्नी दोनों से समाज के समक्ष घोषित करवाता है कि है समाज के प्रतिष्ठित जनो! हम दोनों अब मिलकर एक हो रहे हैं और हमारे दोनों के ह्रदय एवं मन जल के समान एक हैं। जिस प्रकार दो जलों को मिला देने पर वह जल एक हो जाता हैं और इतना एकरूप हो जाता है कि उसे पृथक् नहीं किया जा सकता। न ही उनमें पार्थक्य देखा जा सकता है। दोनों जलों का शील-स्वभाव भी एकरूप हो जाता है। उनमें दो पृथक् गुण नहीं प्रतीत हो सकते। ठंडा एवं उष्ण जल मिला देने पर उसका ताप। औसत हो जाता है। दोनों का स्तर भी समान रहेगा। उनमें ऊँच-नीच का भाव भी दृष्टिगोचर नहीं होगा। मनोनुकूल बनने व पारस्परिक संवेदनाओं को प्रचुर सम्मान देने का निर्देश है। यह सब स्वेच्छापूर्वक होना चाहिए। मिलना ही चाहिए। उसे अपने लिये सब प्रकार की अनुकूलता ससुराल में अनुभव होनी चाहिए।

वस्तुतः इसीलिए जल को - 'आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमाः - कहा गया है। तदनुसार पति-पत्नी का एकात्म व एकीभाव परम कल्याणमय तथा परम् शान्त होना चाहिए। जल के स्वभाव के अनुकूल बनने का वदे उपदेश करता है। यह ऐक्य, शांति एवं कल्याण का रूप दोनों के हृदय एवं मन में किसी तरह का भेद, संदेह आदि नहीं होना चाहिए। भेद एवं संदेह रहित अभेद, एकत्व एवं एकरस स्थिति का प्रतिपादन करने के लिए पति पत्नी की यह घोषणा एवं उस निमित्त दृष्टांत अत्यंत महत्वपूर्ण है इससे बढ़कर पति-पत्नी में पारस्परिकता, प्रेमभाव एवं एकत्व का प्रतिपादक अन्य दृष्टांत हो नहीं सकता।

परिवार में वधु की केंद्रीय भूमिका

वेद वधु अर्थात पुत्र वधु को घर की साम्राज्ञी का स्थान देकर, उसे पूरे परिवार को जोड़ने वाली धुरी का स्थान दिया है। ननद भाभी को सच्ची सहेली बतलाया है। यथाः

⊙ **वधू का घर-परिवार पर अधिकार** - वधू परिवार की साम्राज्ञी कही गई है। वधू का अपने पतिगृह में क्या अधिकार हो, इस बारे में वेद आदेश देता है -यथाः

''सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु। (ऋ. 10/95/46)"

इसे निम्नानुसार समझना चाहिए।

⊙ **हे वधू! साम्राज्ञी श्वसुरे भव** - तू अपने श्वसुर आदि बड़ों के प्रति सम्यक् प्रकाशमान, चक्रवर्ती राजा की रानी के समान पक्षपात छोड़कर सबके साथ उत्तम आदरपूर्वक व्यवहार करने एवं गृह पर सुशासन करने वाली हो। नये घर में वधु आती है तो उसकी भावनाओं व अपेक्षाओं को साम्राज्ञी की भांति महत्व इस प्रकार सभी परिजनों को अपने सद्व्यवहार व आत्मीयता पूर्वक जोड़कर रखना सबका सम्मान रखना बहू के लिये परम आवयश्क है। यह पारस्परिक दायित्वों व भाव संवेदनाओं का विशय है।

⊙ **वधू-घर परिवार की साम्राज्ञी** - इस मन्त्र में वधू को पति के गृह में साम्राज्ञी की उपाधि से अलंकृत किया गया है। जो अच्छी तरह, निष्पक्ष, और अपने माता-पिता के घर अपने माता-पिता, भाई, बहिन से जैसा व्यवहार करती थी, उसी प्रकार वह वर के गृह में भी वर के माता, पिता, भाई बहिन आदि से प्रीतियुक्त व्यवहार करें व उनके प्रति संवेदनशील रहे।

⊙ **साम्राज्ञी श्वश्रवां भव** - परिवार में जो सास आदि वृद्धा एवं पूजनीय स्त्रियां हैं, उनसे प्रीतियुक्त व्यवहार कर।

ननद-भाभी सच्ची सहेली

⊙ **ननान्दरि साम्राज्ञी भव** - तेरे कुल में ननद आदि जो समान वय की स्त्रियाँ हैं, उनके साथ प्रीतियुक्त व्यवहार कर।

⊙ **साम्राज्ञी अधि देवृषु** - जो देवर, जेठ आदि छोटे-बड़े हैं, सबमें आत्मीय भाव के साथ प्रीति से सबसे अविरोध पूर्वक, पक्षपातरहित, यथा-सम्मान, प्रीतिपूर्वक व्यवहार करें।

परिवार में भाई-बहनों के मध्य सौहार्द

इसी प्रकार भाई का भाई के साथ, भाई

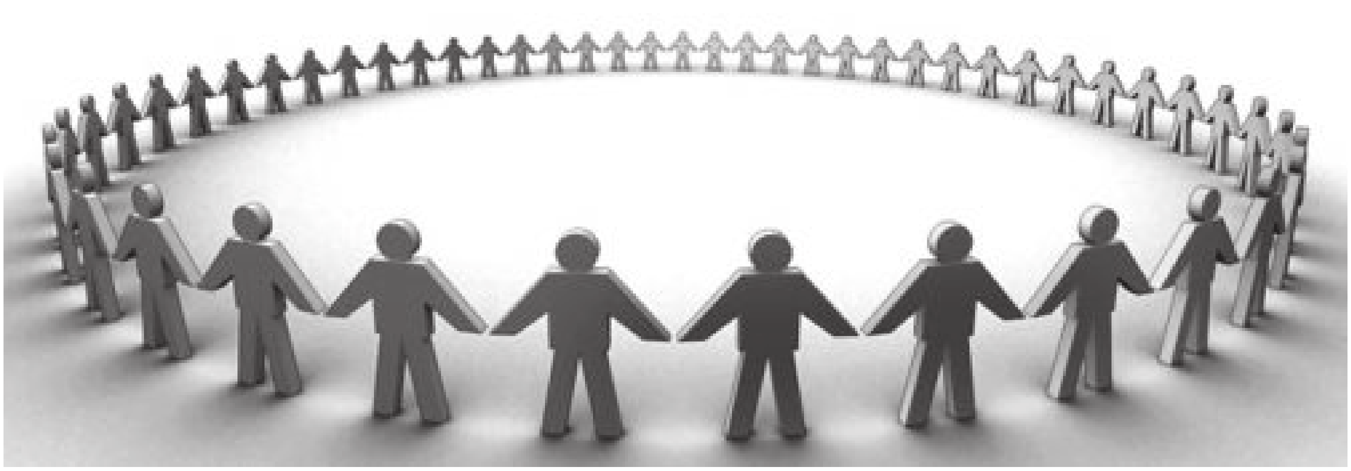

साभार : *http://www.smokingawarenesscircle.ie/contact-us.html#.X5Ba_9UzbIU*

का बहिन के साथ, बहिन का बहिन के साथ कैसा सम्बन्ध या व्यवहार परिवार में रहें, इसके बारे में भी वेद स्पष्ट उपदेश करता है -

''मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।। (अथर्व. 3/30/3)

⊙ **मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्** - भाई से भाई कभी द्वेश, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, विपरीत भाव, विरोध नीति का आचरण करने वाला न हो, अपितृ आपस में प्रेमपूर्वक से ही वर्त्तें।

⊙ **मा स्वसारमुत स्वसा** - बहिन-बहिन से कभी द्वेश, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, वैमनस्य, विपरीत भाव एवं विरोध नीति का आचरण करने वाली न हो, अपितु आपस में प्रेमपूर्वक ही वर्त्तने वाली हो। इसी प्रकार भाई और बहिन का भी परस्पर द्वेश, घृणा विरोध रहित और प्रीति से युक्त व्यवहार होना चाहिए।

⊙ **समयंचः सव्रता भूत्वा** - अच्छे मन एवं प्रेमादि गुणों से युक्त तथा नियम, अनुष्ठान, अनुशासन, आचार, विद्याविनयादि गुण कर्म स्वभाव बनाने के लिए उत्तम व्रतों का पालक बनना चाहिए और

⊙ **वाचं वदत भद्रया** - मंगलकारक रीति से एक-दूसरे के साथ सुखदायक, उत्तम कर्म को सिद्ध करने वाली वाणी का परस्पर व्यवहार किया करो।

संपूर्ण परिवार में सौहार्दः संपूर्ण परिवार का व्यवहार भी परस्पर स्नेहपूर्ण हो, इस बारे में वेद कहता है -

**''सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं
जातमिवाध्न्या।।" (अथर्व. 3/30/1)**

परिवार में बड़ों का आदेश, सबको पालन सबको करना चाहिए। परिवार की घोषित नीति पर सबको चलना चाहिए। यह वेद की भावना है। संसार के सब परिवारों में छोटा-बड़ा भाव कालभेद से रहता है। 'सदावृधः सखा' (यजु. 36/4) अनादि काल से बड़ा हमारा सखा हमारे लिए आदेश देता है कि बड़ों का सम्मान करना चाहिए। इसे निम्न प्रकार से समझना चाहिए:

हिंदू संस्कृति में विवाह कोई अनुबंध न होकर एक अटूट व पवित्रतम बंधन के निर्माण का संस्कार है, जहाँ विवाह-विच्छेद व पुनर्विवाह कल्पना से परे रहे हैं। परिवार, परस्पर त्याग, सहयोग व कर्तव्यों की आधारशिला पर स्थापित ऐसी इंद्रधनुषी सामाजिक इकाई है, जहाँ परिवार ही नहीं पूरे कुटुंब का प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी क्षमता व सामर्थ्य से सबका निःस्वार्थ भाव से सहयोग करता है और स्वयं भी सबका स्नेह व सहकारितापूर्ण प्रति-व्यवहार प्राप्त करता है

⊙ **सहृदयं** - हे गृहस्थों ! मैं ईश्वर तुमको कि परिवार में आज्ञा देता हूँ, वैसा ही व्यवहार करो, जिससे परिवार में सबको अक्षय सुख हो। अर्थात् जैसे तुम अपने लिए सुख की इच्छा करते हो और उसके लिए प्रयत्न करते हो, उसी प्रकार से समान हृदय, प्रेम-भावना तुम्हारी अपने माता, पिता, संतान, स्त्री, पुरूष, भृत्य, मित्र और पड़ोसी के प्रति हो और उनके दुःखों को अपना दुःख समान हृदय का बनकर ही रहो।

गृहस्थाश्रम व परिवार समाज जीवन का अनमोल उपहार है। जहाँ हमारे अपने परिजनों के हितार्थ किए जाने वाले हमारे त्याग व सहकार की पावन तपस्थली भी है। इसीलिए हमारे पुराणों में, यथा पद्म पुराण, नारद पुराण व स्कन्द पुराण आदि में परिवारों में परिवार भावना को पुष्ट कर माता-पिता व वृद्ध जनों के प्रति व पति-पत्नी के मध्य पारस्परिक कर्तव्य पालन को तीर्थ स्नान से भी अधिक पुण्यदायी कहा है। वेदों में विशेषकर ऋग्वेद व अथर्ववेद में परिवारों में पारस्परिक सद्भाव व कर्तव्यपालन पर अत्यंत बल दिया गया है।

परिवार में प्राप्त संस्कारों, सहयोग व संबल से ही हमारी सामर्थ्य का विकास होता है और शैशवकाल से वृद्धावस्था पर्यंत, हमारे लिए परिवार का आश्रय अमृत-तुल्य व स्वर्ग से कम नहीं है। भारत में हमारी तीन पीढ़ियों के मध्य परस्पर सहयोग व सम्मान पूर्वक, एक दूसरे के प्रति निःस्वार्थ भाव से अपने-अपने कर्तव्यों का सहर्ष पालन करते हुए एक साथ संयुक्त परिवार में प्रसन्नतापूर्वक रहने की परम्परा, अन्य अनेक देशों के निवासियों के लिए एक अबूझ पहेली है। लेकिन, आज के भौतिक स्पर्द्धा के दौर में, जनसंचार माध्यमों यथा दूरदर्शन धारावाहिकों अर्थात टीवी सीरियलों व चल चित्रों अर्थात फिल्मों में हिंसा, अनैतिकता व स्वार्थपरता से युक्त बढ़ते पृथकताजनक दृश्यों के प्रभाव में, भारत में भी परिवारों में यत्किंचित मतभेद, पृथक्करण, विवाह-विच्छेद व पारस्परिक कलह की घटनाएँ उपजने व बढ़ने लगी हैं। इन सबका, ऐसे सभी प्रभावित परिवारों के बच्चों, परिजनों व समाज पर भी गंभीर दुष्प्रभाव होता देखा जा रहा है।

हिंदू संस्कृति में विवाह कोई अनुबंध न होकर एक अटूट व पवित्रतम बंधन के निर्माण का संस्कार है, जहाँ विवाह-विच्छेद व पुनर्विवाह कल्पना से परे रहे हैं। परिवार, परस्पर त्याग, सहयोग व कर्तव्यों की आधारशिला पर स्थापित ऐसी इंद्रधनुषी सामाजिक इकाई है, जहाँ परिवार ही नहीं पूरे कुटुंब का प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी क्षमता व सामर्थ्य से सबका निःस्वार्थ भाव से सहयोग करता है और स्वयं भी सबका स्नेह व सहकारितापूर्ण प्रति-व्यवहार प्राप्त करता है।

अतएव, हम सभी का यह पावन कर्तव्य है कि अपने इस अमृतोपम परिवार तंत्र को अधिक से अधिक सजीव, प्राणवान, संस्कारक्षम एवं सुदृढ़तापूर्ण संबंधों के ताने-बाने से सुस्थिर व शाश्वत बनाएं।

1. वेदों में आर्थिक व्यवहारों में भी परिवार इकाई को शीर्ष महत्व दिया गया है। अतएव ऋग्वेद में पूँजी को भी परिवार की उत्पादक संपत्ति के रूप में परिभाषित कर कहा है कि राजा भी किसी परिवार को उसकी उत्पादकीय संपत्ति अर्थात् पूँजी से रहित न करे, अर्थात् पारिवारिक उपक्रमों को सर्वोच्च महत्व दिया गया है। इस प्रकार संयुक्त या अविभक्त हिंदू परिवार में व्यवसाय की भी हमारी सहस्राब्दियों पुरानी परंपरा है। Ⓜ

माधुरी साकुलकर

आत्मकथाओं में स्त्री जीवन की व्यथा

किसी भी व्यक्ति की आत्मकथा में उसके अपने जीवन के संपूर्ण सत्य के उद्घाटन या कुछ भी छिपाए न जाने को लेकर प्रश्न तो उठाए जा सकते हैं, लेकिन उसकी पीड़ा को समझने के लिए उससे बेहतर माध्यम नहीं हो सकता। इसी क्रम में मराठी में लिखी गई आत्मकथाओं पर एक दृष्टि

कोई व्यक्ति अपनी आत्मकथा क्यों लिखता है?

अपनी जिंदगी खुली किताब की तरह प्रस्तुत करना बहुत कठिन बात है। हमें बचपन से ही सिखाया जाता है कि अपने बारे में ज्यादा बोलना नहीं चाहिए। इसका एक आशय यह भी है कि आत्मकथा लिखने के मोह का संवरण किया जाना चाहिए। युवावस्था में तो कतई नहीं।

अब प्रश्न यह है कि जीवन के किस मोड़ पर आत्मकथा लिखनी चाहिए?

पहले साठ साल के बाद ही लोग आत्मकथा लिखते थे। अब ऐसा कोई नियम नहीं रहा गया। सानिया मिर्जा ने 30 साल की उम्र में ही आत्मकथा लिखी। वीणा दास जी ने 35 वर्ष की आयु में आत्मकथा लिखी है! हिलरी क्लिंटन ने दो आत्मकथाएं लिखी हैं। पहली आत्मकथा 'लिविंग हिस्ट्री' में बचपन से प्रथम महिला होने तक का इतिहास लिपिबद्ध है और दूसरी 'हार्ड चॉयसेज' में बराक ओबामा के कैबिनेट में मंत्री बनने तक का सफर दर्ज है।

यह प्रश्न बार बार उठाया जाता है कि क्या आत्मकथाओं में लोग सब कुछ सच ही लिखते हैं। इस प्रश्न का उत्तर तलाशने से पहले हमें मानव मनोविज्ञान पर गौर करना होगा। हम घटनाओं को भूलने का प्रयास करते हैं जो हमें तकलीफ देने और शर्मिंदा करने वाली होती हैं। अपनी गलतियां, अपना बुरा बर्ताव हम किसी को बताना नहीं चाहते। शोभा डे का कहना है, "मैंने अपनी आत्मकथा को 'सिलेक्टिव मेमरी' शीर्षक इसलिए दिया क्योंकि अपने जीवन की जो बात मैं बताना चाहती हूँ, उतना ही बताऊंगी।"

मराठी में महिलाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथा कृतियों की संख्या 250 के आसपास होगी। अध्ययन की सुविधा के लिए इन आत्मकथाओं को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- जैसे अभिनेत्रियों की आत्मकथाएं, साहित्यकारों की पत्नियों की आत्मकथाएं, संघर्ष करके कोई ऊँचा मुकाम हासिल करने वाली स्त्रियों की आत्मकथाएं, पारिवारिक हिंसा से पीड़ित महिलाओं की आत्मकथाएं, अच्छे दांपत्य के बारे में बताने वाली आत्मकथाएं, लेखिकाओं की आत्मकथाएं, जीवन का बिलकुल अलग चित्र प्रस्तुत करने वाली बारबाला जैसी आत्मकथाएं, दलित स्त्रियों की आत्मकथाएं आदि।

ये आत्मकथाएं स्त्री जीवन का ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। महिलाएं कहां से शुरू करके कहां तक पहुंची हैं, उन्होंने कितनी अच्छी जिंदगी जी है, संकटों से, कठिनाइयों से कैसे संघर्ष किया... यह पढ़ कर हमें प्रेरणा मिलती है। साथ ही यह भाव भी मन में जागृत होता है कि यदि वे कर सकती हैं तो मैं क्यों नहीं।

कुछ ऐसे दंपती भी हैं, जिनमें पति-पत्नी दोनों ने आत्मकथाएं लिखी हैं। जैसे महर्षि कर्वे और बाया कर्वे, भालजी पेंढारकर और लीलाबाई पेंढारकर, आचार्य अत्रे - सुधा अत्रे आदि। भालजी पेंढारकरजी की सुपुत्री माधवी देसाई ने भी आत्मकथा लिखी है। उसका शीर्षक है 'नाच ग घुमा'।

माता और पुत्री की भी आत्मकथा है- शीलवती केतकर की आत्मकथा है 'मीच हे सांगितले पाहिजे' और उन्हीं की पुत्री वीरा शर्मा की 'माझ्या डोळ्यांनी पहा'। प्रसिद्ध गांधीवादी नेता पुरुषोत्तम काकोडकर, जो लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्य भी रहे और गोवा मुक्ति संग्राम के कार्यकर्ता भी थे, उनकी पत्नी कमलाबाई काकोडकर ने आत्मकथा लिखी 'एक धागा सुखाचा'। उसी प्रकार उनके पुत्र

ख्यातनाम परमाणु वैज्ञानिक अनु शास्त्रज्ञ अनिल काकोडकर ने भी आत्मकथा लिखी है, जिसका शीर्षक है, 'फायर एंड फ्युरी'।

स्त्रियों की आत्मकथाएं अनेक प्रकार की हैं।

शुरुआती दौर की स्त्रियों की आत्मकथाएं उनके पति की जीवनी थीं। दूसरे दौर में दोनों के बारे में (पति-पत्नी) बोलने लगी। तीसरे दौर में सच्चे रूप में स्त्री की आत्मकथा बनी। चौथे दौर में वह कठोर बनी। पति की बुराई, पति का शराबी होना, उसका मारना-पीटना भी बताने लगी। ज्यादातर साहित्यकारों की पत्नियों की आत्मकथा से पता चलता है कि साहित्यकार के रूप में वे भले ही बड़े हों, पर पति के रूप में बुरे और पारिवारिक जिम्मेदारियां निभाने में कमजोर सिद्ध हुए हैं।

भारत में किसी स्त्री की पहली आत्मकथा है राससुंदरी देवी की 'आमर जीवन', जो 1875 में लिखी गई। स्त्री की सपने देखने की वृत्ति और उन सपनों को सच करने के लिए किए गए प्रयासों की यह कथा है। एक दिन राससुंदरी जी को एक सपना आया। सपने में उन्होंने देखा कि वह 'चैतन्य भागवत' पढ़ रही हैं। उन्होंने यह किताब देखी भी नहीं थी। लेकिन इसे पढ़ने के लिए उन्होंने पढ़ना सीखा। उस समय स्त्रीशिक्षा का बड़ा विरोध किया जाता था। लोग कहते थे, "कलयुग यही है, अब औरतें मर्दों के काम करेंगी। ऐसा पहले कभी सुना नहीं था। अब तो महिलाओं का राज आया है। क्या क्या देखने को मिलेगा मालूम नही?"

अपनी आत्मकथा में अपने बच्चों के बारे में बताते हुए राससुंदरीजी कहती हैं, "18 साल की थी तो एक बच्चा हुआ उसका नाम बिपिनबिहारी। 21 साल की उम्र में एक बच्चा हुआ, वह पुलिस बिहारी। 23 साल की उम्र में एक बच्ची हुई वह रामसुंदरी। 25 साल में एक लड़का हुआ प्यारेलाल। 28वें साल में राधानाथ, 30 साल की उम्र में द्वारकानाथ, 32वें साल में चंदूनाथ, 38वें साल में किशोरीलाल, फिर एक बार पैर भारी हो गए लेकिन छठवें महीने में गर्भपात हुआ। 39 साल की थी तब एक लडकी हुई, शामसुंदरी और 41 साल में सबसे छोटा लड़का हुआ मुकुंदलाल। 18वें साल में पहला बच्चा और 41 साल में आखरी। वह बीच के 23 साल कैसे गुजरे वो भगवान को ही मालूम। प्रेग्नेंसी और डिलिवरी, यही स्त्रियों की जिंदगी थी। उस जमाने में पंद्रह पंद्रह बच्चे होते थे।"

1910 में मराठी भाषा की पहली आत्मकथा प्रकाशित हुई 'आमच्या आयुष्यातील काही आठवणी'। न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, महाराष्ट्र के बड़े समाज सुधारक, विचारक थे। उनकी पत्नी रमाबाई रानडे की यह आत्मकथा है। रानडेजी की पहली पत्नी गुजर गई थीं। उनकी इच्छा किसी विधवा स्त्री से पुनर्विवाह की थी। लेकिन पिताजी की जिद के आगे झुककर उन्हें रमाबाई से शादी करनी पड़ी। दोनों की उम्र में इक्कीस साल का फासला था। उन दिनों महाराष्ट्र में दो प्रकार के सुधारक थे, एक तो 'बोलने वाले' और दूसरे 'करने वाले'। न्यायमूर्ति रानडे विधवा पुनर्विवाह के बारे में बोलते थे, लेकिन उन्होंने शादी ग्यारह साल की कुंवारी लड़की से की थी। इस बात को लेकर उन्हें बहुत आलोचनाएं सहनी पड़ीं। उनके पिता को डर था कि न्यायमूर्ति रानडे शादी के लिए आएंगे भी या नहीं, क्योंकि शादी के लिए उन्होंने छुट्टी ही नहीं ली थी। कोर्ट समाप्त होने के बाद, शाम के समय शादी हुई।

रमाबाई को सीखने के लिए बहुत तकलीफ सहनी पड़ी। ससुराल के लोग उन्हें बहुत परेशान करते थे। उन्होंने एक घटना बताई है, "दोपहर का खाना होने के बाद घर की सब औरतें बैठी थीं। मैं अंदर के कमरे में झाड़ू लगा रही थी। झाड़ू लगाने का आधा काम होने के बाद कचरे में एक अंग्रेजी लिखा हुआ कागज का टुकड़ा मिला। मेरी उम्र कम थी इसलिए मुझे लगा कि मैं पढ़ सकती हूँ। मैंने झाड़ू वैसे ही रखा और कागज पढ़ना शुरू किया। सासू माँ का ध्यान मेरी ओर गया। उन्होंने बैठी हुई सभी स्त्रियों को बुलाया। मुझे इसका पता ही नहीं था। मैं अपनी धुन में पढ़ रही थी। यह देखकर ननद को बहुत गुस्सा आया। वह बड़े जोर से चिल्लाई, "आपकी कचहरी ऊपर है। वहां पढ़ो, या नाचो। हमारा अपमान किया तो याद रखना। हमारी पहली भाभी नहीं थी क्या? उसको भाई ने पढ़ना-लिखना सब सिखाया था। वह हमउम्र थी। पर उसने हमारे सामने कभी एक शब्द भी नहीं पढ़ा। उसे अंग्रेजी पढ़ाने के लिए भाई ने बड़े प्रयास किए। पर उसने ध्यान नहीं दिया। वो बहुत समझदार थी।"

लड़कियों के लिए हाई स्कूल होना चाहिए, इसके लिए एक सभा का आयोजन किया गया था। उस सभा की अध्यक्ष थीं रमाबाई। इस सभा में उन्होंने अंग्रेजी में भाषण दिया। तब सासू माँ ने न्यायमूर्ति को जी भर गालियां दीं। वे बोली, "दो हजार लोगों के सामने पत्नी ने अंग्रेजी बोला, आपको शर्म कैसे नहीं आई। अब तो उसको अंग्रेजी सिखाना बंद करो। स्त्रियों को ज्यादा सहूलियत देना अच्छा नहीं है। नहीं तो वे काबू में नहीं रहतीं।"

19 जनवरी 1901 को न्यायमूर्ति रानडे का निधन हो गया और इसके साथ ही यह आत्मकथा भी पूरी हो गई। उनके जाने के बाद रमाबाई ने बहुत सामाजिक काम किए लेकिन उनका जिक्र इस आत्मकथा में नहीं है। रमाबाई ने न्यायमूर्ति की किताबों का संपादन किया। 'सेवासदन' नामक संस्था की स्थापना की। नागपुर, मुंबई और पुणे में उसकी शाखाएं हैं। लड़कियों को अपने पैरों पर खड़े करने के लिए नर्सिंग स्कूल की स्थापना उन्होंने की। स्त्रियों की बनाई हुई वस्तुओं - जैसे अचार, पापड़, हस्तकला की चीजों आदि की पहली बार प्रदर्शनी करवाई। स्त्रियों को वोटिंग का अधिकार दिलाने के लिए 1912 में हुए आंदोलन की सूत्रधार रमाबाई थीं। ईसवी सन 1904 से

न्यायमूर्ति रानडे विधवा पुनर्विवाह के बारे में बोलते थे, लेकिन उन्होंने शादी ग्यारह साल की कुंवारी लड़की से की थी। इस बात को लेकर उन्हें बहुत आलोचनाएं सहनी पड़ीं। उनके पिता को डर था कि न्यायमूर्ति रानडे शादी के लिए आएंगे भी या नहीं, क्योंकि शादी के लिए उन्होंने छुट्टी ही नहीं ली थी। कोर्ट समाप्त होने के बाद, शाम के समय शादी हुई

1924 तक रमाबाई एरवड़ा जेल की मानद अधीक्षक थीं।

महाराष्ट्र में रमाबाई नाम की दो स्त्रियां हुई, जिन्होंने बहुत सामाजिक काम किए। एक रमाबाई रानडे और दूसरी पंडिता रमाबाई। पंडिता रमाबाई बहुत बुद्धिमान संस्कृत पंडिता थीं। उन्होंने शारदा सदन और आर्य महिला समाज की स्थापना की। भारत में केवल महिलाओं के लिए पहले विश्वविद्यालय एस.एन.डी.टी. (श्रीमती नाथीबाई ठाकरसे विमेंस यूनिवर्सिटी, पुणे) की स्थापना करने वाले भारतरत्न महर्षि धोंडो केशव कर्वेजी की धर्मपत्नी बाया कर्वे ने आत्मकथा लिखी है। उनकी आत्मकथा का नाम है 'माझे पुराण'। उस काल का समाज जीवन का दर्शन हमें इसमें होता है। उनके दादा को पहली पत्नी से संतान प्राप्त नहीं हुई थी। इसीलिए उन्होंने दूसरी शादी करने का तय किया। तब वे पचास साल के थे। उस समय आठ दस साल से ऊपर उम्र की लड़की अविवाहित नहीं रहती थी। इसलिए उनको बहुत छोटी उम्र की लड़की से शादी करनी पड़ी। उस समय छोटी उम्र की लड़कियों की शादी बड़े विधुर से होती थी।

बायाजी की पहली शादी नातूजी से हुई थी। वह भी विधुर थे। उनकी पहली पत्नी बाया की बुआ की लड़की थी। शादी के सिर्फ तीन महीने के बाद नातूजी गुजर गए। बाया विधवा हो गई। जब तक विधवा का केशवपन नहीं होता, तब तक वो पूजा, खाना पकाना, भगवान को प्रसाद चढ़ाना नहीं कर सकती थी। उनकी सासू माँ की 20 डिलिवरी हुई थी। उनमें से सिर्फ पाँच बच्चे जिंदा रहे। सासू माँ की तबीयत बिगड़ने लगी। उनके कामकाज ससुरजी को करने पडते थे। इसलिए बाया का केशवपन करने का तय हुआ। पंडितजी बोलते थे, "बाल रखने वाली विधवा को उपवास रखना शास्त्र को मान्य नहीं। उनको धर्मकृत्य की अनुमति नहीं है। नहाने के बाद उसने गीले बालों से पानी की जितनी बूंदें गिरेंगी उतनी बार उसके पति को कीड़े का जन्म मिलेगा।" उनके बाल कटवाने की घटना हम पढ़ ही नहीं पाते।

लोग बोलते थे, "पिछले जनम में तूने कुछ तो बुरे काम किए ही होंगे। इसीलिए तुझे ऐसे दिन देखने पड़े। अब बहुत पुण्य कर लो तो अगले जनम में अच्छे दिन आएंगे।"

बायाजी का भाई और कर्वे जी बंबई (अब मुंबई) में साथ रहते थे। भाई की पत्नी गुजर गई थी और उनका एक छोटा बेटा था। घर का कामकाज करने और बेटे को संभालने के लिए बाया को मुंबई लाया गया। उनकी कर्वे जी से मुलाकात हुई। कर्वे जी विधुर थे। उनको रघुनाथ नामक एक बेटा था, जो आगे बढ़कर संतति नियमन का प्रचारक बना। संतति नियमन के साधनों का कोई दुष्परिणाम नहीं होता, यह सिद्ध करने के लिए रघुनाथजी ने खुद अपनी संतान नहीं होने दी। वह 'समाज स्वास्थ्य' नाम की एक मासिक पत्रिका भी चलाते थे। उनका जीवन इस कार्य के प्रति बहुत ही समर्पित था।

साभार : *https://www.jansatta.com/sunday-magazine/jansattwa-language-and-women-respect/204965/*

बाया और कर्वेजी ने शादी की। दोनों का भी यह पुनर्विवाह था। उनके अभिनंदनस्वरूप एक लेख आगरकर जी की 'सुधारक' पत्रिका में आया था। उसमें लिखा था कि इस विवाह को बाया के पिता की मान्यता थी। यह पढ़कर उनके पिता का समाज से बहिष्कार कर दिया गया। बाद में भगवान को बारह साष्टांग नमस्कार और ₹100 का जुर्माना भरने के बाद उनको जाति में पुनः प्रवेश दिया गया। उधर कर्वे जी को भी सामाजिक बहिष्कार सहना पड़ा। मुरूड नामक गांव में उन्हें उनकी मां और बहन से मिलने तक नहीं देते थे। उनको उनके घर में ठहरने भी नहीं देते थे। बाया और कर्वेजी को इस विवाह की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

कर्वेजी ने स्त्री शिक्षा के बारे में बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने अनाथ बालिकाश्रम की स्थापना की। बाया को जल्द ही पता चल गया कि उसने ऐसे व्यक्ति से शादी की है जो सिर्फ और सिर्फ समाज के बारे में ही सोचता है। पारिवारिक जिम्मेवारी खुद को ही संभालनी पड़ेगी। इसलिए उन्होंने नर्सिंग का ट्रेनिंग किया। पूरे घर संसार, खुद के तीन बच्चे, उनकी शिक्षा इन सबकी जिम्मेवारी उन्होंने ली। इसीलिए उनको 'हिमालय की छाया' कहते हैं।

कर्वे जी के काम से प्रभावित होकर, काम के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पण को देखकर कई लोग स्त्रीशिक्षा के लिए आजन्म सेविका बनीं। उनमें से एक है डॉक्टर कमलाबाई देशपांडे। उनकी आत्मकथा है 'स्मरण साखळी'।

मराठी के बड़े लेखक न. चि. केळकरजी की पुत्री विवाह के पश्चात सातारा के ख्यातनाम डॉक्टर देशपांडे की बहू हुई। उनके पति के निधन के बाद केलकर जी ने उनके ससुर से पूछा, "आपने कमल के बारे में कुछ आर्थिक व्यवस्था की है क्या? और यदि की है तो तुरंत ही वह राशि दे दीजिए। नहीं तो मैं अपना तीसरा बच्चा समझकर उसकी व्यवस्था करूंगा।" ससुर जी ने तुरंत ही उनकी शादी में जितने रुपए के गहने दिए थे उतने रुपए केलकर जी को दिए।

कमलाबाई ने उस समय जब स्त्री

शिक्षा का बोलबाला नहीं था, उस काल में पी–एच.डी. की। सातारा में कन्या हाई स्कूल की स्थापना की। उस स्कूल का झाड़ू पोछा लगाने से लेकर छात्राओं को स्कूल तक लाने का काम वह अकेले ही करती थीं। स्त्री शिक्षा के बारे में वह बहुत ही समर्पित थी। पुणे मुनसीपालिटी ने प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने का विचार किया। लेकिन जब खर्च का सवाल आया तब एक गुट ने ऐसा प्रस्ताव रखा कि पहले लडकों के लिए अनिवार्य करें और 2 साल बाद लड़कियों के लिए अनिवार्य करें।

दूसरे गुट ने इसका विरोध किया। पहला गुट बोला, "यह व्यवहार का सवाल है। सब शिक्षा नि:शुल्क एक साथ करना मुमकिन नहीं है। लड़कों की शिक्षा लड़कियों से ज्यादा महत्व की है। उनको पैसे कमाने पड़ते हैं।"

दूसरे गुट का कहना था, "आपको स्त्रीशिक्षा का महत्व नहीं पता है। स्त्री यदि पढ़ी–लिखी रही तो अगली पीढ़ी अपने आप सुसंस्कारित और पढ़ी–लिखी बनेगी।"

पूना (पुणे) मे स्त्री शिक्षा के बारे में स्त्रियों की एक सभा का आयोजन किया था। उसकी निमंत्रण पत्रिका पर कुछ समाजधुरीणोनोंकी स्वाक्षरी लेने के लिए कमलाबाई गई थी। तो उनको चौका देने वाले अनुभव आए। एक ने स्वाक्षरी की थी, लेकिन वह स्त्री सभा में आई ही नहीं। एक ने बोला, "मुझे ये महिलाओं की सभा वगैरा पसंद नहीं। एक ने कहा कि मैं पति से पूछकर स्वाक्षरी करूंगी। इस सभा की अध्यक्षा सुश्री रमाबाई रानडे थीं। इस सभा में सभी महिलाएं इतना बोलीं कि सभा का समय जो डेढ़ घंटा था वह समाप्त हो गया। फिर भी महिलाएं बोल रही थीं। एक ने तो यहाँ तक कि अब महिलाओं को बोलने की अनुमति नही देनी चाहिए। तब रमाबाई ने कहा, "महिलाएं जितना बोलना चाहें, उन्हें बोलने दीजिए।"

उन्होंने कहा कि धैर्य से सामने आकर बोलने के लिए ही स्त्री शिक्षा का आंदोलन है। वह सभा 3:30/4 घंटे तक चली।

1926 में संकेश्वर मठ में शंकराचार्य सातारा आए हुए थे। उनके प्रवचन सुधारों के खिलाफ थे। कमलाबाई ने एक व्यक्ति से पूछा कि क्या वे स्कूल में आएंगे, तो उसने कहा, "उनके आश्रम के नियम के अनुसार विधवा स्त्री के सामने आना उनको मंजूर नहीं। आप पीछे रहिएगा। बाकी लोगों को उनका स्वागत करने दीजिए। यदि ऐसा हो सकता है तो शंकराचार्य जी को ला सकते हैं।"

कमलाबाई ने कहा, "महिलाओं को पीछे नहीं रहना चाहिए, इसीलिए तो इस पाठशाला की स्थापना की गई। मैं इस पाठशाला की प्रमुख हूं। मैं मुंह छुपा कर नहीं रहूंगी। मैं ही आगे आकर उनका स्वागत करूंगी। उनका यदि आशीर्वचन मिला रहता तो अच्छा था। नहीं तो हम अपने बलबूते अपनी निष्ठा और अपने पुण्य से स्कूल चलाएंगे।"

सामाजिक कार्यकर्ताओं की पहली आत्मकथा है 'माझी कहाणी' पार्वतीबाई आठवले जी की पार्वती बाई बाया कर्वे की बड़ी बहन। वह विधवा थी। एक दिन वह कर्वेजी के यहां आई। अपने बच्चे की शिक्षा के बारे में पूछताछ करने के लिए। कर्वेजी ने कहा, "यदि विधवा आश्रम बना तो आप उसमें क्या काम करेंगी?" पार्वती बाई बोलीं, "आपका आश्रम बनेगा तो मैं उसमें खाना पकाने का काम करूंगी। मुझे और कुछ आता नहीं।"

कर्वे जी ने उन्हें शिक्षिका का सर्टिफिकेट प्राप्त करने हेतु होम क्लास को जाने के लिए कहा।

पार्वती बाई कहती है, "जिस आश्रम में मैं खाना पकाने का काम करने वाली थी उस आश्रम की आजन्म सेविका बनकर इतना बड़ा काम मैं करूंगी, ऐसा किसी ने मुझे यदि कहा होता तो मैं उस पर विश्वास ही नहीं करती। जीवन में बहुत बार कई अद्भुत चीजें होती हैं। मेरे जीवन में जो कुछ हुआ वह बाया के पुनर्विवाह के कारण। मेरी मां और बहुत सारे लोगों को यह चिंता रहती थी कि मेरा आगे क्या होगा?"

पार्वतीबाई आश्रम की स्टार फंडरेजर थीं। पूरे भारत में प्रवास करके लोगों को काम का महत्व समझा कर, भाषण देकर फंड इकट्ठा करना आसान बात नहीं थी। एक अनुभव उन्होंने बताया है। सरर्व्हेंट पास पर वह अकेली पुणे से खंडवा गई थी। वहां जाकर कुछ सदगृहस्थों से मिलकर उन्होंने कहा, "एक सभा बुलाओ। मैं संस्था की जानकारी दूंगी और डोनेशन मांगूंगी।" उनकी बातों की ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया, "आप सभा में लेक्चर देने वाली हो क्या?" ऐसे कह कर मजाक उड़ाया

पार्वतीबाई आश्रम की स्टार फंडरेजर थीं। पूरे भारत में प्रवास करके लोगों को काम का महत्व समझा कर, भाषण देकर फंड इकट्ठा करना आसान बात नहीं थी। एक अनुभव उन्होंने बताया है। सरर्व्हेंट पास पर वह अकेली पुणे से खंडवा गई थी। (इस जमाने में भी हम पढ़ी–लिखी औरतें अकेले जाने से डरती हैं) वहां जाकर कुछ सदगृहस्थों से मिलकर उन्होंने कहा, "एक सभा बुलाओ। मैं संस्था की जानकारी दूंगी और डोनेशन मांगूंगी।" उनकी बातों की ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया, "आप सभा में लेक्चर देने वाली हो क्या?" ऐसे कह कर मजाक उड़ाया। आखिर वह एक इनामदार से मिलीं। उन्होंने कहा, "मेरी तरफ हर रोज गपशप करने के लिए और पान खाने के लिए कुछ दोस्त आते हैं। उस समय आप आकर लेक्चर दो। आपका काम हो जाएगा।" उन्होंने वहां जाकर लेक्चर दिया। किसी ने उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। फिर भी उन्होंने अपना लेक्चर जारी रखा। उनकी काम के प्रति इतनी श्रद्धा कहां से आई? लेक्चर होने के बाद उन्होंने कागज घुमाया। उनको ₹13 मिले ।अकेले इतनी दूर जाकर (खंडवा इंदौर देवास) उन्होंने ₹500 डोनेशन लाया। तब कर्वे जी को बहुत खुशी हुई। तब से 20 साल तक चंदा इकट्ठा करने का काम उन्होंने किया।

अंग्रेजी नहीं आते हुए भी उन्हें अमेरिका भेजा गया। अंग्रेजी सीखो, खुद के लिए कमाओ और चंदा इकट्ठा करो। यह काम उन्होंने बड़ी आत्मीयता से किया। कुछ महिला शिक्षण संस्थाओं को भी देखा। उनके काम के प्रति लगाव, श्रद्धा से प्रभावित होकर हेनरी फोर्ड ने उनको एक कार उपहारस्वरूप दी।

कर्वे जी पैदल ही इधर-उधर घूमते थे। उनके आने जाने की सुविधा हुई। कर्वेजी कहते हैं, "पार्वती बाई के जीवन से हमें यह बोध मिलता है कि यदि हमारे इरादे नेक हों, मन में सपने हों और काम के प्रति समर्पण हो तो हम कुछ भी कर सकते हैं। पार्वती बाई के समान कितनी और महिलाएं होंगी, जिनको मौका न मिलने के कारण उनके गुण बर्बाद हुए। उनकी शक्ति, सामर्थ्य, सब बेकार। इसलिए महिलाओं की प्रगति और विकास के काम होने की जरूरत है।"

महाराष्ट्र में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गोपाल गणेश आगरकर यह दोनों सच्चे मित्र और स्वतंत्रता सेनानी थे। तिलक 'केसरी' नामक पत्रिका चलाते थे और आगरकर 'सुधारक' नामक। आगरकर जी की पत्नी यशोदा बाई ने अपने संस्मरण लिखे हैं। आगरकर जी का जन्म 1856 साल में और देहांत 1895 में हुआ। उन्हें सिर्फ 39 साल की उम्र मिली। सिर्फ 14-15 साल का वैवाहिक जीवन। आगरकर जी की मृत्यु के पश्चात उनकी पत्नी और बच्चे कहां गए, उन्होंने कैसा जीवन बिताया, कैसा गुजारा किया, यह लोगों को पता ही नहीं था। आगरकर जी के मृत्यु के पश्चात वह परिवार अकोला गया, आगरकर जी के मामा के पास।

यशोदा बाई ने केशवपन नहीं किया। क्योंकि उनसे आगरकर जी ने वैसा वचन लिया था। एक सुधारक की पत्नी को जैसे रहना चाहिए वैसे ही वह रही। वह सूतकताई करती थी। पर खादी के वस्त्र नहीं पहनती थी, क्योंकि वह वजनी होते हैं। वह ब्लाउज खादी के पहनती थी। रंगीन साड़ी पहनती थी (उस समय की विधवा औरतों को पूरे बाल कटवाना पड़ता था और लाल रंग की साड़ी पहननी पड़ती थी और औरतें चप्पल नहीं पहनती थीं) लेकिन यशोदा बाई पैर में चप्पल पहनती थी। धूप में जाते समय छाते का इस्तेमाल करती थी। उसने कांच की चूड़ियां बेचकर मिले हुए पैसे सामाजिक संस्थाओं को दे दिए थे।

वह दाई का काम करती थी, लेकिन उसके पैसे नहीं लेती थी। डिलिवरी करने के लिए वह कहीं भी और कभी भी जाती थी। बड़े होने के बाद बच्चे बोलते थे, "इतनी रात गए मत जाओ"। वह बोलती थी, "एक स्त्री परेशानी में है, उसको मदद करना मेरा कर्तव्य है।" पोते को टांगा लाने को कहती थी और टांगे में बैठ कर जाती थी। उसको किसी का भी डर नहीं लगता था।

मनुताई बापट यह बचपन में ही विधवा हुई। अकोला अपने मायके आई। उनको पढ़ाने का यशोदाबाई ने निश्चय किया। खुद के घर में ही उसे पढ़ाने लगी और एक-दो बाल विधवाएं आने लगीं। इस होम क्लास का रूपांतर बाद में मनुताई कन्या पाठशाला के रूप में हुआ। वह आज भी चल रही है।

अकोला में एक सभा हुई, जिसकी बहुत चर्चा हुई। विधवाओं को टीका (बिंदी) लगाने का कार्यक्रम हुआ। एक बहुत ही छोटी उम्र की लड़की जो अभी-अभी विधवा हुई थी उसको कुमकुम तिलक लगाया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्ष यशोदाबाई थीं।

मराठी के एक कवि रेवरेंड वामन नारायण तिलक की पत्नी लक्ष्मीबाई की आत्मकथा है 'स्मृतिचित्रे'। यह एक पठनीय कृति है। तिलक जी ने धर्म परिवर्तन किया। यह सुनकर लक्ष्मीबाई बीमार पड़ गई। कपड़े तक फाड़ने लगीं। यह सुनकर तिलक जी को बहुत दुख हुआ। उन्होंने लक्ष्मीबाई को खत लिखना शुरू किया। वह भी चुपके-चुपके खत लिखने लगीं। पाँच साल दोनों अलग रहे। एक दिन हिम्मत जुटा कर अपने बेटे दत्तु को साथ लेकर लक्ष्मीबाई तिलकजी के पास रहने के लिए गई।

एक बार लक्ष्मीबाई को भाषण देना था। रेवरेंड तिलक ने भाषण लिखकर दिया था। लक्ष्मीबाई भाषण देने खड़ी हुई। उनके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। हर एक को 10 मिनट का समय दिया गया था। लक्ष्मीबाई बोल नहीं रही थीं। इसलिए धन्यवाद प्रस्ताव के लिए डॉक्टर ह्यूम खड़े हुए। इतने में लक्ष्मीबाई बोलने लगीं। फटाफट रस भरा भाषण अपने मन से उन्होंने दिया। जो कंठस्थ किया था उससे अलग ही भाषण दिया। घर में आने के बाद वह तिलक जी से बोली "मुझे भाषण लिखकर नहीं देना। मैं अपने मन से ही बोलूंगी।"

रे. तिलक जी कविता पढ़ने, भाषण देने और धर्मप्रचार के लिए हमेशा बाहर रहते थे। ससुर जी और लक्ष्मीबाई दोनों ही घर में रहते थे। ससुर जी कुछ मांगने पर देते नहीं थे। बोलते थे, "खुद कमाओ और खर्चा करो। लोगों के घर गेहूं दाल पीस कर दो। पैसे कमाओ और जो चाहिए वह खरीदी करो।"

माहवारी के तीन दिन लक्ष्मीबाई को भूखे रहना पड़ता था। ससुर जी सिर्फ अपने लिए खाना बनाते थे। ससुरजी लक्ष्मीबाई को खाना भी ठीक से खाने नहीं देते थे। वह खाना खाने बैठी तो बोलते थे , "पहले मेरा बिस्तर लगाओ"। थोड़ी देर के बाद आकर देर से कहते थे, "पायखाने में पानी रखो" खाना खाते समय तीन चार बार उठाते थे।

श्रीपाद अमृत डांगे कामगार आंदोलन के अग्रणी, मार्क्सवाद के पुरोधा। उनकी पत्नी श्रीमती उषा डांगे ने अपनी आत्मकथा 'उषाकाल' लिखी है। प्रस्तावना में मराठी के प्रमुख साहित्यकार नरसिंह फाटक जी कहते हैं, "यह कहानी उनकी खुद की कम और कामगार आंदोलन, पार्टी, डांगेजी की और उनके सहयोगी, काम और विचार की है। पार्टी के विश्वव्यापी कार्य से ताई जी और डांगे जी के घर गृहस्थी के बारे में बताना ही मुश्किल है। घर गृहस्थी में पार्टी आएगी और पार्टी के विवेचन के समय घर गृहस्थी का संदर्भ आएगा।"

मराठी के एक कवि रेवरेंड वामन नारायण तिलक की पत्नी लक्ष्मीबाई की आत्मकथा है 'स्मृतिचित्रे'। यह एक पठनीय कृति है। तिलक जी ने धर्म परिवर्तन किया। यह सुनकर लक्ष्मीबाई बीमार पड़ गई। कपड़े तक फाड़ने लगीं। यह सुनकर तिलक जी को बहुत दुख हुआ। उन्होंने लक्ष्मीबाई को खत लिखना शुरू किया। वह भी चुपके-चुपके खत लिखने लगीं। पाँच साल दोनों अलग रहे। एक दिन हिम्मत जुटा कर अपने बेटे दत्तु को साथ लेकर लक्ष्मीबाई तिलकजी के पास रहने के लिए गई

उषाजी की बारहवें साल में पहली शादी हुई। मां होने का अर्थ समझने से पहले ही वह मां बन गई। सासू मां उनको बहुत ही तकलीफ देती थी। बहुत काम करवाती और बासी खाना देती थीं। सासु मां के मार की निशानी उनके पैर पर आखिरी तक थी। डेंगू से उनके पति का निधन हुआ। पति के निधन के दूसरे ही दिन उनकी लड़की गुजर गई।

उन्होंने बड़ी हिम्मत से बाल नहीं कटवाए और वह मुंबई रहने के लिए गई। वहां उनकी डांगे जी से पहचान हुई। डांगे जी ने उनको पढ़ने के लिए कहा। नर्सिंग की पढ़ाई करके वह के ई एम हॉस्पिटल में नौकरी करने लगीं। 3 अक्टूबर 1927 में उन्होंने कॉमरेड डांगे जी से शादी की।

कामरेड डांगे हमेशा हवालात में ही रहते थे। उनके बारे में उषा जी बोलती हैं, "कानपुर षड्यंत्र की सजा चार साल, मिरत मुकदमे में चार साल, और फिर 12 साल की सजा, यह मेरा वनवास कब खत्म होगा? यह साल, यह महीने, यह दिन मैं कैसे गिनूं? मुझे किसका सहारा और मैं कैसे जियूं, ऐसे बहुत विचार मेरे मन में आए। मैं मेहनत से डरती नहीं। उनके साथ मेहनत करने या दुख सहने से मेरा इनकार नहीं था, लेकिन उनके बाद?"

डांगे जी के मुकदमे में चार साल और सजा के तीन साल... इस दौरान मजदूरों ने उन्हें राजनीति में खड़ा किया। अब वह दूर से आंदोलन नहीं देख रही थीं। वह उसमें सहभागी होती थीं। उसकी खूबियां समझने लगी थीं। वह स्वतंत्रता आंदोलन का महत्त्वपूर्ण दौर था। दूसरी तरफ मजदूरों का आंदोलन भी जोर से चल रहा था। इन दोनों का तनाव अंग्रेजों पर था। 23 अप्रैल 1934 को मिलों की बहुत बड़ी हड़ताल हुई। सभी नेताओं को पकड़ा गया। उषाजी को भी गिरफ्तार किया गया।

उषा जी कहती हैं, "डांगे जी हवालात में होने पर संघर्ष करने की जिम्मेवारी मैं जरा सी निभा सकी, इसका मुझे अभिमान है। इतना पुण्य मैं कमा सकी। पति हवालात में गए इसलिए आंदोलन को कोसना, या देवी-देवताओं की पूजा करना, मन्नत मांगना... मैंने ऐसे दिन नहीं बिताए। मुंबई के मजदूरों ने मुझे इतनी फुर्सत ही नहीं दी। जिंदगी भर सुकून मिलेगा, ऐसा कार्य मेरे हाथों करवा लिया। इसके लिए मैं खुद को भागवान समझती हूं।"

इसी किताब के एक अध्याय 'मनोव्यथा' इस शीर्षक से अंतर्गत राजनेताओं की पत्नियों की मानसिक और शारीरिक तकलीफों की कहानी बताई है। पति के अंडरग्राउंड या काफी समय हवालात में होने के कारण उनकी पत्नियां पागलपन, या नर्वसनेस की शिकार हुई। हमेशा असुरक्षा, पैसों की तंगी, अकेले घर संसार की जिम्मेवारी लेना, इस सबका परिणाम उनकी तबीयत पर होता था। उषा जी की बीमारी में डांगेजी ने उनकी देखभाल की। उनके सहकारी बोले, "उषाजी को पागलखाने में रखो" डांगे जी ने कहा, "उसने इतने साल कुछ भी न बोलते हुए बड़ी धीरजसे बहुत कुछ सहा है। अब उसकी सहने की ताकत खत्म हो गई है। अब यदि मैंने उसे छोड़ा और पागलखाने में रखा तो वो हमेशा के लिए पागल हो जाएगी। हमारे कई सहकारियों की पत्नियों को मानसिक तनाव के कारण पागल होते हुए मैंने देखा है। लेकिन मैं उषा जी को हमेशा के लिए पागल होने नहीं दूंगा।"

दलित आत्मकथा का बड़ा संपन्न (compartment) दालन मराठी में है। ये आत्मकथाएं हमारे समाज को आत्मनिरीक्षण के लिए मजबूर करती हैं। हम खुद को कोसते हैं। माफ नहीं कर पाते खुद को कि हमने कितना बुरा बर्ताव किया है उनसे। हमारे घर में बिल्ली, कुत्ता आ सकता है। गैय्या की हम पूजा करते हैं और दलितों को दूर रखते थे। यदि आंबेडकरजी ने संविधान न लिखा होता तो हम अब तक वैसे ही बर्ताव करते रहते। हम सबने 'आर्टिकल 15' यह फिल्म देखनी चाहिए। 'माझ्या जल्माची चित्तर कथा' यह शांताबाई कांबले की आत्मकथा है। 1923 साल के समाज जीवन का अस्वस्थ वर्तमान इसमें है। दलित समाज में पैदा हुई नाजुका। घर में बहुत ही गरीबी थी। कभी कभी भूखा ही सोना पड़ता था। गोबर में से अनाज के दाने निकालकर, धोकर खाना पड़ता था। एक दिन मां लकडी लाने जंगल गई। बिन मौसम बारिश हुई और मां भीग गई। हाथ सेकने के लिए, खाना पकाने के लिए लकड़ियां नहीं थीं। इसलिए सबको भूखा ही सोना पड़ा।

छुआछूत का उनको तीव्रता से सामना करना पड़ा। पीने के पानी के लिए घंटों इंतजार करना पड़ता था। वह कुएं को हाथ नहीं लगा सकते थे। कोई पानी निकाल कर देगा तभी पानी मिलेगा। उनकी मां ने पंढरपुर के विठोबा से मन्नत मांगी थी, इसलिए वह मां के साथ पैदल पैदल चलते हुए पंढरपुर गई। दलितों को मंदिर प्रवेश नहीं होने के कारण उन्हें बाहर से ही दर्शन करना पड़ा। चूड़ियां पहनाने वाले इनके हाथ में चूड़ियां पहनाते समय कपड़े बदल कर चूड़ियां पहनाते थे।

शांताबाई कांबले जिले की पहली दलित शिक्षिका बनीं। शिक्षा विस्तार अधिकारी बनकर रिटायर हुई। उनके पति ने दूसरी शादी की थी। इसके बाद वह मायके गई। उनके मायके में और ससुराल में बहुत ही गरीबी होने के कारण दोनों तरफ पैसे भेजने पड़ते थे। कोई भी बीमार हुआ तो अस्पताल का खर्चा उनको उठाना पड़ता था। ऐसे माहौल में भी उनके लड़कों ने काफी तरक्की की।

वैशाली हलदनकर की आत्मकथा 'बारबाला' हमारे सामने अलग ही दुनिया खड़ी करती है। हमें झिझोड़ कर रख देती है। वह अपनी आत्मकथा में कहती है, "मैं जन्म से बारबाला नहीं थी। कोई भी जन्म से बारबाला नहीं होती। परिस्थिति के कारण मैं धीरे-धीरे बार में धकेली गई। मैंने 17 साल बार में काम किया। अपना और अपने बच्चों का पेट भरने और एक छोटा सा मकान खरीदने के लिए मुझे कमाने की जरूरत थी। पैसे कमाने की सारे रास्ते बंद होने पर मैंने बार का रास्ता चुना। बार में गाना मुझे अच्छा लगता था। डांसबार बंदी के कारण मेरे जीवन में बहुत उथल-पुथल हुई। मैं पूरी हिल गई। थोड़ी फुर्सत निकालकर मैंने यह आत्मकथा लिखी।"

बारबाला की यूनियन लीडर वर्षा काले जी की प्रस्तावना इस किताब को है। उन्होंने बड़े अध्ययन के साथ यह लिखी है। वह कहती है, "डांसबार बंदी के कारण 35 प्रतिशत स्त्रियां पूरी तरह से बेरोजगार हुई। करीब 45% स्त्रियों की आमदनी पर बहुत ही बुरा असर होने से उनका परिवार गरीबी में जी रहा है। केवल 10% स्त्रियां हालात से लड़ने में सक्षम होने से ढंग की जिंदगी जी पा रही हैं।"

पूरी तरह बेरोजगार होने वाली बड़ी उम्र की बारबालाएं हैं। उनमें से कुछ महाराष्ट्रियन हैं। जिन औरतों ने बार में वेट्रेस का काम शुरू किया उनकी आमदनी काफी कम होने के कारण उनके परिवार की कम उम्र की लड़कियों को देह व्यापार में उतरना पड़ा। केवल 2% ही खुद को सुरक्षित रख पाईं।

करीब 8% लड़कियां विदेश में साल के कुछ महीने डांस बार में काम करके पैसा कमाती हैं। बंदी के पहले लेडीज बार और डांस बार के नाम पर देह व्यापार चलाने वाले 70 से 80 बार मुंबई के आसपास थे। उनको फ्री बार, सायलेंस सर्विस, डिस्को बार, या पिकअप पॉइंटस के नाम से पहचाना जाता था। बंदी के कारण इन बार का धंधा तेज हुआ। उनको और सुंदर और युवा लड़कियां मिलने लगीं।

वैशाली बाल यौन शोषण की शिकार हो गई थी। उनकी मां घर छोड़ के गई। उसके पिता ने उनका यौन शोषण किया। पिता इतने बिगड़े हुए थे कि उन्होंने वैशाली की आशा नामक सहेली से भी बुरा बर्ताव किया। वह पांच साल की थी तब से उसके चाल में रहने वाले भास्कर चाचा उसके साथ गंदी हरकते करते थे। उसकी एक सहेली उसके साथ प्यार करती थी। वह सहेली लेस्बियन थी। वैशाली के मनोरुग्ण बेटे ने भी उसके साथ बलात्कार किया।

नागपुर की वुमन एक्टिविस्ट सीमा साखरेजी की आत्मकथा 'संग्राम' महिलाओं के जीवन, उनकी समस्याओं, उन पर हुए अत्याचार और पुरुषप्रधानता इसके बारे में बोलती है।

मथुरा बलात्कार के केस से कानून में जो बदलाव आए उसमें सीमाजी का बड़ा योगदान है। बलात्कार विरोधी मंच की उन्होंने स्थापना की। उन्होंने पूरे महाराष्ट्र में प्रवास करके महिलाओं को न्याय दिलाया। सशक्त आंदोलन कैसे खड़ा करना, समाज का स्वास्थ्य अच्छा करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, पारिवारिक हिंसा, औरतों से होने वाली मारपीट, बच्चियों पर होने वाले बलात्कार, दहेज प्रताड़ना, इन विषयों में उन्होंने बहुत ही काम किया है।

सीमाजी की खुद की जिंदगी भी बड़ी कठिन थी। वह माथे पर डिब्बा रखकर छाछ बेचने जाया करती थी। बहुत गरीबी का सामना उन्हें करना पड़ा। उनकी मां के लिए स्त्री शिक्षा का कोई महत्व ही नहीं था। वह सीमा जी को पाठशाला भेजने के लिए तैयार नहीं थी। बहुत बार उनकी शिक्षा बंद हुई। फिर भी अपनी जिद के कारण उन्होंने पीएचडी तक की पढ़ाई की और लेक्चरर बनीं।

उनके पति बहुत क्रोधी और इगोइस्ट थे। विश्वविद्यालय से गोल्ड मेडलिस्ट होने के कारण बड़े ही घमंडी थे। इतना खुदगर्ज इंसान शायद ही दुनियामें होगा। विवाह के पहले उन्होंने सीमाजी के सामने कुछ शर्तें रखी थी। वह इंटरकास्ट मैरिज था। सीमाजी के पति उनसे उम्र में छोटे थे। शादी के बाद बच्चे नहीं होने चाहिए, यह उनकी एक शर्त थी। जब बच्चा नहीं हुआ तो वे सीमाजी को ही कोसते थे। वो बहुत ही लहरी स्वभाव के थे। फिर भी सीमा जी ने उनसे शादी क्यों की? क्यों निभाई? ऐसे सवाल मन में आते हैं।

महाराष्ट्रियन महिलाओं की जीवन का सफर आपने मेरे साथ किया। कुछ संतुष्टि देने वाले पल थे, कुछ तकलीफ देने वाले, कुछ जिंदगीया ऐसी थी कि हम सोच भी नहीं सकते। चौन से सो भी नहीं पाते। अपनी मेहनत और जिद के कारण स्त्रियों ने इतना लंबा सफर तय किया है। अपनी शारीरिक दुर्बलता, सभी नैसर्गिक जिम्मेवारियां (प्रेगनेंसी, डिलिवरी ,बच्चों का बड़ा करना) बड़ी ताकत से निभा के राष्ट्रजीवन में और समाज में योगदान देती रहे। एक सशक्त, समर्थ, काबिल नारी बनने का प्रवास हमें अचरज में डालता है। Ⓜ

वेदज्ञानी विश्ववारा

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा वेदों पर अनुसन्धान करने वाली महान विदुषी थीं। ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाक के अटठाइसवें सूक्त षड्ऋकों का सरल रूपांतरण इन्होंने ही किया था। अत्रि महर्षि के वंश में पैदा होने वली इस विदुषी ने वेदज्ञान के बल पर ऋषि पद प्राप्त किया था।

विश्ववारा की विशेष रुचि अतिथि सत्कार के संबंध में थी। इसलिए उन्होंने ऋग्वेद के अतिथि सत्कार संबंधी मंत्रों पर अपना ध्यान केंद्रित किया और उन मंत्रों पर उन्होंने गहन चिंतन-मनन किया। इस प्रकार उन्होंने इन मंत्रों को पूरी तरह आत्मसात् कर लिया। उनके इस चिंतनख्र मनन का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ऋग्वेद के पांचवें मंडल द्वितीय अनुवाक के अठ्ठाइसवें सूक्त का साक्षात् दर्शन करते हुए इसके गहन रहस्यों से साक्षात् किया। इन्हें समझा तथा इनकी विषद् व्याख्या की। इस कारण उन्हें भी अपाला की ही भांति इस सूक्त का ऋषि पद प्राप्त हो गया।

विश्ववारा ने अपने प्रयोगों के द्वारा जाना कि किस विधि से एक स्त्री को अपने घर आये अतिथि का सावधानीपूर्वक सत्कार करना चाहिए। अतिथि सत्कार के साथ ही एक अन्य रहस्य से भी इस विश्ववारा ने पर्दा उठाते हुए स्पष्ट किया कि यज्ञ के लिए कौन सी तथा कैसे हविष्य पदार्थ दिए जाएं तो इसके क्या परिणाम हो सकते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि यज्ञ में विभिन्न उपयोगों के लिए कौन-कौन सी सामग्री का प्रयोग किया जाए जिससे हमारे यज्ञ का उद्देश्य सिद्ध हो। इसके साथ ही उन्होंने इस तथ्य को भी भली भांति समझकर स्पष्ट किया कि अपने पति के प्रजापत्य अग्नि की भी रक्षा पत्नी को ही करनी चाहिए। जब वह पति के प्रजापत्य की रक्षा करती है तो वह उतम, संतान की अधिकारी भी बन जाती है। Ⓜ

इष्ट देव सांकृत्यायन

डायन विचारण: बहुदैविकों एवं स्त्रियों के विरुद्ध अभियान!

जहाँ कहीं भी भगवान एक गिरजाघर बनाते थे,
वहीं शैतान भी एक पूजाघर बना लिया करता था।

-मार्टिन लूथर

डायन विचारण, जिसे अंग्रेजी में विच ट्रायल के नाम से जाना जाता है, यह चर्च व राज्य की देखरेख में 13वीं से लेकर 18वीं शताब्दी तक पूरे यूरोप में चला। यह अभिलेखों के अनुसार 60,000 से अधिक लोगों की हत्याओं का कारण बना और इसके शिकार लोगों में 80 प्रतिशत केवल स्त्रियाँ थीं। कई विद्वान इसे स्त्रियों के विरुद्ध एक अभियान के रूप में देखते हैं, और कई इसे उन दिनों वहाँ प्रचलित बहुदैविक पंथों को मिटा देने की योजना के रूप में

जो*न : हाँ, उन्होंने मुझे बताया कि तुम मूर्ख थे [यह शब्द बहुत आहत करता है], और यह कि मुझे तुम्हारे शहद घुले शब्दों को नहीं सुनना था और न ही तुम्हारी उदारता पर भरोसा करना था। तुमने मुझसे प्राणदान का वादा किया था, लेकिन वह तुमने झूठ बोला था। तुम सोचते हो कि जीवन कुछ और नहीं, बस पत्थर की तरह निष्प्राण न हो जाना है। मेरा भय रोटी-पानी को लेकर नहीं है, मैं केवल रोटी पर जी सकती हूं, मैंने कब इससे अधिक कुछ मांगा? अगर पानी साफ हो तो पानी पीना कोई मुश्किल नहीं है। रोटी को लेकर मुझे कोई दु:ख नहीं है, और पानी की कोई पीड़ा नहीं। लेकिन मुझे आकाश के प्रकाश, खेतों में उगे फूलों के दृश्य से वंचित करके मेरे पैरों को बाँध देना, इस तरह कि मैं फिर कभी सैनिकों के साथ सवार होकर युद्ध में न जा सकूं और न ही पहाड़ियों पर चढ़ सकूं; मुझे घुप्प अंधेरे में सांस लेने के लिए मजबूर कर देने, और मुझसे वह सब कुछ छीन लेने के लिए जो मुझे परमेश्वर से प्रेम के लिए प्रेरित करता है, जब तुम्हारी दुष्टता और मूर्खता मुझे उससे घृणा करने के लिए उकसाती है; यह सब बाइबल में वर्णित उस भट्टी से भी बदतर है जो सात बार गर्म की गई थी। मैं अपने युद्ध के घोड़े के बिना रह सकती थी; मैं एक स्कर्ट में काम चला सकती थी; मैं बैनर और तुरही और शूरवीर और सैनिक... इन सबको मुझे छोड़कर आगे निकल जाने दे सकती थी, बिलकुल वैसे ही जैसे वे अन्य स्त्रियों को छोड़कर निकल जाते थे, अगर केवल अभी पेड़ों को छूकर गुजरती सरसराती हवा को मैं सुन सकती; चमचमाती धूप में उड़ते चले जाते चक्रवाकों को देख पाती, कुहरे में लिपटे हुए चीखते मेमनों और गिरजाघर की पवित्र घंटियों को सुन पाती जो मेरे देवदूतों की ध्वनियों को मुझे स्पर्श करते हुए हवा में बहा ले जातीं। लेकिन इन चीजों के बिना मैं नहीं रह सकती; और इन चीजों से मुझे या किसी भी मनुष्य को दूर कर देने की तुम्हारी इच्छा से ही, मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारी परिषद शैतान की है, और मेरी भगवान की।*[1]

यह कई नाटकों में मौजूद दूसरे संवादों की ही तरह एक साधारण संवाद नहीं; एक ऐतिहासिक चीख है। अचानक आई किसी प्राकृतिक आपदा से बचकर भाग रही भयाक्रांत भीड़ से निकलने वाली चीख से भी अधिक त्रासद और कारुणिक। यह चीख उस स्त्री की है, जिसे उसकी क्षमताओं के लिए जिंदा जला दिया गया था। यह वह स्त्री है, जिसे बाद में संत की उपाधि से अभिषिक्त किया गया, लेकिन इससे पहले उसे विधर्मी होने और जादू-टोने के नाम पर जला दिया गया था। जोन, जिसे वास्तविक जीवन में जोन ऑफ आर्क के नाम से जाना जाता है, वास्तव में 15वीं शताब्दी के फ्रांस की एक सैनिक हस्ती थी। इसके बाद चले मुकदमे में, जोन को उसके विरुद्ध कुल 70 से अधिक आरोपों का उत्तर देने का आदेश दिया गया था, जिसमें जादू-टोना, विधर्मी होना और पुरुषों जैसे परिधान पहनना तक शामिल था।[2] यद्यपि उसे संत जैसी उपाधि प्रदान की गई... लेकिन उसकी उस नितांत क्रूर एवं कारुणिक हत्या के वर्षों बाद, जिसकी वह निश्चित रूप से पात्र नहीं थी और जो उसे अंतत: और वस्तुत: मिली।

जादू-टोने में विश्वास, जिसे पश्चिम केवल पूरब की एक कुरीति कहता है और जिसके नाते हमें सांपों और सपेरों की भूमि के रूप में चित्रित

करता है, खुद पश्चिम के लिए भी कोई बाहरी चीज नहीं है। शेक्सपियर जैसे महान रचनाकारों की अधिकांश नाट्यकृतियां स्वयं इस बात का प्रमाण हैं। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, जो अपने प्रखर और कटाक्ष करने के स्वभाव के लिए जाने जाते हैं, ने इसे किसी भी अन्य लेखक की तुलना में अधिक तथ्यात्मक और तीखे ढंग से चित्रित किया है। इन सुनवाइयों के लिए सर्वाधिक चर्चित स्थलों का उल्लेख संबंधित देशों की लोकगाथाओं में भी मिलता है। पूरब में ऐसी बातों के लिए कभी भी किसी भी धार्मिक या राज्य प्राधिकारी द्वारा किसी को भी दंडित नहीं किया गया, जिसके लिए पश्चिम में पांथिक और राज्य प्राधिकारियों ने अभिलिखित रूप से 60 हजार लोगों को मार डाला था।[3]

हालांकि वास्तविक आंकड़ों की जानकारी किसी को भी नहीं है, क्योंकि बहुत सारी घटनाएँ वहशी भीड़ द्वारा की गई हत्याओं की भी हैं। मारे गए लोगों में सभी तरह के लोग हैं ख्र साधारण से लेकर कुलीन लोग तक जिनमें सरकारी अधिकारी या स्थानीय प्रशासक, न्यायाधीश, नगराध्यक्ष, पार्षद, पादरी और यहां तक कि पुजारी भी शामिल हैं, उनकी स्त्रियां और बच्चे भी। अधिकृत रूप से तो नहीं, लेकिन विधि-विरुद्ध रूप से यह अभी भी जारी है। इस संबंध में नवीनतम समाचार यूरोप से 1997 के अंत में आया था। रूस के दो किसानों ने एक महिला को मार डाला था और उसके परिवार के पांच अन्य सदस्यों को केवल अपने इस अंधविश्वास के आधार पर घायल कर दिया कि उसने उनके विरुद्ध लोकप्रचलित काले जादू का प्रयोग किया है।[4] विचहंट यानी डायन विरोधी अभियान के शिकार लोगों में महिलाओं की संख्या काफी बड़ी है। यही कारण है विद्वानों का एक बड़ा वर्ग इसे महिलाओं के विरुद्ध अभियान के रूप में देखता है। इसे यूरोप में ईसाई धर्म द्वारा वहाँ पहले से ही अस्तित्ववान बहुदैविक पंथों के विरुद्ध चलाए गए अभियान के रूप में भी देखा जाता है। दूसरों पर अपने पांथिक वर्चस्व को थोपने के इस विचार के भीतर नारीवादी विचारधारा की एक संभावना भी स्वयमेव सन्निहित है। ऐसे शोध भी हैं जो इस पूरे घटनाक्रम के मूल में एक मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी प्रकट करते हैं। वे किसी परिवार के भीतर धार्मिक आस्था को बनाए रखने में महिलाओं की भूमिका को रेखांकित करते हैं।

इस विषय को समझने के लिए हमें डायनों की सुनवाई के नाम पर होने वाली घटनाओं पर गहराई से गौर करना होगा। इन घटनाओं का कालक्रम 13वीं से 19वीं शताब्दी की लंबी अवधि तक फैला हुआ है। यद्यपि यह घिनौनी गाथा अभी भी जारी है, फिर भी यूरोपीय समाज के लिए यह संतोष की बात हो सकती है कि इस प्रकार के मामले अब यूरोप में किंचित ही होते हैं। इसके साथ ही, सबसे बड़ी आत्मतुष्टि उन्हें इस बात से हो सकती है कि ऐसी घटनाएं अब कम से कम राज्य या गिरजाघर प्राधिकारियों की ओर से प्रायोजित तो बिलकुल ही नहीं होती हैं। अगर कोई गंभीरता और ईमानदारी से देखे तो पाता है कि जादू-टोने के नाम पर अभी भी लोगों को अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है, यद्यपि अब ऐसा केवल गुप्त रूप से और नाममात्र ही होता है। आज के युग में अगर कभी ऐसी दुखद घटनाएं होती हैं तो उनके लिए उत्तरदायी मुख्यतः स्थानीय विश्वास या भीड़ है, न कि गिरजा अथवा राज्य प्राधिकारी।

साभार : https://www.facebook.com/Cathedral-of-the-Black-Goat-official-130616260340387/?ref=page_internal

इस दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण अवधि 16वीं और 17वीं शताब्दी की है। जादू टोना के नाम पर यूरोप के इतिहास में विशेष रूप से 50 वर्षों की अवधि, 1580 से 1630 तक, स्त्रियों के लिए सर्वाधिक घातक सिद्ध हुई। इन सुनवाइयों के मूल में कई कारण बताए जाते हैं और फिर भी यह कहना कठिन है कि इनमें से कौन सा वास्तविक है। यह सच है कि मध्ययुग में और यहां तक कि अपने उत्कर्षकाल (900 से 1400 तक) में भी चर्च डायनों और जादू-टोने के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करना चाहता था। इसीलिए वह जादू-टोने के लिए लोगों पर होने वाली कार्यवाहियों में सीधे शामिल नहीं था। 1528 में तो, पोप अलेक्जेंडर चतुर्थ ने जादू-टोने जैसे मामलों के विचारण पर विधिवत रोक लगा दी थी। यद्यपि 1550 तक ईसाई प्राधिकारियों ने अपना पक्ष पूरी तरह उलट दिया। फिर इसके बाद यूरोप में डायन कही जाने वाले स्त्रियों पर मुकदमों का जो त्रासद और लंबा दौर शुरू हुआ उसने डेढ़ शताब्दियों तक थमने का नाम नहीं लिया। जब तक वह थमता कम से कम 80,000 लोगों पर जादू-टोने के लिए मुकदमे चलाए जा चुके थे और उनमें से आधे से अधिक लोगों को मार दिया गया।[5] इनमें भी अधिकतर लोगों को दंडस्वरूप जिंदा जला दिया गया। कई लोगों को या तो जमीन में गाड़ दिया गया या फिर प्राण निकलने तक उन पर भीड़ द्वारा पत्थर बरसाए गए। ऐसा भी नहीं कि उनमें केवल महिलाएं थीं जिन पर जादू-टोने के लिए मुकदमा चलाया गया या दंडित किया गया। इतिहास साक्षी है कि पुरुषों पर भी इसके लिए मुकदमे चलाए गए और उन्हें भी दंडित किया गया, लेकिन चर्च की इस रूढ़ि की सर्वाधिक शिकार स्त्रियां ही हुईं। यद्यपि आरंभिक घटनाओं में तो पुरुष ही थे जिन पर मुकदमे चलाए गए और जिन्हें विचारण के बाद दंडित भी किया गया, लेकिन बाद में चर्च की इस रूढ़ि की

शिकार अधिकतर महिलाएं ही हुईं। कुछ विद्वान तो नारीवाद का जो यूरोपीय स्वरूप विकसित हुआ उसके लिए इन्हीं घटनाओं को मूलभूत कारण मानते हैं और यह तथ्य है कि इन विचारणों की शिकार महिलाओं में 80 प्रतिशत 40 वर्ष के आसपास की आयु वाली थीं।[6]

रूढ़ि की नींव

डायन या जादू-टोना यूरोपीय समाज के लिए नया नहीं था। हर कोई उनसे डरता था और इस भय के कारण संदिग्ध लोगों को दंडित करना भी उनके लिए नया नहीं था। दूसरे समाजों की तरह यूरोपीय समाज में भी यह एक विश्वास के रूप में मौजूद था, लेकिन ईसाई धर्मसिद्धांत की मुख्यधारा डायनों और जादू-टोने के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती थी। वे इसे बहुदैविक समाज के एक अंधविश्वास के रूप में देखते और इसकी निंदा किया करते थे।[7] हालांकि, डायन पंथ परिकल्पना (विच-कल्ट हायपोथीसिस) के अनुसार, बाद में ईसाई व्यवस्था ने इसका उपयोग यूरोप के बहुदैविक जनसमुदाय के विरुद्ध एक हथियार के रूप में किया। यह एक तथ्य है कि डायन होने के नाम पर जनसंहार करने वाले लोगों का मूल केंद्र यूरोप का जर्मनभाषी हृदयस्थल था। यह वह क्षेत्र है जो वर्तमान जर्मनी, स्विट्जरलैंड और पूर्वोत्तर फ्रांस को मिलाकर बनता है।

रोम के तेरहवीं शताब्दी के एक बिशप पोप ग्रेगरी नवें ने 1233 में एक पैपल बुल* जारी किया और इसके माध्यम से फ्रांस के टूलूज शहर में इन्क्विजिशन** की एक नई शाखा की स्थापना की। यह डोमिनिकंस और उन लोगों के नेतृत्व में था, जो विधर्मी समझे जाने वाले ईसाई समूहों के विरुद्ध अभियोग चलाने का इरादा रखते थे, जैसे कि कैथर्स^ और वाल्डेंसियंस↗। दुर्भाग्य से, उनके अभिलेख अब उपलब्ध नहीं हैं। इसका कारण यह है कि अन्वेषण अधिकारियों (इन्क्विजिटर्स) के प्रति लोगों के मन में व्यापक रूप से घृणा की भावना भर गई थी। यहाँ तक कि उन्हें सड़क पर भी छिपकर चलना पड़ता था। साधारणत: लोग घात अन्वेषण अधिकारियों के बजाय उनके अभिलेखों पर अधिक लगाए रहते थे। ऐसा लगता है कि अभिलेखों को प्राय: आरोपियों या उनके परिजनों एवं मित्रों ने निशाना बनाया, जिससे कि वे अभियोजन की कार्यवाही को विफल कर सकें और यदि इसमें सफल न हो सकें तो कम से कम अपनी प्रतिष्ठा तो बचा ही सकें। 1329 में, जब फ्रांस के एविग्नन में पोप का निवास था, तो पास के ही एक शहर कारकैसन के अन्वेषण अधिकारी ने एक भिक्षु को आजीवन कारावास का दंड सुनाया और दंड के वाक्य में उल्लेख किया... "झाड़फूँक, अभिचार और बहुत तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के शैतान आदि..." और प्राय: जादू-टोने के लिए के लिए लैटिन एक ही शब्द का उपयोग बार-बार करता है, सॉर्टिलेजिया। यह शब्द 1595 से ही निकोलस रेमी की कृति के शीर्षपृष्ठ पर पाया जाता है, जहां यह दावा किया गया है कि 900 व्यक्तियों को सॉटिलेजी क्राइमेन (जादू-टोने के अपराध) के लिए दंडित किया गया था।[8]

15वीं शताब्दी में वलैस विच ट्रायल

यद्यपि डायन विचारण की अन्य घटनाओं की तुलना में वलैस डायन विचारण अल्पज्ञात है, लेकिन है यह कथित डायनों पर चले मुकदमों संबंधी इतिहास के महत्वपूर्ण बिंदुओं में से एक। दक्षिण-पश्चिमी स्विस कैंटन वलैस, जो आज शराब और पर्यटन के लिए ही अधिक जाना जाता है, का उल्लेख यूरोप के इतिहास में डायन विरोध के व्यवस्थित अभियानों के प्रस्थान बिंदु के रूप में किया गया है। ये मुकदमे 1428 से 1436 तक कुल आठ साल तक चलते रहे, जो अन्य प्रमुख यूरोपीय मुकदमों से 50 वर्ष पूर्व शुरू हुए, और जिनके चलते कम से कम 367 लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। एक ऐसी घटना भी है जिसमें राजनीतिक और सांप्रदायिक दोनों तरह के तनाव साफ देखे जा सकते हैं। एक ओर, पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर के वलैस में वाल्डेंसियन मतांतर का उदय हो रहा था। इसके कारण ही इन्क्विजिशन को पुलिस की मदद के लिए लेक जिनेवा के पास लॉजेन में एक आधार स्थापित करना पड़ा। दूसरी ओर, वलैस केवल एक महत्वपूर्ण विद्रोह से उबरा था। 1415 और 1420 के बीच यह क्षेत्र शक्तिशाली रैरन परिवार के वर्चस्व के विरुद्ध खड़ा हुआ था। इसके बाद भी तनाव बना ही हुआ था और अधिकारीनए सिरे से अपना वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास में थे, खासकर ग्रामीण जनसमुदाय पर। वलैस विच ट्रायल वस्तुत: इन्हीं दो विषयों के प्रत्युत्तरस्वरूप की गई कार्रवाई था।

यहाँ तक कि अधिकारियों की प्रतिशोध की भावना वलैस ट्रायल की प्रक्रिया में भी परिलक्षित की जा सकती हैं। जादू-टोने संबंधी आरोप पर कार्रवाई शुरू करने के लिए आधार या प्रमाण के रूप में अधिकारी यहां केवल तीन-चार पड़ोसियों की सार्वजनिक बातचीत या बदनामी को ही पर्याप्त मान ले रहे थे। इन विचारणों का एक और उल्लेखनीय बिंदु लिंग का मुद्दा है। अन्य विचारणों के विपरीत, जो बाद में पूरे

*पैपल बुल कैथोलिक चर्च के पोप द्वारा जारी किया गया एक प्रकार का सार्वजनिक आदेश, लेटर्स पेटेंट या चार्टर है। इसका नामकरण लीडेन सील (बुल्ला) के आधार पर किया गया है, जो इसे प्रामाणिक बनाने के लिए परंपरागत रूप से अंत में लगाया गया था।

**इन्क्विजिशन पूरे यूरोप और अमेरिका से विधर्मियों को जड़ से उखाड़ फेंकने और उन्हें दंडित करने के लिए कैथोलिक चर्च के अधीन स्थापित एक शक्तिसंपन्न विभाग था। यह 12वीं शताब्दी में शुरू हुआ और सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। इन्क्विजिशन लोगों बर्बर किस्म की यातनाएं देने तथा खास तौर से यहूदियों और मुसलमानों को गंभीर रूप से प्रताड़ित करने के लिए कुख्यात है। इसका सबसे खराब प्रदर्शन स्पेन में रहा, जहां 200 से अधिक वर्षों तक यह बहुत वर्चस्व वाली शक्ति बना रहा, जिसके परिणामस्वरूप कुछ 32,000 दंडित किए गए।

^ कैथर्स (इन्हें कैथरी नाम से भी जाना जाता है। यह शब्द ग्रीक के कैथरोई से आया है, जिसका अर्थ होता है शुद्ध व्यक्ति) दक्षिणी फ्रांस के एक द्वैतवादी मध्ययुगीन धार्मिक संप्रदाय थे जो 12वीं शताब्दी ईस्वी में फले-फूले और जिन्होंने कैथोलिक चर्च के प्राधिकार को चुनौती दी थी। एल्बी शहर कैथर मत वाले लोगों का बड़ा केंद्र था और इसीलिए इन्हें एल्बिजेंसियन के नाम से भी जाना जाता था।

↗वाल्डेंसियन इन्हें वाल्डेंसेज, वैलेंसेस, वाल्डेसी या वूडोइस नाम से भी जाना जाता है। ये एक प्रोटो-प्रोटेस्टेंट चर्च परंपरा के अनुयायी हैं, जो सुधारों से पहले पश्चिमी ईसाई धर्म के भीतर एक तापस आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था।

यूरोप और यहां तक कि अमेरिका के न्यू इंग्लैंड प्रांत में हुए थे, वलैस में अधिकांश आरोपी पुरुष और किसान थे। इनमें से कुछ ही शिक्षित थे और एक-तिहाई महिलाएं थीं। पहला विचारण 7 अगस्त, 1428 को शुरू हुआ। कई अन्य मामलों की तरह यहां भी अभियुक्तों को जब बहुत प्रताड़ित किया जाता था, तो वे विधर्मी कर्मकांडों के साथ काले जादू के किस्से बकने लगते थे। डेढ़ साल के भीतर उत्पीड़न की यह प्रक्रिया पूरे वलैस जिले में फैल गई और एक से दो सौ तक लोगों को मार दिया गया। उनमें से कुछ लोगों का सिर कलम किया गया था। हालांकि अधिकतर को जलाकर मारा गया था। प्रोटेस्टेंटवाद के उदय ने डायन विचारण की ऐसी घटनाओं को फैलाया और बढ़ाया।[9]

ट्रायर की भयावह कहानी [1572-1593]

इस तरह की पहली घटना जर्मनी में सेंट मैक्सिमन की एक छोटी बस्ती में 1572 में हुई थी। उस साल अधिकारियों ने ईवा नाम की एक महिला पर जादू-टोने से एक बच्चे की हत्या का आरोप लगाया था। असह्य यातना से टूटकर ईवा ने न केवल इस आरोप को स्वीकार कर लिया, बल्कि अपनी सहयोगी के रूप में दो और महिलाओं का भी नाम लिया। परिणामतः इन तीनों महिलाओं को बाँधकर जला दिया गया। विचारण की प्रक्रिया ने यहीं से गति पकड़ी और 1590 के दशक के मध्य तक आते-आते इस क्षेत्र में 500 लोगों को डायन होने के नाम पर जलाकर मार डाला गया था - इससे भी आश्चर्यजनक सत्य यह है कि यह घटना ऐसी जगह हुई थी जहाँ केवल 2,200 लोग निवासी थे।[10]

सेंट मैक्सिमेन को मूल रूप से पश्चिमी यूरोप के सबसे पुराने मठों में से एक के रूप में जाना जाता था। इसकी स्थापना ट्रायर के सेंट मैक्सिमेन ने की थी। ट्रायर जर्मनी में मोसेल नदी के किनारे बसा एक शहर है। यूरोपीय इतिहास के सबसे बड़े डायन विचारणों में से एक यह इस क्षेत्र के ग्रामीण पंथप्रदेश (डायसीज) में 1581 में शुरू हुआ और अंततः छह साल बाद 1587 में इस आग की लपटें शहर तक पहुंच गई। इतने बड़े पैमाने पर डायनों के तलाश के पीछे इरादे राजनीतिक प्रतीत होते थे। जोहान वॉन स्कोनबर्ग, जिसे 1581 में ट्रायर के स्वतंत्र पंथक्षेत्र का प्रधान पादरी नियुक्त किया गया था, जेसुइट्स मत से अत्यंत प्रभावित और उसका बड़ा प्रशंसक था।[11] जेसुइट्स के प्रति अपनी निष्ठा सिद्ध करने के चाहत में, आर्चबिशप जोहान वॉन स्कोनबर्ग ने अपने मत के अनुसार तीन विधर्मी (नॉनकन्फर्मिस्ट) समूहों - प्रोटेस्टेंट, यहूदी और डायनों के शुद्धीकरण एक आदेश जारी किया। जादू-टोने के इन आरोपियों में से बहुत कम लोग ही छोड़े गए। 1587 और 1593 के बीच, 22 गांवों के अभियुक्तों में से 368 को जिंदा जला दिया गया। इनमें से लगभग सभी ने प्रताड़ना से त्रस्त होकर अपने दोष स्वीकार कर लिए थे। हालत यह थी कि 1588 में दो गांवों में केवल एक-एक महिला निवासी बचीं। पीड़ितों में से लगभग एक-तिहाई पुरुष, महिलाएं और बच्चे ऐसे थे, जो सरकार या स्थानीय प्रशासन में जज, नगर-प्रमुख, पार्षद, धर्माधिकारी और पैरिश पादरी जैसे पदों पर या उनसे संबंधित थे।[12]

साभार : https://www.facebook.com/Cathedral-of-the-Black-Goat-official-130616260340387/?ref=page_internal

नॉर्थ बैरिकः ऐसे अत्याचार कि शैतान हो शर्मिंदा [1590 - 1592]

समुद्रतटीय नगर नॉर्थ बैरिक, जहां यह विचारण हुआ था, स्कॉटलैंड के ईस्ट लोथियन में एक शाही शहर है। इन त्रासद विचारणों में स्कॉटलैंड और डेनमार्क जैसे दो देशों के साथ-साथ उनके राजपरिवार भी शामिल थे। स्कॉटलैंड के राजा जेम्स छठवें डेनमार्क के क्रिश्चियन चतुर्थ की बहन राजकुमारी ऐनी से विवाह के लिए कोपेनहेगन गए। वहाँ से स्कॉटलैंड वापसी के दौरान एक भयावह समुद्री तूफान में फंस जाने से उन्हें नॉर्वे में उतरना पड़ा और कई हफ्तों तक वहीं शरण लेना पड़ा। इस बीच डैनिश बेड़े के प्रमुख ने इस तूफान के लिए एक उच्चाधिकारी की पत्नी पर दोष मढ़ दिया। ऐसा उसने अपनी व्यक्तिगत शत्रुता के कारण किया था। यही आरोप इन डायन विचारणों का कारण बना, जो जुलाई 1590 में डेनमार्क में शुरू हुए। इस दुर्भावना की पहली डैनिश शिकार अन्ना कॉल्डिंग हुई, जिन्होंने खुद पर मुकदमों के दौरान दबाव में पांच और महिलाओं के नाम ले लिए। उन सभी ने कबूल कर लिया कि उन्होंने रानी ऐनी के जहाज के ऊपर चढ़ने के लिए शैतान भेजे थे। इनमें से दो महिलाओं को उसी वर्ष सितंबर में क्रोनबॉर्ग में डायन बताकर जला दिया गया था। यही घटना है, जिसने तुरंत राजा जेम्स को जादू-टोने की तथाकथित कुप्रथा को खत्म करने के जुनून का शिकार बना लिया। वह इस जुनून में इस हद तक डूब गए कि इसी क्रम में डायन विरोधी अभियान का पक्ष लेते हुए उन्होंने एक किताब 'डेमनोलॉजी' लिख डाली।

जेम्स ने डेनमार्क से केवल खबर सुनी थी और मात्र इसी आधार पर उसने एक न्यायाधिकरण स्थापित करने का निर्णय ले लिया। इसके बाद अविलंब अपनाए गए

उपायों के तहत, नॉर्थ बैरिक में सौ से अधिक संदिग्ध डायनों को गिरफ्तार किया गया, जिनमें से कई ने यंत्रणा का शिकार होकर यह स्वीकार कर लिया कि वे रात में चर्च में ही शैतान से मिले और राजा के जहाज को डुबाने के प्रयास किए। हालांकि उन लोगों में से कुछ ने आरोपों के पुरजोर खंडन का दुस्साहस भी किया और ऐसे दुस्साहसी लोगों पर जघन्य यातनाओं की अमानवीय शृंखला यहीं से शुरू होती है। इसका पहला शिकार गिली डंकन हुआ। उस पर जादू से लोगों के चिकित्सीय उपचार का आरोप था और लंबे समय तक यातना झेलने के बाद डंकन ने अंततः शैतान से अपने संबंध की बात स्वीकार कर ली। उसे उसके कथित अपराध के लिए जला दिया गया था। कुल मिलाकर, 70 लोगों पर जादू टोना करने का आरोप लगाया गया था, जिसमें स्कॉटिश कुलीन वर्ग के भी कई सदस्य शामिल थे। हालांकि मारे गए लोगों की वास्तविक संख्या अज्ञात है।[13,14]

नॉर्थ बैरिक में सौ से अधिक संदिग्ध डायनों को गिरफ्तार किया गया, जिनमें से कई ने यंत्रणा का शिकार होकर यह स्वीकार कर लिया कि वे रात में चर्च में ही शैतान से मिले और राजा के जहाज को डुबाने के प्रयास किए। हालांकि उन लोगों में से कुछ ने आरोपों के पुरजोर खंडन का दुस्साहस भी किया और ऐसे दुस्साहसी लोगों पर जघन्य यातनाओं की अमानवीय शृंखला यहीं से शुरू होती है। इसका पहला शिकार गिली डंकन हुआ। उस पर जादू से लोगों के चिकित्सीय उपचार का आरोप था और लंबे समय तक यातना झेलने के बाद डंकन ने अंततः शैतान से अपने संबंध की बात स्वीकार कर ली

दो प्रमुख आरोपियों - एग्नेस सैंप्सन और डॉ. जॉन फियान ने अपने पर थोपे गए अपराध स्वीकार करने से इनकार कर दिया। सैंप्सन हंबी की एक सम्मानित वयोवृद्ध महिला थीं और डॉ. फियान प्रेस्टन के एक विद्वान शिक्षक। चूँकि उन्होंने आरोपों से इनकार करने का दुस्साहस दिखाया, अतः उन्हें कठोर यातनाएं दी गईं। सैंप्सन को राजा जेम्स और रईसों की एक परिषद के सामने लाया गया। उन्होंने सभी आरोपों से इनकार किया। विशेष आदेश से उनके सिर और शरीर के बाल मुंडवा दिए गए; उन्हें एक डायनी नकेल (विच ब्रिडल) के जरिये उनकी कोठरी की दीवार से बांध दिया गया था। लोहे की बनी इस नकेल में चार तेजधार काँटे लगे होते थे जो मुंह के अंदर डाल दिए जाते थे। इसमें दो कांटे जीभ को दबाए रखते थे और दो अन्य अंदर से गलफड़ों को। कई दिनों तक उन्हें सोने नहीं दिया गया और उनके सिर के चारों ओर एक रस्सा बांध दिया गया। इतने अत्याचारों के बाद उन्होंने अपने विरुद्ध सभी तिरेपन अभियोगों को स्वीकार कर लिया। अंत में उनका गला घोंटते हुए उन्हें एक डायन के रूप में जलाकर मार दिया गया। 1591 में प्रकाशित एक पुस्तिका 'न्यूएस फ्रॉम स्कॉटलैंड, डेक्लेयरिंग द डैम्नेबल लाइफ ऑफ डॉ. फियान, अ नोटेबल सॉर्सरर' के अनुसार सैंप्सन ने स्वीकार कर लिया था कि उसने 200 डायनों के साथ एक अनुष्ठान में भाग लिया था और इस अनुष्ठान में डंकन भी थी। डॉ. फियान को भी बहुत यातनाएं झेलनी पड़ीं। उनके नाखूनों को जबरन निकाला गया, फिर लोहे के पिन लगे बूटों से उन्हें दबाते हुए जोर-जोर से हिलाया गया। अंत में उन्हें एडिनबरा के कैसलहिल ले जाया गया और अंततः 16 दिसंबर को जिंदा जला दिया गया। क्रिस्टोफर स्माउट के अनुसार, 1560-1707 के बीच स्कॉटलैंड में 3,000 से 4,500 लोगों को डायन कहकर मार दिया गया।[15] इन घटनाओं का समाज पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा इसका अनुमान आप इस मान्यता से लगा सकते हैं कि शेक्सपियर ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'मैक्बेथ' में डायन विचारण के साथ-साथ उसके अंतर्गत दिए गए यातना विधानों को भी नाट्यांतरित किया था।[16]

फुल्डाः एक पादरी का आजन्म प्रतिशोध [1603 - 1606]

जर्मनी में चार सबसे बड़े डायन विचारणों में से एक फुल्डा विच ट्रायल हैं। फुल्डा जर्मनी के हेस राज्य में फुलडा नदी के किनारे एक शहर है। बाल्तसर वॉन डर्नबैक फुलडा मठ का प्रिंस एबट (मठाधीश) था। 1570 में उसे उसके चाचा के उत्तराधिकारी के रूप में प्रिंस एबट चुना गया और पोप पायस पंचम द्वारा इसका अनुमोदन किया गया। मठाधीश रहते हुए बाल्तसर ने अपने भाइयों ओटो, मेल्शिएर और विल्हेम को उच्च पद प्राप्त करने में पूरी मदद की और कैथोलिक पुनरुद्धार की नीति को भी तेजी से अपनाया। 1571 में उसने जेसुइट्स को एक विद्यालय और महाविद्यालय की स्थापना के लिए कहा और इस बात पर जोर दिया कि उनके सदस्य मठ की जीवनशैली अपनाएं। जबकि उनके पूर्ववर्तियों ने प्रोटेस्टेंटवाद को स्वीकार कर लिया था, जिसका परिणाम यह हुआ था कि फुल्डा के अधिकांश नागरिक और उस पंथक्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में भी बहुत लोग लूथरवाद को मानते थे। बाल्तसर ने अपने क्षेत्र की प्रजा को या तो कैथोलिक मत में लौटने या उसका क्षेत्र छोड़ देने का आदेश दिया। अधिकारियों और सामंतों ने उसके इन असहिष्णु कदमों के प्रति अपना विरोध दर्ज कराया। इन सबके संयुक्त विरोध ने 1576 में बाल्तसर को त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर दिया। इसके बाद जूलियस एश्टर को प्रशासक भी इस शर्त पर बनाया गया कि वह सामंतों को उनके मत पर चलने देगा। बाल्तसर वहाँ से भाग कर मेंज के आर्कबिशप के पास गया। उन्होंने उसके त्यागपत्र को रद्द कर दिया और सम्राट मैक्सिमिलियन द्वितीय तथा पोप ग्रेगरी तेरहवें को शिकायत भेजकर यह माँग की कि उसे फिर से उसके पद पर स्थापित किया जाए।[17] पोप ने जूलियस एश्टर वॉन मेस्पेलब्रन को वह फुल्डा से अपना दावा छोड़ने से मना करने पर पंथ से बहिष्कृत करने की धमकी दी। इस पर जूलियस एश्टर ने मामले को मुकदमे को सुलझाने पर जोर दिया, जो कि 25 वर्ष से अधिक समय तक चल सकता था। अंततः ऑलिक काउंसिल ने 1602 में बाल्तसर को फिर से उसके पद पर बहाल कर दिया और साथ ही विद्यालयों, सामंतों और शहरों को जुर्माने के साथ कार्यवाही

का खर्च देने की भी सजा सुनाई। वापसी पर बाल्तसर ने प्रति सुधार संबंधी कार्रवाई की अपनी नीति जारी रखी और शहर के साथ-साथ पूरे पंथक्षेत्र में कैथोलिक पंथ की पूर्ण पुनर्स्थापना का लक्ष्य हासिल किया।[18]

निर्वासन से लौटने के बाद बाल्तसर सांप्रदायिक उदारता के विचार को विफल करने के लिए पहले से ही चल रहे कैथोलिकों के सुधार विरोधी प्रयासों का हिस्सा बन गया। उसने तथाकथित अशुद्धियों से फुल्डा शहर की मुक्ति और उसके फिर से शुद्धीकरण के लिए टोना-टोटके के प्रचलन के विरुद्ध आक्रामक अन्वेषण कार्रवाई शुरू की। इसकी सर्वाधिक चर्चित शिकार एक गर्भवती महिला हुई जिसका नाम मर्गा बायन था। उसे तरह-तरह से प्रताड़ित कर आरोप स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। इसी आधार पर दोषी ठहरा कर बायन को जलाकर मार डाला गया। यहाँ विचहंट की घटनाएं 1605 में डर्नबक की मृत्यु के बाद ही रुकीं।[19] हालांकि इस दौरान इसने लगभग 250 जीवन ले लिए।

बास्क: रीतियों के दमन के लिए 7000 लोगों पर मुकदमे [1609-1614]

बास्क उत्तर मध्य स्पेन का एक क्षेत्र है, जो फ्रांस की दक्षिण-पश्चिमी सीमाओं का निकटवर्ती है। यह वह जगह है जहां जादू-टोने के नाम पर लोगों पर सर्वाधिक मुकदमे चलाए गए। दस्तावेजों के अनुसार, लगभग 7,000 मामलों की जांच यहां इन्क्विजिशन द्वारा की गई थी। आरोपियों में हालांकि महिलाएं पहले से ही थीं, लेकिन यहाँ केवल वही नहीं थीं। पुरुषों और बच्चों के साथ-साथ संतों के नाम वाले ताबीजों से उपचार करने के आरोप में पुजारियों पर भी मुकदमे चलाए गए।

इन मुकदमों का पहला चरण तो 1610 में समाप्त हो गया। यह 31 अभियुक्तों के विरुद्ध ऑटो-दा-फे की घोषणा के साथ समाप्त हुआ था। ऑटो-दा-फे 15वीं से लेकर 19वीं शताब्दी तक चला विधर्मियों और धर्मत्यागियों पर थोपा जाने वाला सार्वजनिक तप का एक अनुष्ठान था। यह स्पेनिश, पुर्तगाली या मैक्सिकन इन्क्विजिशन द्वारा सजा के रूप में लाया गया था, जो नागरिक अधिकारियों द्वारा लागू कराया जाता था। इसका चरमबिंदु व्यक्ति को जलाकर मार डालने का होता था। बहरहाल, इसके बाद कार्यवाही निलंबित कर दी गई और एक कनिष्ठ इन्क्विजिटर अलोंसो सालाजार फ्रायस, जो एक वकील भी था, को मामलों की व्यापक जाँच के लिए भेजा गया। उसने ग्रेस के फरमान* (एडिक्ट ऑफ ग्रेस) के साथ ग्रामीण क्षेत्रों का, विशेषत: जुगरामुर्दी के आसपास, भ्रमण किया। यह फ्रांसीसी-स्पेनिश सीमा के पास एक जगह है, जहां एक गुफा और पानी की एक धारा (ओलाबीडिया या इन्फर्नुको इर्रेका, "हेल्स स्ट्रीम") को डायनों का मिलन स्थल कहा जाता था। 1911 में की गई इस यात्रा के दौरान फ्रायस ने उन सभी लोगों से क्षमादान का वादा किया, जो स्वेच्छा से अपना अपराध स्वीकार करने और अपने सहयोगियों का रहस्योद्घाटन करने के लिए तैयार हो जाते। जैसा कि इस तरह के मामलों में हमेशा होता था, अपनी जान बचाने के लिए भारी संख्या में लोग रहस्योद्घाटन करने लगे। अंतत: वह 2,000 लोगों की आत्मस्वीकृतियों के साथ लोग्रोनो लौटा। हैरानी की बात यह है कि इनमें से 1,384 तो ऐसे बच्चे थे जिनकी उम्र मात्र सात से चौदह वर्ष के बीच थी। इसमें 5,000 से अधिक लोगों पर नामजद आरोप लगाए गए थे। इन 1,802 लोगों में से अधिकतर ने अपने बयानों के लिए यातनाओं को जिम्मेदार ठहराते हुए, फ्रायस के समक्ष दिए गए अपने बयान वापस ले लिए। इस मामले एकत्र किए गए साक्ष्य कुल 11,000 पृष्ठों में हैं। इनमें से केवल छह लोग अपने बयानों पर अंत तक बने रहे और अनुष्ठान में जाने की बात स्वीकार की।

साभार : Alamy.com

होंदरिबिया में कार्यवाही शुरू की गई। यह मुख्य रूप से सजीव प्राणियों पर जादू करने की आरोपी महिला डायनों के विरुद्ध था, जो एक बकरे के आकार वाले शैतान के नेतृत्व में अक्लारेस के जैजकिबेल में होने वाली बैठक में जाती थीं। दस्तावेज के अनुसार, एक साक्षी द्वारा दिए गए सबूत से पता चलता है, "यह शैतान वहां सैन सेबेस्टियन और पासिया से आए अपने अनुयायियों को गैस्कन भाषा में संबोधित करता था, और बास्क में इरून और हेंडे से आए लोगों को केवल कुछ शब्द ही कहता था।"[20]

इन विचारणों के मूल में निहित कारण बिलकुल स्पष्ट हैं। बास्क संस्कृति और डेमनोलॉजी (काले जादू की विद्या) में विशेषज्ञता वाले न्यू हैंप्शायर विश्वविद्यालय के एक शोधकर्ता जॉर्ज अब्रिल सांचेज के अनुसार, "इसके मूल में सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का एक समुच्चय है- जैसे कि बास्क क्षेत्र में एक समय में पुरुष काम के लिए महीनों तक घर छोड़कर बाहर रहते थे (जिससे व्यभिचार के दावे को बल मिलता था), लोककथाओं से बने कुछ मजबूत विश्वास और बास्क देश में जिप्सियों का आगमन... इन सब कारणों से बहुत बड़ी संख्या में महिलाओं को डायन कहा जाता था।" उन अभियुक्तों में से कम से कम 2,000 की जाँच की गई और उन्हें प्रताड़ित किया गया और इनमें से 11 की मौत हो गई। छह को तो जलाकर मार डाला गया और पांच को जेल में तब तक प्रताड़ित किया जाता रहा जब तक कि वे मर नहीं गए और इसके बाद भी अधिकारियों ने जेल में मारे गए लोगों के भी प्रतीकात्मक पुतले जलाना सुनिश्चित किया।"[21] ऐसे भी अभिलेख हैं जिनसे पता चलता है कि स्पैनिश इन्क्विजिशन की रुचि प्रोटेस्टेंट, कन्वर्सोज (यहूदियों और मूरों के बपतिस्मा कर चुके वंशज) एवं तस्करी के माध्यम से स्पेन में प्रतिबंधित किताबें लाने वालों को प्रताड़ित करने में अधिक थी। बहुत पहले 1538 में काउंसिल ऑफ इन्क्विजिशन ने न्यायाधीशों को सचेत किया था कि वे डायनों की खोज से संबंधित कुख्यात पुस्तक 'मैलियस मैलिफिकैरम' में जो कुछ पढ़ते हैं, उन

सभी बातों पर विश्वास न करें। मार्च 1610 में, पैंप्लोना के बिशप एंटोनियो वेनेगस द फिगुएरो ने इन्क्विजिशन को एक पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने दावा किया था कि विच हंट वस्तुतः श्झूठ और आत्मभ्रांतिश पर आधारित था और यह भी कि ये मुकदमे शुरू होने से पहले इस क्षेत्र में जादू टोने के बारे में लोगों को बहुत कम ज्ञान था।[22]

1231 में जब इन्क्विजिशन की स्थापना हुई, तो डोमिनिकन लोग ही उसके संगठन और विधर्मियों को दंडित करने के प्रभारी थे। उन्होंने भिक्षुओं को प्रशिक्षित करने के लिए पेरिस, बोलोन, ऑक्सफोर्ड और कोलोन के विश्वविद्यालयों में धर्मशास्त्र के संस्थानों की स्थापना की। विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में, बहुत से लोग अभी भी अपनी पुरोहिताओं के नेतृत्व में प्राचीन देवियों के धर्मों में विश्वास करते थे। इन्क्विजिशन एंड डोमिनिकन लोगों ने अपना पूरा ध्यान उत्तरी इटली के आल्प्स पर केंद्रित किया। पुराने देवी धर्मों के अनुयायियों को नष्ट करने के लिए, 1252 में पोप इनोसेंट चतुर्थ द्वारा प्रताड़ना के उपयोग को आधिकारिक रूप से उचित ठहराया गया था। भिक्षुओं को लोगों से विधर्मी कर्मकांडों के अभ्यास और जादू-टोने की स्वीकारोक्ति करवाने का काम सौंपा गया था।[23,24]

पेंडले विचारणः राजा की बर्बर असहिष्णुता [1612-1634]

विलियम हैरिसन एंसवर्थ के 40 उपन्यासों में से केवल एक ही है जिसकी मुद्रित प्रतियां कभी अनुपलब्ध नहीं रहीं और वह है 'द लंकाशायर विचेज'। विक्टोरियन उपन्यासकार की यह औपन्यासिक कृति वस्तुतः पेंडले विचेज ट्रायल्स का एक कथात्मक विवरण है। पेंडले ट्रायल्स ब्रिटिश इतिहास के डायन विचारण की सबसे कुख्यात घटनाओं में से एक है, जो 17वीं शताब्दी में हुई। पेंडले उत्तर-पश्चिम इंग्लैंड में स्थानीय शासन वाला एक छोटा सा जिला और लंकाशायर काउंटी का नगर है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि लंकाशायर काउंटी को अधिकारियों द्वारा 16वीं शताब्दी के अंत तक एक जंगली और अराजक क्षेत्र माना जाता था। यह क्षेत्र मुख्य रूप से चोरी, हिंसा और यौन शिथिलता के लिए कुख्यात था। यहां के आम लोग सिद्धांतों की समुचित समझ के बिना भी अपने चर्च के प्रति बहुत सम्मान का भाव रखते थे। 1537 में हेनरी अष्टम द्वारा व्हैली में निकटवर्ती सिस्टर्शियन एबे को भंग कर दिया गया था। इस कदम का स्थानीय लोगों ने कड़ा विरोध किया था। एबे के बंद होने, और इसके मठाधीश को दंडित किए जाने के बावजूद, पेंडले के लोग अपनी रोमन कैथोलिक मान्यताओं के प्रति काफी हद तक निष्ठावान बने रहे और 1553 में रानी मैरी के सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद तुरंत ही बड़ी तेजी से कैथोलिक पंथ में वापस लौट आए थे।

1603 में एलिजाबेथ की मृत्यु के बाद स्कॉटिश और इंग्लिश राजशाही के संघ की ओर से जेम्स प्रथम इंग्लैंड और आयरलैंड का राजा बना। वह स्कॉटलैंड सुधार के दौरान हुए कैथोलिक चर्च से स्कॉटलैंड के अलगाव से बहुत प्रभावित था और साथ ही प्रोटेस्टेंट धर्मशास्त्र में भी गहरी रुचि रखता था। उसकी जिज्ञासा जादू-टोने के शास्त्र पर बहुत अधिक थी। 1590 के दशक के प्रारंभ में जेम्स को यह विश्वास हो गया था कि स्कॉटिश चुड़ैलों द्वारा उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। डेनमार्क की यात्रा के बाद ही वह 1590 में नॉर्थ बैरिक की उन डायनों के विरुद्ध हुए विचारण में शामिल हुआ जिनको जेम्स और उसकी पत्नी ऐनी को स्कॉटलैंड ले लाने वाले जहाज पर तूफान भेजने के लिए जादू-टोने के प्रयोग का दोषी ठहराया गया था। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्कॉटलैंड के राजा जेम्स छठवें और इंग्लैंड एवं आयरलैंड के राजा जेम्स प्रथम, दोनों एक ही व्यक्ति के अलग-अलग पदधारक नाम हैं। यह वही है जिसने 1597 में 'डेमनोलॉजी' पुस्तक लिखी थी। उसने अपने अनुयायियों को कड़े निर्देश दिए कि उन्हें जादू-टोना करने वाले के किसी भी व्यक्ति की हर हाल में निंदा करनी है और उस पर मुकदमा चलाना है। जेम्स के इंग्लैंड के सिंहासन पर आरूढ़ होने के एक साल बाद इन मामलों में मृत्युदंड देने का एक कानून बनाया गया, विशेषतः जिन मामलों में यह सिद्ध हो जाए कि जादू के प्रयोग से किसी तरह की क्षति हुई या फिर इसके लिए किसी लाश को खोदकर निकाला गया। हालाँकि जेम्स स्वयं डायन विचारणों में प्रस्तुत किए गए कई साक्ष्यों पर संदेह करते थे, यहां तक कि कुछ अभियुक्त डायनों के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों में उन्होंने व्यक्तिगत रूप से विसंगतियां उजागर कीं। डायनों के खिलाफ एक विचारण वर्ष 1612 में हुआ था। लंकाशायर में प्रत्येक जस्टिस ऑफ द पीस* (जेपी) को उस वर्ष अपने क्षेत्र के सभी विद्रोहियों की सूची तैयार करने का आदेश दिया गया था। उन सभी को जिन्होंने अंग्रेजी चर्च में भाग लेने और सत्संग करने से मना कर दिया था, उन्हें विद्रोही माना गया। इसे उस समय आपराधिक कृत्य घोषित किया गया था।

रोजर नोवेल उस समय पेंडले के जेपी थे। मार्च 1612 में नोवेल ने एक शिकायत की जांच की। यह शिकायत जॉन लॉ के परिवार ने की थी। जॉन लॉ एक फेरीवाला था और उसने जादू टोना के प्रभाव से घायल होने की शिकायत की थी। इस मामले में उसने चार महिलाओं को नामित किया था और इस अपराध के लिए उन पर मुकदमा भी चला। अगर एलिजाबेथ डिवाइस द्वारा मलकिन टॉवर में एक मीटिंग आयोजित न की गई होती तो यहीं इस पूरे प्रकरण का अंत हो जाता। यह बैठक 10 अप्रैल 1612 को गुड फ्राइडे के दिन आयोजित की गई। यहीं से कई और चीजों के साथ-साथ मुकदमों की भी शुरुआत हुई। पेंडले की डायनों पर मुकदमे सामूहिक रूप से चलाए गए। इसमें सैमल्सबरी से लेकर जेन साउथवर्थ, जेनेट ब्रयर्ली और एलेन ब्रयर्ली तक की कथित डायनें शामिल थीं। इन डायनों के विरुद्ध आरोपों में बाल हत्या, नरभक्षण और लोगों और जानवरों को बीमारियां तक शामिल हैं।

उस न्यायालय के लिपिक थॉमस पॉट्स द्वारा 'द वंडरफुल डिस्कवरी ऑफ विचेज इन द लैंकैस्टर काउंटी' नाम से इस कार्यवाही का आधिकारिक प्रकाशन और डायन होने के नाम पर एक साथ इतनी बड़ी संख्या में

*जस्टिस ऑफ द पीस (जेपी) एक स्थानीय सरकारी अधिकारी, जिसकी नियुक्ति एक अधिकार पत्र के जरिये की जाती थी। इसकी नियुक्ति क्षेत्रविशेष में शांति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए की जाती थी। यह कोई न्यायिक अधिकारी नहीं होता थी, लेकिन इसे न्यायिक विधि के दायरे में रहते हुए निर्णय लेने के अधिकार होते थे। कहीं-कहीं क्षेत्रीय जनता द्वारा इसका निर्वाचन भी किया जाता था।

लोगों को मृत्युदंड दिया जाना ख्र इन दो बातों ने पूरे इंग्लैंड के वातावरण को तनावपूर्ण बना दिया। इसके अंतर्गत लैंकेस्टर में नौ और यॉर्क में एक व्यक्ति को इस अपराध के लिए मृत्युदंड दिया गया था। एक अनुमान है कि 15वीं और 18वीं शताब्दी के बीच डायनों के संबंध में इंग्लैंड में चले सभी विचारणों में लगभग 500 लोग दंडित किए गए; और यह इस शृंखला हुए सभी विचारणों का दो प्रतिशत से अधिक।[25]

जर्मनी का व्यूर्जबर्ग शहर यूरोप में युद्ध के तीस वर्षों (थर्टी ईयर्स वॉर)' के दौरान हुए सबसे बड़े सामूहिक मुकदमों और सामूहिक दंड के लिए ही जाना जाता है। शहर में प्राणदंड से दंडित किए गए कुल 219 लोगों में 157 लोगों को जलाकर मारा गया। इनमें पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी शामिल थे। पूरे क्षेत्र में कुल 900 लोग इस तरह जलाकर मारे गए थे। उन पर टोने-टोटके, काला जादू और शैतान के साथ संबंध के लिए मुकदमे चलाए गए। इस तरह वे डायन विरोधी उन्माद के शिकार बने

व्यूर्जबर्गः कैथोलिक पुनरुत्थान के लिए जला दिए गए 900 लोग [1626-1631]

जर्मनी का व्यूर्जबर्ग शहर यूरोप में युद्ध के तीस वर्षों (थर्टी ईयर्स वॉर)* के दौरान हुए सबसे बड़े सामूहिक मुकदमों और सामूहिक दंड के लिए ही जाना जाता है। शहर में प्राणदंड से दंडित किए गए कुल 219 लोगों में 157 लोगों को जलाकर मारा गया। इनमें पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी शामिल थे। पूरे क्षेत्र में कुल 900 लोग इस तरह जलाकर मारे गए थे। उन पर टोने-टोटके, काला जादू और शैतान के साथ संबंध के लिए मुकदमे चलाए गए। इस तरह वे डायन विरोधी उन्माद के शिकार बने। 1620 में जर्मनी पर फिर से कैथोलिकों की विजय के बाद के वर्षों में जूलियस एश्टर वॉन मेस्पेल्ब्रन और उनके भतीजे फिलिप एडोल्फ वॉन एरेनबर्ग ने उत्पीड़न की कई घटनाओं को अंजाम दिया। मेस्पेल्ब्रन व्यूर्जबर्ग के प्रिंस बिशप थे। 1623 से 1631 तक के आठ वर्षों के अपने शासनकाल में, वह 900 व्यक्तियों को जलाने के लिए जिम्मेदार थे, जिसमें उनके अपने भतीजे, उन्नीस कैथोलिक पुजारी और उन सात स्त्रियों के बच्चे भी जिन पर शैतान के साथ संभोग का अभियोग था। आयु, पेशे और लिंग की कोई परवाह किए बिना समाज के सभी वर्गों के लोगों पर अभियोग चले और उन्हें गिरफ्तार किया गया। इनमें कुलीन लोगों से लेकर पार्षद और नगर प्रमुख तक शामिल थे और उन पर आरोप हत्या से लेकर शैतान के अनुगमन और यहाँ तक कि शैतान की धुन में गुनगुनाने तक के लगाए गए। यहाँ तक कि वे किसी शहर या कस्बे से होकर क्यों जा रहे थे, इसका संतोषजनक उत्तर न दे पाने पर के लिए भी लोगों पर अभिचारकर्म विरोधी मुकदमे चलाए गए।[26,27]

टॉर्सेकरः साक्ष्य के लिए बच्चों पर अत्याचार [1674-1677]

स्वीडन में एक ही दिन में 71 लोगों का सिर कलम किया गया और फिर उन्हें जला दिया गया। इनमें 65 महिलाएं और 6 पुरुष थे। यह इस क्षेत्र में महिलाओं की कुल संख्या का लगभग पांचवां हिस्सा था। ये मुकदमे तब शुरू हुए जब टॉर्सेकर पैरिश** के जोहांस वाट्रांजियस ने येटेर्लेनस पैरिश के लॉरेंशियस क्रिस्टोफोर होर्नेस से अपने पैरिश में जादू-टोने जैसी गतिविधियों के निरीक्षण के लिए कहा। येटेर्लेनस और टॉर्सेकर दोनों स्वीडन के एक ही लुथरन चर्च से जुड़े थे और हैर्नासां के पंथप्रांत में आते थे। डायनों की अफवाहें उन दिनों पूरे देश में फैली हुई थीं। अचानक से मचे डायनों के हल्ले से निपटने के लिए बनाए गए एक विशेष आयोग ने होर्नेस को इन मामलों की जांच का आदेश दिया। वह अपने काम के प्रति उत्साही था - जब उसका काम पूरा हुआ, तब तक 71 लोगों का सिर कलम कर उन्हें जलाया जा चुका था।

जाहिर है, टॉर्सेकर का डायन विचारण वस्तुतः डायन विरोधी उन्माद की भारी लहर का ही एक परिणाम था। यह उन्माद 1668 में डेलारना में जर्ट्यूड स्वेंस्डॉटर की शिकायत के कारण मैरेट जॉन्सडॉटर के विरुद्ध चलाए गए मुकदमे के बाद ही स्वीडन में पनपना शुरू हो गया था। एक पुजारी के रूप में होर्नेस को बहुत भयावह माना जाता था। डायनों के विरुद्ध चले इस मुकदमे में अधिकतर साक्षी बच्चे बनाए गए थे। होर्नेस ने कुछ भयानक अमानवीय तरीकों का उपयोग किया, ताकि सब वैसी ही गवाही दें जैसी वह चाहता था। उसने न केवल बच्चों पर कोड़े बरसाए और उन्हें नंगा करके सर्दियों में झीलों के बर्फीले ठंडे पानी में बार-बार डुबो-डुबो कर नहलाया, बल्कि उन्हें एक अवन में बैठाकर उसके नीचे से आग जलाने का नाटक तक किया और इस तरह उन्हें खौलते पानी में उबालने की धमकी दी। इस मुकदमे की जानकारी के लिए सबसे अच्छा स्रोत पुजारी के पोते जोंस होर्नेस द्वारा लिखित एक विवरण है, जो उसने इस घटना के साठ साल बाद 1735 में लिखा था। यह उसकी

*थर्टी ईयर्स वॉर मुख्यतः मध्य यूरोप में 1618 और 1648 के बीच लड़ा गया था। इसके चलते सैनिकों और नागरिकों को मिलाकर कुल 45 से 80 लाख तक लोगों की मृत्यु हो गई थी। इनमें अधिकांश लोग युद्ध के चलते चलते बीमारियों या भुखमरी के शिकार हुए। कहा जाता है कि जर्मनी के कुछ क्षेत्रों में तो 20% आबादी ही साफ हो गई। 1938 तक इसे आमतौर पर जर्मन धार्मिक संघर्ष के रूप में देखा जाता था, लेकिन यह धारणा इतिहासकार सीवी वेजवुड की इस स्थापना के बाद बदल गई कि यह यूरोप में पहले से हैब्सबर्ग-बॉर्बन संघर्ष के साथ-साथ चले आ रहे एक व्यापक संघर्ष का हिस्सा था।

**पैरिश कई ईसाई संप्रदायों में एक भूक्षेत्रीय इकाई है, जो एक पंथप्रांत (डायोसीज) के भीतर एक छोटे क्षेत्र का आशय देती है। एक पैरिश एक पादरी की देखरेख में एक पुरोहित का अधीनस्थ भूक्षेत्र होता है। इसके प्राधिकारी को प्रायः पैरिश प्रीस्ट कहा जाता है। उसे एक या अधिक उपपादरियों की सहायता प्राप्त हो सकती है। इसकी गतिविधियों का संचालन पैरिश चर्च से होता है। ऐतिहासिक रूप से, एक पैरिश अक्सर एक छोटी गढ़ी की तरह एक भौगोलिक क्षेत्र की देखरेख करती है। पैरिश चर्च के साथ इसकी संबद्धता ही सर्वोपरि है।

दादी ब्रिटा रूफिना द्वारा बताए गए विवरण पर आधारित था, जो मुकदमे की चश्मदीद थी और खुद एक अभियुक्त बनते-बनते रह गई थी। जोंस ने उसका एक कथन उद्धृत किया है, "मुझे इनमें से कुछ गवाहों की याद है, जो इन अत्याचारों के चलते अपने जीवन के शेष भाग में किसी न किसी तरह अपंग रहे।"

टॉर्सेकर में कथित डायनों पर मुकदमे की कार्यवाही 15 अक्टूबर 1674 को शुरू की गई थी। बच्चों द्वारा लगभग एक सौ लोगों पर आरोप लगाए गए थे। यद्यपि यह इस देश में कथित डायनों पर चलाए गए मुकदमों की सबसे बड़ी घटना थी, लेकिन मूल दस्तावेज इसे दूसरे अन्य मुकदमों की ही तरह का बताते हैं। केवल अभियुक्तों और पीड़ितों की संख्या की बात छोड़ दें तो बाकी सब कुछ वैसा ही था, जैसा सभी मामलों में होता था।[28,29]

सेलम [अमेरिका]: काश! वे कॉटन की चेतावनी पर ध्यान देते [1692-1697][30]

कहा जाता है कि सामाजिक परिवर्तन की कोई भी लहर, चाहे वह अच्छी हो या बुरी हो सकता है, एक जगह से उठने के बाद वह तब तक ठहरती नहीं जब तक पूरी दुनिया का चक्कर नहीं लगा देती। इसलिए डायनों के सफाए की उन्मादी लहर 14वीं शताब्दी में जब एक बार यूरोप से उठी तो उसने अमेरिका को भी अपनी चपेट में लिए बिना नहीं छोड़ा। हालांकि वहां यह पहुंचा यूरोपीय लोगों के साथ ही। मैसाचुसेट्स के एक गांव सेलम के स्थानीय निवासी इसके चलते अमानवीय यातनाओं के शिकार हुए और अंततः मार डाले गए, केवल इसलिए क्योंकि यह अंग्रेजों का उपनिवेश था। ये मुकदमे 1692 के बसंत में शुरू हुए, जब लड़कियों के एक समूह ने अपने ऊपर शैतान के कब्जे की शिकायत की और इसके लिए कुछ स्थानीय महिलाओं पर जादू-टोना करने का आरोप लगाया। जैसे ही औपनिवेशिक मैसाचुसेट्स में उन्माद की यह लहर फैली, मामलों की सुनवाई के लिए सलेम में एक विशेष न्यायाधिकरण का गठन कर दिया गया। इसमें पहली दोषसिद्ध बताई जाने वाली डायन ब्रिजेट बिशप को उसी साल जून में फांसी दे दी गई। अठारह अन्य लोगों पर सेलम के गैलोज हिल जाते समय बिशप के अनुसरण का आरोप लगा। अगले कुछ महीनों में 150 से अधिक अन्य पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को आरोपी बनाया गया। सौभाग्य से, सितंबर 1692 तक जनमत इन मुकदमों के विरुद्ध हो गया। मैसाचुसेट्स जनरल कोर्ट ने बाद में आरोपी डायनों के विरुद्ध हुए फैसलों अवैधानिक ठहरा दिया और प्रभावित परिवारों को क्षतिपूर्ति का आदेश दिया।

जनवरी 1692 में दो लड़कियां एलिजाबेथ पैरिस और अबीगैल विलियम्स, आयु क्रमशः 9 एवं 11 वर्ष, मर्मांतक पीड़ा से चीख-चीख कर बार-बार बेहोश होने लगीं। एलिजाबेथ सेलम गांव के पुरोहित सैमुअल पैरिस की बेटी थी और अबीगैल उसकी भतीजी। एक स्थानीय चिकित्सक, विलियम ग्रिग्स ने उस पर काले जादू का असर बताया। इसके बाद आसपास की अन्य लड़कियों पर भी इसी तरह के लक्षण दिखाई देने लगे। इनमें एन पुटनम जूनियर, मर्सी लुईस, एलिजाबेथ हबर्ड, मैरी वालकॉट और मैरी वॉरेन शामिल थीं। फरवरी के अंत में, पैरिस की कैरिबियाई गुलाम टिटुबा के साथ-साथ दो अन्य महिलाओं- बेघर भिखारिन सारा गुड और गरीब बुजुर्ग सारा ऑस्बर्न के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी कर दिया गया। इन महिलाओं पर लड़कियों ने टोना-टोटका करने का आरोप लगाया था।

तीनों आरोपी डायनों को मजिस्ट्रेट जोनाथन कॉरविन और जॉन हथॉर्न के सामने लाया गया और इनसे पूछताछ की गई। हालांकि गुड और ऑस्बर्न ने अपने अपराध से इनकार किया, लेकिन टिटुबा ने अपराध स्वीकार कर लिया और यह भी कहा कि प्योरिटंस के खिलाफ शैतान की सेवा में उसके साथ दो अन्य डायनें भी शामिल हुई थीं। जैसे-जैसे यह उन्माद मैसाचुसेट्स के बाकी हिस्सों में फैलता गया, कई अन्य लोगों पर भी आरोप लगे। टिटूबा की तरह, कुछ लोगों ने अपने विरुद्ध डायन होने का आरोप स्वीकार भी कर लिया और इस सिलसिले में कुछ दूसरे लोगों का नाम भी लिया। जल्द ही इन विचारणों ने पूरी स्थानीय न्याय प्रणाली को ही अवाक सा कर दिया। मई 1692 में, मैसाचुसेट्स के नवनियुक्त गवर्नर विलियम फिप्स, ने सफॉक, एसेक्स और मिडिलसेक्स क्षेत्रों में जादू-टोने संबंधी मामलों की सुनवाई के लिए एक विशेष कोर्ट ऑफ ओयर (केवल सुनवाई वाली अदालत) और टर्मिनर (फैसले करने वाली अदालत) की स्थापना का आदेश दिया।

हथॉर्न, सैमुअल सेवल और विलियम स्टॉटन सहित न्यायाधीशों की अध्यक्षता में शुरू हुई अदालत ने 2 जून को ब्रिजेट बिशप के खिलाफ अपना पहला निर्णय सुनाया। आठ दिन बाद उसे सेलम टाउन के गैलोज हिल में फांसी दे दी गई। उसी साल जुलाई में पांच और लोगों को फांसी दे दी गई थी; इसके बाद अगस्त में पांच और सितंबर में आठ और लोगों को। इसके अलावा, सात अन्य आरोपी डायनों की जेल में ही मौत हो गई, जबकि बुजुर्ग गाइल्स कोरी (मार्था के पति) को उस पर पत्थर फेंक-फेंक कर केवल इसलिए मौत के घाट उतार दिया गया, क्योंकि उसने अपने विरुद्ध चलाए जा रहे मुकदमे का जवाब देने से ही इनकार कर दिया था। यद्यपि सम्मानित पुरोहित कॉटन माथर ने भूत-प्रेतों से संबंधित सभी साक्ष्यों के ही संदिग्ध होने की चेतावनी दी थी, लेकिन सेलम में कथित डायनों पर चलाए गए मुकदमों के दौरान उनकी राय को पूरी तरह अनसुना कर दिया गया। बाद में हार्वर्ड कॉलेज (कॉटन के पिता) ने भी बाद में अपने बेटे का साथ दिया और यह माँग की कि जादू-टोने के मामलों में भी साक्ष्यों के लिए वही मानक रखे जाने चाहिए जो किसी अन्य अपराध के लिए होते हैं। उन्होंने यह भी कहा था, कि "एक निर्दोष व्यक्ति को दंडित या निंदित करने से बेहतर है कि दस संदिग्ध डायनें बच जाएं।" इन मुकदमों के प्रति आम जन के समर्थन में क्षरण को देखते हुए गवर्नर फिप्स ने अक्टूबर में अदालतों को भंग कर दिया और यह व्यवस्था दी कि इसके उत्तराधिकारी ने अस्पष्ट साक्ष्यों को स्वीकार नहीं करेंगे। वैसे घटते असर के साथ विचारणों का यह क्रम 1693 की शुरुआत तक जारी रहा, और उस वर्ष मई तक फिप्स ने उन सभी को क्षमा कर दिया जिन पर जादू-टोने का आरोप था। यहाँ तक कि इन आरोपों के चलते जेल में पड़े लोग भी रिहा कर दिए गए।

जनवरी 1697 में, मैसाचुसेट्स जनरल

कोर्ट ने सलेम डायन विचारणों की त्रासदी के लिए उपवास का एक दिन घोषित किया। अदालत ने बाद में इन विचारणों को अवैधानिक ठहराया, और प्रमुख न्यायाधीश सैमुअल सीवेल ने इस प्रक्रिया में अपनी भूमिका के लिए सार्वजनिक रूप से क्षमायाचना की। यह सच है कि इससे जो सामुदायिक क्षति हुई, उसकी भरपाई कभी नहीं की जा सकती। फिर भी, जो लोग इस डायन विरोधी अभियान के शिकार हुए थे उनके सम्मान की बहाली और उनके उत्तराधिकारियों को वित्तीय सहायता के लिए मैसाचुसेट्स उपनिवेश ने 1711 में एक कानून पारित किया।

दो चर्चों के बीच प्रतिस्पर्द्धा

हमने देखा कि कथित डायनों के विरुद्ध चले हर अभियान के मूल में एक विशेष पृष्ठभूमि और कहने के लिए एक कारण था, लेकिन ये सतही कारण तात्कालिक उद्दीपनों से अधिक कुछ नहीं थे। इस पूरे प्रकरण को समग्रता में देखें और इसकी गहराई में उतरें तो हमें वहाँ कई कारण दिखाई देते हैं। कई विद्वानों का स्पष्ट मत है कि खराब मौसम के चलते आय में कमी और कमजोर सरकारें यूरोप में चले कथित डायन विरोधी अभियानों के मूल में महत्त्वपूर्ण वजहें थीं। साथ ही, ये विचारण कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट चर्चों के बीच अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा का एक तरीका भी थे।[31] यहां तक कि चर्चों ने इस संबंध में विज्ञापन भी किए। 'इकोनॉमिक जर्नल' के एक लेख के अनुसार, अर्थशास्त्री पीटर लेसन और जैकब रोस स्पष्ट रूप से कहते हैं, "पांथिक-बाजार की प्रतिस्पर्द्धा जितनी तीव्र होती गई, उसी के कारण विच-ट्रायल गतिविधियां भी उतनी ही तीव्रतर होती गई। पंथ के बाजार और उसकी प्रतिस्पर्द्धा की तुलना में, विच ट्रायल जैसी कार्रवाई के लिए जिम्मेदार बताए जाने वाले दूसरे कारण - मौसम, आय और राज्य क्षमता - कहीं ठहरते ही नहीं।"

इन अर्थशास्त्रियों ने कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं। क्या कारण है कि डायन विरोधी अभियानों ने कुछ देशों में तो कहर ही बरपा दिया, लेकिन कुछ अन्य लोगों को बख्श दिया; और क्या कारण था कि मध्यकाल में जादू-टोने में लोगों के लोकप्रिय विश्वास और उनको दंडित करने की कुछ लोगों की मांग के बावजूद ईसाई अधिकारियों ने लगभग किसी पर भी जादू-टोने के लिए मुकदमा नहीं चलाया? उनका तर्क सरल है: यूरोप में डायन विचारण की घटनाएं वस्तुत: ईसाई जगत के लिए संघर्ष वाले क्षेत्रों में धार्मिक बाजार में हिस्सेदारी के लिए कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट चर्चों के बीच अमूल्य प्रतियोगिता को दर्शाती हैं। जादू-टोने में लोकप्रिय विश्वास का लाभ उठाकर, डायन-अभियोजकों ने शैतान की बुराई की सांसारिक अभिव्यक्तियों से नागरिकों की रक्षा के लिए अपने-अपने मतों की प्रतिबद्धताओं और शक्ति का विज्ञापन किया। बिलकुल वैसे ही जैसे समकालीन रिपब्लिकन और डेमोक्रेट उम्मीदवार चुनावों के दौरान राजनीतिक लड़ाई के मैदानों में अपने अभियानों की गतिविधियों का ध्यान उन क्षेत्रों पर केंद्रित करते हैं जहाँ मतदाताओं की निष्ठा ढुलमुल होती है, ऐतिहासिक कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट अधिकारियों ने सुधार और प्रति-सुधार के दौर में अपना ध्यान अप्रतिबद्ध ईसाइयों की निष्ठा को अपनी ओर आकर्षित करने पर केंद्रित किया।[32] इन दोनों चर्चों ने अपने-अपने क्षेत्रों में बार-बार यह प्रचार किया कि यदि कोई शैतान से बचना चाहता है तो उसके लिए सबसे अच्छे चर्च वही थे। लोकविश्वास के अनुसार डायनें वस्तुत: शैतान का ही काम कर रही थीं। इसलिए क्षेत्रों को उनसे मुक्त कराना एक तरह से लोगों को शैतान से बचाने का उपाय था।[33]

बहुदैविकों के खिलाफ एक निर्मम कदम

विद्वानों का एक बड़ा वर्ग यह मानता है कि डायन विचारण ईसाइयत के बहुत पहले से यूरोप में रहे कुछ ऐसे बहुदैविक पंथों को दबाने का एक षड्यंत्र था, जो यूरोप के ईसाईकरण की लहर से बच गए थे। जैसा कि इस सिद्धांत के समर्थक बताते हैं, विच कल्ट (जादू-टोने करने वालों का पंथ) एक सींग वाले एक देवता की पूजा पर केंद्रित है। उन्हें प्रजनन क्षमता, पाताललोक, शिकार की क्रिया और किए गए शिकार का देवता माना जाता था। ईसाई उत्पीड़कों ने उसे शैतान कहते थे। उसके अनुयायी रात के समय होने वाले अनुष्ठानों में भाग लेते थे।

इस मत का प्रतिपादन दो जर्मन विद्वानों कार्ल अर्न्स्ट जार्क और फ्रांज जोसेफ मोन ने उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में किया था। इनमें जार्क पहले आधुनिक विद्वान हैं जिन्होंने इस मत को तथ्यों और तर्कों से विस्तार दिया कि कथित डायनों के विरुद्ध अभियान वस्तुत: एक गैर-ईसाई समुदाय का सफाया करने के लिए किया गया सुनियोजित षड्यंत्र था। जार्क बर्लिन विश्वविद्यालय में आपराधिक विधि के प्रोफेसर थे। 1828 में उन्होंने विधि की ही एक पत्रिका में प्रकाशन के लिए सत्रहवीं सदी के जर्मन डायन विचारण के अभिलेखों का संपादन किया और उसे में अपनी टिप्पणीयां दर्ज करते हुए यह सिद्धांत प्रतिपादित कर डाला। जार्क ने सुझाव दिया कि जादू-टोने वाला पंथ वास्तव में ईसाइयत से पहले का एक पंथ था, जो ईसाईकरण की प्रबल लहर के बावजूद ग्रामीण जनसमुदाय के बीच बच गया था।[34] फ्रांसीसी इतिहासकार जूल्स मिशेलेट, अमेरिकी नारीवादी मटिल्डा जोसलिन गेज और अमेरिकी लोकगाथाविद चार्ल्स लेलैंड ने भी अपने समय में इसी मत को स्वीकार किया था। इस परिकल्पना को सर्वाधिक लोकप्रियता तब मिली जब एक ब्रिटिश मिस्रविद मार्गरेट मरे ने इसे स्वीकार करते हुए अपने ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने तथ्य को स्वीकार करने के बाद इस सिद्धांत पर पहली बार अपना भाष्य अपनी कृति 'द विचकल्ट इन वेस्टर्न यूरोप' (1921) में प्रस्तुत किया। इसके बाद 1931 में आई अपनी एक और कृति 'द गॉड ऑफ द विचेज' और फिर 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में भी अपना योगदान करते हुए इसी सिद्धांत को फिर से प्रतिपादित किया। यद्यपि बीसवीं शताब्दी की शुरुआत और मध्य में मरे द्वारा पुन: प्रतिपादित यह सिद्धांत शिक्षाविदों और आम जनता के बीच बहुत लोकप्रिय साबित हुआ, लेकिन पूर्व आधुनिक काल में हुई डायन विचारण की घटनाओं के कुछ विशेषज्ञ इसे स्वीकार न करते हुए नकारा भी है।[35,36]

नारीवादी व्याख्याएं

इसके पहले कि हम विच ट्रायल्य या विच हंट के इस नारीवादी भाष्य पर चर्चा करें, बेहतर होगा कि 'विच' शब्द का अर्थ समझ

लें। इसके लिए ऑनलाइन स्रोतों में सबसे लोकप्रिय dictionary.com इस शब्द[37] के तीन अर्थ बताता है;

1) एक व्यक्ति, अब विशेष रूप से एक स्त्री, जो या तो जादू-टोने अथवा अभिचार कर्म का अभ्यास करती है या उसके बारे में ऐसा माना जाता है कि वह यह करती है; एक जादूगरनी।

2) एक महिला जिसे बुरी या दुष्ट जादुई शक्तियाँ प्राप्त हैं।

3) एक बदसूरत या अधम बूढ़ी औरत।

एक अन्य स्रोत मेरियम वेब्स्टर[38] इस शब्द के चार अर्थ बताता है

(कथा साहित्य एवं लोक परंपराओं में)

क: एक व्यक्ति (विशेष रूप से एक महिला) जिसे कुछ दुष्ट पराप्राकृतिक शक्तियां प्राप्त हैं

ख: एक महिला जिसके बारे में यह विश्वास हो कि वह किसी शैतान की सहायता से काले जादू का अभ्यास करती है या एक जादूगरनी

i) जादू-टोने का अभ्यास करने वाली, विशेषत: एक नव-बहुदेववादी परंपरा या पंथ से संबद्ध

ii) एक मतलबी या बदसूरत बूढ़ी औरत

iii) एक आकर्षक या आकर्षक लड़की या महिला

वर्तमान बोलचाल की अंग्रेजी में 'विच' शब्द का प्रयोग आम तौर पर महिलाओं के लिए ही होता है। एक आकर्षक युवती के लिए इस शब्द का व्यंजनामूलक उपयोग 18वीं शताब्दी में शुरू हुआ, लेकिन एक वृद्ध स्त्री के संदर्भ इस शब्द के प्रयोग को अपमानजनक मानने की धारणा 15वीं शताब्दी से ही चली आ रही है। हालांकि उत्तर मध्यकाल तक इस शब्द का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए होता था।[39] ऐसा क्यों और कैसे हो गया कि यह शब्द केवल स्त्रियों के लिए ही रूढ़ और सीमित हो गया। इसकी जड़ें डायन विरोधी भयावह अभियान (ग्रेट विच हंट) की लंबी खिंची अवधि में सन्निहित हैं, जिसकी 80% शिकार स्त्रियां ही हुई। इस तथ्य को जानने के बाद हत्याओं की इस शृंखला के नारीवादी भाष्य से कोई कैसे इनकार कर सकता है, वह भी तब जबकि नारीवादी आंदोलन की पहली ही लहर की एक लेखिका इस मुद्दे को इस रूप में उठा रही हो!

साभार : https://medium.com/@mommabrown/the-great-american-witch-hunt-7bb42a98803d

अमेरिकी लेखिका मल्टिडा जोसलिन गेज उन शुरुआती लोगों में से हैं, जिन्होंने डायन विचारणों के प्रति यह दृष्टिकोण अपनाया। गेज महिलाओं के मताधिकार के लिए हुए नारीवादी आंदोलन की पहली लहर में ही शामिल थीं। 1893 में पहली बार प्रकाशित अपनी कृति 'वुमन, चर्च एंड स्टेट' में उन्होंने अपनी इस स्थापना के पक्ष में तर्क दिए हैं कि पूर्व आधुनिक काल में इसके अंतर्गत दंडित स्त्रियां एक महान देवी के प्रति आस्था रखने वाले एक प्राचीन बहुदैविक पंथ की पुजारिनें थीं। उसी पुस्तक में यह बात भी सामने आई है कि उन दिनों जादू-टोने को एक ऐसा पाप माना जाता था जो केवल महिलाओं सीमित था। द विच हैमर ने तो बाकायदा यह घोषणा कर दी कि फेमिना शब्द का आशय ही ऐसे व्यक्ति से है जो अपनी आस्था से अपेक्षाएं रखता हो।[40] अमेरिका में नारीवादी आंदोलन की दूसरी लहर के दौरान दो कार्यकर्ताओं बारबरा एरेनरिच और डायर्डे इंग्लिश ने एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें उन्होंने दावा किया कि दंडित स्त्रियां वस्तुत: उन समुदायों की पारंपरिक चिकित्सक और दाइयां थीं, जिन्हें पुरुष वर्चस्व वाले चिकित्सा प्रतिष्ठान जान-बूझकर खत्म कर रहे थे।

एक प्रतिष्ठित अमेरिकी इतिहासकार एडवर्ड बेवर का मत है कि इसमें अभियोगियों एवं अभियुक्तों दोनों ही में स्त्रियों की संख्या अधिक होने का मुख्य कारण उस समय समाज में बड़े पैमाने पर प्रचलित स्त्रीद्वेषी कुप्रथा हो सकती है। उन्होंने इस तथ्य को प्रकट किया कि किसी समाज के पितृसत्तात्मक होने का अभिप्राय केवल पुरुषों सीमित नहीं है। पितृसत्तात्मक और स्त्रीद्वेषी मूल्य पूरे समाज, यहाँ तक कि स्त्रियों को भी प्रभावित कर सकते हैं। पूर्व आधुनिक काल में यूरोप में लिंग केंद्रित मान्यताएं और लोगों से उनके अनुपालन की अपेक्षाएं बहुत कठोर थीं और जो लोग उन अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरते थे, उन्हें दुष्परिणाम भुगतने पड़ते थे। इसके अंतर्गत बड़ी संख्या में स्त्रियों के ही आरोपित होने के मूल में स्त्रियों से संबंधित सामाजिक अपेक्षाओं और उस समय डायनों की पहले से ही बनी हुई छवि दोनों ही का योगदान रहा हो सकता है। यहां तक कि जो महिलाएं उस समय प्रचलित अपनी लैंगिक भूमिका की सीमाओं को नहीं लांघती थीं, वे भी इस भय में जीती रही होंगी कि कहीं कोई उन पर डायन होने का आरोप न लगा दे और ऐसी स्थिति में अपने को बचाने के इरादे से वे पहले ही दूसरों पर आरोप लगा देती रही होंगी।[41]

एक इतालवी अमेरिकी विद्वान सिल्विया फेडरेसी भी डायन विरोधी अभियान पर

प्रखर नारीवादी अंतर्दृष्टि व्यक्त करती हैं। वह पूंजीवाद को वस्तुत: इन्क्विजिशन की आत्मा से ही उद्भूत मानती हैं। अपने मत के पक्ष में उन्होंने बहुत ही शानदार बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की है। फेडरेसी डायन का वर्णन "प्रजा में मौजूद स्त्रियों की एक ऐसी दुनिया के रूप में करती हैं जिसे पूंजीवाद मिटा देना चाहता था। वह कुछ भी हो सकती है - विधर्मी, चिकित्सक, अवज्ञाकारी पत्नी, अकेले रहने की हिम्मत रखने वाली महिला, एक ओबेहा स्त्री जिस पर मालिक के भोजन में विष मिलाने और गुलामों को विद्रोह के लिए भड़काने का आरोप हो... आदि कुछ भी।"[42] सन 2004 में प्रकाशित उनकी कृति 'कैलिबन ऐंड द विच: विमेन, द बॉडी एंड प्रिमिटिव एक्यूमुलेशन', पूंजीवाद के संक्रमण काल का अनुशीलन करती है। इस कृति ने इस बात के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किए कि यह प्रक्रिया ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एनक्लोजर एक्ट* के समानांतर चली है। इस एक्ट ने ही यूरोपीय समाज की अर्थव्यवस्था के पूंजीवादी की ओर संक्रमण के दौर में ही कॉमन लैंड ** को स्त्रियों की पहुंच से दूर करके महिलाओं को आर्थिक स्वायत्तता से वंचित कर दिया। उन्होंने उस समय विकसित हो रहे श्रम के लिंग आधारित विभाजन पर भी टिप्पणी की और यह भी स्पष्ट किया कि किस तरह यह स्त्रियों के लिए तनाव का कारण बन रहा था।[43]

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों और विश्लेषणों के माध्यम से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डायन विरोधी अभियान के शिकार लोगों में 80% हिस्सा केवल महिलाओं का होना एक संयोगमात्र तो नहीं था। इस वस्तुस्थिति के पीछे कुछ ऐतिहासिक कारण थे, जो समाज को इस मुकाम तक ले आए। इसमें कोई शक नहीं कि पूर्व आधुनिक काल तक पश्चिमी समाज स्त्रियों के प्रति अत्यंत दुराग्रही था। धर्म से लेकर कानून तक कुछ भी स्त्रियों के पक्ष में नहीं था। अपने पिता या पति के न होने पर उन्हें अपने पर हो रहे किसी भी अत्याचार के विरुद्ध अकेले आवाज उठाने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे कई कारण थे जो महिलाओं को ही महिलाओं के खिलाफ खड़ी होने के लिए विवश करते थे, जैसा कि हम

विभिन्न देशों में डायन विचारण गतिविधियां, 1300-1850

देश	जनसंख्या	कुल व्यक्ति जिन पर मुकदमे चले	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रति दस लाख में व्यक्ति	मृतक	कुल का प्रतिशत	प्रति दस लाख में मृत्यु
जर्मनी	12,000,000	16,474	38.1	1373	6887	42.2	574
स्विट्जरलैंड	1,000,000	9,796	22.7	9,796	5,691	34.8	5,691
फ्रांस	18,500,000	4,159	9.6	225	1,663	10.2	90
स्कॉटलैंड	700,000	3,563	8.2	5,090	190	1.2	271
स्पेन	8,500,000	1,949	4.5	229	1	0	0
हंगरी	1,250,000	1,644	3.81	315	474	2.9	379
इंग्लैंड	3,667,750	1,197	2.8	326	367	2.2	100
बेल्जियम	1,383,000	887	2.1	641	378	2.3	273
नॉर्वे	500,000	863	2	1726	280	1.7	560
फिनलैंड	200,000	710	1.6	3550	115	0.7	575
इटली	12,000,000	604	1.4	50	60	0.4	5
नीदरलैंड्स	1,500,000	369	0.9	246	46	0.3	31
स्वीडेन	1,000,000	353	0.8	353	0	0	0
लक्जमबर्ग	117,000	219	0.5	1,872	99	0.6	846
एस्टोनिया	125,000	205	0.5	1,640	65	0.4	520
डेनमार्क	700,000	90	0.2	129	0	0	0
ऑस्ट्रिया	2,500,000	83	0.2	33	13	0.1	5
आयरलैंड	1,043,750	52	0.1	50	1	0	1
पोलैंड	5,000,000	12	0	2	3	0	1
नॉर्दर्न आयरलैंड	206,250	9	0	44	0	0	0
चेक रिपब्लिक	2,776,500	2	0	1	0	0	0

नोट्स: जनसंख्या का यह आँकड़ा सन 1600 का है (मैकवेडी और जोन्स, 1978)। एस्टोनिया की जनसंख्या 1630 की है (पल्ली, 1980)। इंग्लैंड और वेल्स के लिए आबादी (अलग-अलग) की गणना उनकी कुल संयुक्त जनसंख्या के आंकड़े का उपयोग करके उनके संयुक्त भूक्षेत्र में अलग-अलग हिस्सेदारी के आधार पर तुलनात्मक रूप से करते हुए निकाली गई है। आयरलैंड और उत्तरी आयरलैंड, बेल्जियम और लक्जमबर्ग तथा चेक गणराज्य और स्लोवाकिया के लिए सारणियाँ समरूप बनाई गई हैं।

*एनक्लोजर एक्ट वस्तुत: कृषि की खुले खेत प्रणाली के अनिवार्य उन्मूलन के लिए लाया गया था। यद्यपि इंग्लैंड सदियों से यही लोगों के खेती करने का तरीका था। किसानों और जमींदारों के पास उपलब्ध संपूर्ण कॉमन लैंड और वेस्ट लैंड (साझा एवं बंजर भूमि) का स्वामित्व उनसे छीन लिया गया था। इस तरह जमीन पर उनका कोई भी अधिकार नहीं रह गया था।

* * कॉमन लैंड सामूहिक रूप से कई व्यक्तियों, या एक व्यक्ति के स्वामित्व वाली भूमि होती थी, लेकिन उस पर अन्य लोगों के भी कुछ पारंपरिक अधिकार माने जाते थे। जैसे कि उस पर सबको अपने पशुओं को चराने, लकड़ी बटोरने, ईंधन के लिए जलावन काटने आदि की अनुमति होती थी।

डायन विरोधी अभियान में ही देखते हैं; जब आरोपित महिलाओं ने अन्य महिलाओं को अभिचारकर्म में अपने सहयोगी के रूप में नामित किया और इस तरह कई अन्य महिलाओं को समाज की नजर में अपराधी बनाया। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हालांकि इस घटना के तहत जिन लोगों पर मुकदमे चलाए गए और जिन्हें क्रूरतम तरीकों से दंडित किया गया, उनमें से अधिकतर ऐसे लोग थे जिनकी आस्था शासकों से भिन्न थी और इनमें कुल मिलाकर बहुदैववादियों की संख्या सबसे अधिक थी। इस प्रथा के तहत दंडित लोगों में सबसे अधिक संख्या बहुदैविकों की ही थी। क्या हम इससे यह इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि यह बहुदैविक स्त्रियों के विरुद्ध एक अभियान था? यही कारण था कि विचहंट ने यूरोप में नारीवाद के साथ-साथ अनीश्वरवादी आंदोलनों के लिए भी वातावरण तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। Ⓜ

संदर्भ :

1. शॉ, जॉर्ज बर्नार्ड (1952), *सेंट जोन*, पेंग्विन बुक्स, हार्मड्सवर्थ, मिडलसेक्स, पृष्ठ 165-166
2. वही, पृ. 7-8
3. https://qz.com/1183992/why-europe-was-overrun-by-witch-hunts-in-early-modern-history/
4. https://www.nytimes.com/1997/04/05/world/in-modern-russia-a-fatal-medieval-witch-hunt.html
5. https://www.history.com/news/how-medieval-churches-used-witch-hunts-to-gain-more-followers
6. https://www.peterleeson.com/Witch_Trials.pdf
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Witch_trials_in_the_early_modern_period#:~:text=Prosecutions%20for%20the%20crime%20of,over%20the%20age%20of%2040.
8. https://qz.com/1183992/why-europe-was-overrun-by-witch-hunts-in-early-modern-history/
9. https://en.wikipedia.org/wiki/Witch_trials_in_the_early_modern_period#:~:text=Prosecutions%20for%20the%20crime%20of,over%20the%20age%20of%2040.
10. https://historycollection.com/10-little-known-witch-trials-from-history/3/
11. https://qz.com/1183992/why-europe-was-overrun-by-witch-hunts-in-early-modern-history/
12. https://en.wikipedia.org/wiki/Trier_witch_trials
13. https://www.history.com/news/beyond-salem-6-lesser-known-witch-trials
14. https://en.wikipedia.org/wiki/North_Berwick_witch_trials
15. स्माउट, थॉमस क्रिस्टोफर (1969), *अ हिस्ट्री ऑफ द स्कॉटिश पीपल 1560-1830*, विलियम कोलिंस संस एंड कंपनी लिमिटेड, पृष्ठ 184-192
16. https://en.wikipedia.org/wiki/North_Berwick_witch_trials
17. https://en.wikipedia.org/wiki/Fulda_witch_trials
18. https://en.wikipedia.org/wiki/Balthasar_von_Dernbach
19. https://www.history.com/news/beyond-salem-6-lesser-known-witch-trials
20. https://en.wikipedia.org/wiki/Basque_witch_trials
21. https://www.smithsonianmag.com/travel/visit-site-biggest-witch-trial-history-180959946/#:~:text=Fueled%20by%20suspicion%20from%20the,called%20witches%20in%20unprecedented%20numbers.
22. https://en.wikipedia.org/wiki/Basque_witch_trials
23. http://www.worldfuturefund.com/wffmaster/Reading/Religion/inquisition.htm
24. https://web.archive.org/web/20070511001106/http://dametzdesign.com/logrono.html
25. https://en.wikipedia.org/wiki/Pendle_witches
26. https://en.wikipedia.org/wiki/W%C3%BCrzburg_witch_trial
27. https://witchcraftandwitches.com/witchcraft/trials-wurzburg/
28. https://en.wikipedia.org/wiki/Tors%C3%A5ker_witch_trials
29. https://www.history.com/news/beyond-salem-6-lesser-known-witch-trials
30. https://www.history.com/topics/colonial-america/salem-witch-trials
31. https://www.history.com/news/how-medieval-churches-used-witch-hunts-to-gain-more-followers
32. लीसन पीटर टी. एवं रस जैकब डब्ल्यू (2018), *विच ट्रायल्स (द एकोनॉमिक जर्नल* के अगस्त 2018 अंक में एक लेख, प्रकाशनः जॉन विली एंड संस, यूके एवं यूएसए,' 2017 रॉयल एकोनॉमिक सोसायटी), पृष्ठ 2066-2067
33. वही, पृ. 2068-2069
34. कोन, नॉर्मन (1975), *योरोप्स इनर डेमंसः एन एन्क्वायरी इंस्पायर्ड बाय द ग्रेट विच हंट*, ससेक्स एंड लंदनः ससेक्स यूनिवर्सिटी प्रेस एंड हैनिमन एजूकेशनल बुक्स
35. https://www.history.com/news/how-medieval-churches-used-witch-hunts-to-gain-more-followers
36. https://en.wikipedia.org/wiki/Witch-cult_hypothesis
37. https://www.dictionary.com/browse/witch#:~:text=a%20person%2C%20now%20especially%20a,used%20to%20own%20this%20building.
38. https://www.merriam-webster.com/dictionary/witch
39. https://en.wikipedia.org/wiki/Witch_(word)#:~:text=In%20current%20colloquial%20English%20%22witch, attested%20since%20the%2015th%20century.
40. गेज, मल्टिडा जोस्लिन. *वुमन, चर्च एंड स्टेट* [http://www.public-library.uk/ebooks/107/39.pdf] पृ.68
41. https://en.wikipedia.org/wiki/Feminist_interpretations_of_the_Early_Modern_witch_trials
42. https://www.e-flux.com/journal/100/268602/what-lenin-teaches-us-about-witchcraft/
43. https://en.wikipedia.org/wiki/Feminist_interpretations_of_the_Early_Modern_witch_trials

कुमुद शर्मा

पत्रकारिता के पन्नों पर महिलाएं

स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारतीय समाज मध्यकालीन मानसिकता से पूरी तरह उबर नहीं सका था। इसके बावजूद इस आंदोलन में स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस परिवर्तन में बहुत महत्वपूर्ण योगदान पत्रकारिता का रहा है। इसके बाद यह स्थिति लगातार बेहतर हुई है। यह स्थिति और बेहतर होती अगर मीडिया खुद अपना रास्ता न भटक गया होता।
आधुनिक भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति, उसमें मीडिया की भूमिका और उसके भटकाव पर एक निर्भीक दृष्टि

भारतीय प्रेस के उदय और विकास ने भी नई सामाजिक परिकल्पना के लिए आधार तैयार किया। आजादी से पहले की भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्र और राष्ट्रीयता के साथ-साथ महिलाओं से संबंधित प्रश्नों को संवेदनशीलता के साथ उठाया गया। राष्ट्रीय जागरण ने स्त्री को एक नया स्पेस दिया। उसके लिए संभावनाओं के द्वार खोले। पुनर्जागरणकालीन पत्र-पत्रिकाएँ स्त्री संबंधी बहसों से भरी पड़ी हैं। स्त्री स्वातंत्र्य की चर्चा उपहास का विषय नहीं बल्कि बहस का विषय बनी। पत्रकारिता के जरिये आवाज उठाई गई कि केवल स्त्री की दृष्टि से नहीं, वरन् सामूहिक विकास की दृष्टि से भी स्त्री स्वातंत्र्य जरूरी है।

अधिकांश शोधों में यह तथ्य उजागर हुआ है कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारतीय स्त्रियों का छवि निर्माण आदर्श मातृत्व और आदर्श पत्नीत्व के फ्रेम में हुआ। मातृत्व का छवि विस्तार राष्ट्रीय चेतना के संवाहक की भूमिका में विस्तारित हुआ। गांधीजी के आवाहन पर स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता रही। संघर्षमयी, बलिदानमयी राष्ट्रीय चेतना के युग में भारतीय नारी का बलिदानमयी रूप सराहा गया।

हमें इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि जिस भारतीय पत्रकारिता ने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान स्वतंत्रता को एक बड़े मूल्य के रुप में स्थापित कर दिया था, उसने स्त्री के जीवन को क्या दिशा दी। उसके जीवन ने किस तरह अंगड़ाई ली। यह तथ्य बहुत स्पष्ट है कि स्वाधीनता आंदोलन की संघर्षयात्रा में स्वराज्य प्राप्ति और स्त्री की पराधीनता को दूर करने के प्रयत्न एक साथ चले। विविध स्तरों पर पनपने वाले स्वत्व और स्वाधीनता के विभिन्न परिपार्श्वों ने स्त्री के जीवन की जटिलताओं की जांच का आग्रह भी किया। स्त्री की स्वाधीनता के प्रश्न भी राजनीतिक प्रश्नों की साझेदारी में खुलते चले गए। राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री शक्ति का सामूहिक आवाहन किया गया, “स्त्री को समाजिक संघर्ष की राजनीतिक प्रक्रिया में स्वाधीनता संग्राम ही खींच पाया। वरना भारतीय सभ्यता के इतिहास में इससे पहले स्रियों ने सामाजिक संघर्ष में कभी सामूहिक तौर पर हिस्सा नहीं लिया था।”[1]

आजादी से पूर्व की हिंदी पत्रकारिता में जिन मुद्दों को गंभीरता से उठाकर बहस के लिए मंच तैयार किया गया उनमें स्त्री शिक्षा, सती प्रथा, स्त्री स्वातंत्र्य, विधवा विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा तथा वेश्यावृत्ति उन्मूलन की समस्याएँ प्रमुख हैं। हिंदी प्रदीप, सार सुधानिधि, माधुरी, प्रभा, मर्यादा, बाला बोधिनी, सुधा, विशाल भारत, चांद आदि पत्रिकाओं में स्त्री समस्याओं को गंभीरता के साथ उठाया जाता रहा। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान नारी से जुड़े विविध पहलुओं के साथ ‘महिला उत्थान’ और ‘समान अधिकार’ इन दो धाराओं में पत्रकारिता के विस्तृत फलक पर नारी के संबंध में विषय सामग्री सामने आई। राष्ट्रीय आंदोलन में ‘स्त्री शिक्षा’ सामाजिक आंदोलन का महत्वपूर्ण मुद्दा था। स्त्री शिक्षा की वकालत करते हुए स्त्री के सर्वांगीण विकास के लिए इसे जरूरी माना गया। राष्ट्रीय प्रगति और संस्कृति के उत्थान के लिए स्त्रियों को शिक्षित किया जाना चाहिए यह विचार जोर पकड़ने लगा। भारतेंदु ने ‘बाला बोधिनी’ स्त्री शिक्षा के लिए निकाली। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी पत्रिका ‘कविवचन सुधा’ के मुखपृष्ठ पर पत्रिका के सिद्धांत वाक्य में ‘नर नारी सम होहिं’ का आदर्श परोसा। ‘कवि वचन सुधा’ में उन्होंने स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए लिखा- “यह बात तो सिद्ध है कि

पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि वहां की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी, क्योंकि यदि पुरुष विद्वान और पंडित होंगे और उनकी स्त्रियां मूर्ख होंगी तो उनमें आपस में कभी भी स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।"[2]

स्त्रियों की शिक्षा कैसी हो यह बहस का विषय बना। इसका जिक्र 'विश्वमित्र' में प्रकाशित रघुनाथ प्रसाद के लेख 'स्त्रियों की शिक्षा कैसी हो' में मिलता है, "पिछले दिनों प्रेस में एक विवाद छिड़ा था। सवाल किया गया था कि क्या ऐलजेब्रा और ज्योमेट्री अच्छी पत्नियाँ बनाती हैं? किसी मनचले आलोचक ने यह प्रश्न करके इस बात का उत्तर दिया था कि क्या ऐलजेब्रा और ज्योमेट्री से अच्छे पति बनते हैं? इसमें संदेह नहीं कि जो शिक्षा पद्धति गृहस्थी संचालन की कला और ज्ञान के बलिदान पर विभिन्न कलाओं और विज्ञान में दक्षता प्रदान करती हो वह त्रुटिपूर्ण है।"[3]

सुधा पत्रिका की फाइलों में देश की पराधीनता के साथ साथ स्त्री की पराधीनता की त्रासद स्थितियों के चित्र खींचते स्त्री की पराधीनता को दूर करने के लिए युवकों का आवाहन किया गया, "आज भारत को स्वाधीन बनाने के निमित्त, स्वराज्य लाभ करने के लिए, भारत के प्रत्येक कोने में गंभीर आंदोलन हो रहा है। अनेक जगह खून-खराबा हो रहा है। बड़े-बड़े नेतागण तन, मन और धन से इन प्रश्नों को हल करने में व्यस्त हैं, किंतु उन अभागिनी माता, भगिनी, स्त्री व कन्याओं की, जिन्हें निर्दयता से पराधीनता की बेड़ी पहनाकर उन पर अमानुषिक अत्याचार किया जाता है, कोई सुध नहीं लेता। अतएव हे भारतीय युवकगण! भारतीय स्त्रियों के दु:ख विमोचनार्थ अग्रसर हो। इस महान कार्य का भार तुम्हीं वहन कर सकते हो। बिना तुम्हारी सहायता के भारतीय स्त्रियों की पराधीनता दूर नहीं हो सकती।"[4]

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हमारे स्वाधीनता सेनानियों को, चिंतकों को, संपादकों को इस बात का अहसास था कि स्त्री शक्ति का आवाहन किए बिना यह युद्ध नहीं जीता जा सकता। इसलिए नवजागरण के पहलुओं में स्त्री के जीवन से जुड़े विभिन्न पहलू समाहित होते चले गए। स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में मुक्ति की चाभी स्त्री के हाथों में मानते हुए 'सुधा' पत्रिका की संपादकीय टिप्पणी के अंतर्गत निराला ने लिखा कि "मुक्ति का यथार्थ सूत्र स्त्रियों के ही हाथ में है। लक्ष्मी तथा सरस्वतियों को कैद करना भी अपने ही अंधकार के दीपक को गुल कर देना है। राष्ट्र की स्वतंत्र भावना कैसे पैदा हो? घर की देवियां आंसू बहाएं और आप बहादुर हो जाएं? .... स्त्रियों का शव लेकर विजयी होना। असंभव है।. ..अतएव हमें स्त्रियों की बाह्य स्वतंत्रता, शिक्षा-दीक्षा आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्यथा अब के पुरुषों की तरह उनके बच्चे भी गुलामी की अँधेरी रात में उड़ने वाले गीदड़ होंगे स्वाधीनता के प्रकाश में दहाड़ने वाले शेर नहीं हो सकते और हमारी मातृभाषा का मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता।"[5]

यह बात गौर करने लायक है कि शिक्षित स्त्री के विवेक, स्त्री के स्वावलंबन को राष्ट्रीयता में किस तरह पर्यवसित करने के लिए किस तरह का दायित्वबोध जगाया गया। स्त्री शिक्षा की वकालत करते हुए स्त्री शिक्षा को, स्त्री के स्वावलंबन और राष्ट्र के प्रति उसके दायित्व से कैसे जोड़ा गया। स्त्री शक्ति की पहचान बनाने का यह प्रयास स्त्री के स्वविवेक स्वत्व की पहचान के साथ-साथ राष्ट्र के विकास और संवर्धन से जुड़ जाता है, "विद्या पढ़ने से तुम राजहंसी बन जाओगी। वह दूध और जल को अलग-अलग कर देती है। तुम में भले-बुरे का विवेक आ जाएगा। ...विद्या पढकर तुम समाज को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाओगी। तुम्हारा पढ़ना तभी सार्थक होगा जब तुम परिवार और समाज के हित साधन में अपना सारा समय लगा दोगी। परिवारों के सुधार से समाज का सुधार होगा समाज के सुधार से देश का उद्धार।...भीतरी सुधार के बिना बाहरी सुधार न टिकाऊ होगा और न ही सफल होगा।... विद्या पढ़ने का तुम्हारा लाभ यह होगा कि तुम स्वावलंबी बन जाओगी। तुम्हारी पराधीनता दूर हो जाएगी। तुमको किसी का मुँह नहीं जोहना पड़ेगा... विद्या पढ़कर तुम सच्ची भारतीय बनो। ...भारत की राष्ट्रीयता बचाने का दायित्व तुम्हारे ही ऊपर है।"[6]

महिला पत्रिकाओं की बात की जाए तो कुछ पत्रिकाएं समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है, उनके क्या अधिकार हैं, स्त्रियों की कठिनाइयां क्या हैं, उनके कर्त्तव्य क्या हैं... आदि; इन प्रश्नों के इर्द-गिर्द अपनी विषय-सामग्री जुटाती रहीं। अधिकांश पत्रिकाएं स्त्रियों को उनके कर्तव्यबोध और दायित्वबोध जगाने के लिए पाठशाला चलाने का काम करती रहीं। उन्हें 'स्त्रीत्व की उच्चतम स्थिति' तक पहुंचने के लिए कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया गया। इन पाठों में मातृत्व, पत्नीत्व और सुगृहिणी की शिक्षा के अध्याय समाहित थे। स्वाधीनता आंदोलन की अंतर्धारा में स्त्री उद्धारक की भूमिका में उदात्त भावना से अनुप्राणित होकर स्त्रियों के उत्थान की बात की गई। कुछ पत्रिकाएं ऐसी भी थीं जो स्त्री के अत्याधुनिक विचारों के फैलाव के लिए रास्ता तैयार करने की कोशिश कर रही थीं। महिला संपादकों के हाथों में जब पत्रिका आई तो उन्होंने भी स्वराज की आकांक्षा में स्त्री स्वाधीनता के विविध आयामों की खोज की। स्त्री की समस्याओं के साथ-साथ परिवार, समाज और राष्ट्र के संदर्भ में उसकी भूमिकाओं को संस्कारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस दृष्टि से सुगृहिणी (संपादिका - हेमंत कुमारी देवी), भारत भगिनी (संपादिका - श्रीमती हरदेवी), वनिता हितैषी (संपादिका- भाग्यवती) जैसी महिला पत्रिकाएं प्रकाशित

महिला पत्रिकाओं की बात की जाए तो कुछ पत्रिकाएं समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है, उनके क्या अधिकार हैं, स्त्रियों की कठिनाइयां क्या हैं, उनके कर्त्तव्य क्या हैं... आदि; इन प्रश्नों के इर्द-गिर्द अपनी विषय-सामग्री जुटाती रहीं। अधिकांश पत्रिकाएं स्त्रियों को उनके कर्तव्यबोध और दायित्वबोध जगाने के लिए पाठशाला चलाने का काम करती रहीं। उन्हें 'स्त्रीत्व की उच्चतम स्थिति' तक पहुंचने के लिए कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया गया

हुई। महिला पत्रिकाओं की शृंखला में स्त्री दर्पण (संपादिका - रामेश्वरी नेहरू), गृहलक्ष्मी (संपादिका - श्रीमती गोपाल देवी), दीदी (संपादिका समिति में विदुषी महिलाओं के नामों में परिवर्तन होता रहता था), कन्या सर्वस्व (संपादिका - यशोदा देवी), महिला (संपादिका - सीता देवी) आदि पत्रिकाएं सामने आईं। इस समय विधवा, परित्यक्ता, तथा वेश्या जीवन की दयनीय दशा के चित्र खींचकर उनकी समस्याओं के उन्मूलन के लिए सामाजिक आधार तैयार करने की कोशिश हुई।

स्त्री उत्थान की दृष्टि से 1922 में प्रकाशित 'चांद' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा। महादेवी वर्मा के संपादकत्व में इस पत्रिका को स्त्री के पक्ष में साहसिक अभिव्यक्ति का उदाहरण माना गया। भारतीय ढांचे में स्त्री को सम्मान दिलाने के लिए उसकी कठिनाइयों और जीवन की जटिलताओं को महादेवी वर्मा ने बहुत ही मार्मिक ढंग से सामने रखा। अधिकारशून्य पत्नीत्व और आदरहीन मातृत्व के मुद्दों को बहुत गंभीरता से उठाया गया।

आजादी के बाद परिदृश्य बदला। आजादी से पूर्व स्वराज्य के साथ गठबंधन कर चलने वाले नारी मुक्ति आंदोलन का स्वर धीमा हो गया। वह एक तरह से पृष्ठभूमि में चला गया। कमला देवी चट्टोपाध्याय ने इस पर टिप्पणी की, "महिलाओं के संदर्भ में इसके परिणाम अधिक त्रासद रहे। आजादी की रंगभूमि में महिलाओं की जो विशाल भीड़ उमड़ी थी वह अपने पुराने लोक में लौट गई। उनके हाथों में अब एक वह सबसे शक्तिशाली शस्त्र मताधिकार था। उनके पास कई कानूनी अधिकार भी थे। किंतु किस काम के क्योंकि वे उनकी शक्ति व क्षमताओं से अवगत न थीं।"[7]

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान मिशन रही पत्रकारिता आजाद भारत में व्यवसाय बन गई। पत्रकारिता के क्षेत्र में बड़े-बड़े घरानों ने प्रवेश किया। पत्रकारिता के उद्योग में तब्दील हो जाने पर पत्र-पत्रिकाओं की विज्ञापन पर निर्भरता बढ़ी। क्योंकि 'उद्योग' का मतलब ही था व्यावसायिक मिशन। जिसके तहत पत्र-प्रकाशन से आर्थिक संसाधन जुटाना मकसद था। दैनिक समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं।

आजादी के बाद साठ के आसपास आधी दुनिया पत्रकारिता के कोने में पुनः जगह पाने लगी। घर के दायित्वबोध और कर्तव्यबोध की शिक्षा के साथ-साथ स्वतंत्र भारत की स्त्रियों का असमंजस, द्वंद्व, उसकी चुनौतियां तत्कालीन पत्रिकाओं के पन्नों पर प्रकाशित होने लगीं। शिक्षा और आत्मनिर्भरता की रोशनी में अस्तित्व की तलाश का सफर, स्त्री कल्याण के मुद्दे पत्रकारिता की आंख से पाठक तक पहुंचे। आजादी के बाद स्त्री-पुरुष संबंधों की नवीन संस्थाएं प्रथानुगामी अनुभव से टकराईं। इस टकराहट के स्वर पत्र-पत्रिकाओं के स्त्री-विमर्श के परिदृश्य में सुनाई पड़े।

आजादी के बाद लगभग 1970 तक आते-आते स्त्री शिक्षा और स्वावलंबन के प्रश्नों को स्त्री स्वत्व से जोड़ा जाने लगा। विभिन्न मोर्चों पर स्वावलंबी बनी स्त्री का संघर्ष, उसकी बहुआयामी समस्याएं पत्रकारिता में उठाई जाने लगीं। घर और कार्यस्थल के बीच समायोजन की भूमिका में स्त्री की चुनौतियों का जिक्र खूब होने लगा। लेकिन स्त्री-पुरुष संबंधों के नए समीकरण, लैंगिक विभेद के तहत स्त्री-पुरुष समानता, या नारी मुक्ति का कोई ठोस और क्रांतिकारी एजेंडा 1970 तक की पत्रकारिता में नहीं उठाया गया। लेकिन सन् 70 तक आते-आते संवैधानिक लिंग समानता की पोल खुल गई। महिलाओं को भी इस बात का अहसास हो गया कि संविधान की स्त्री और समाज की स्त्री के बीच के फासले को व्यावहारिक स्तर पर हम पाट नहीं पा रहे हैं।

1970 के बाद लैंगिक स्तरीकरण का मुद्दा महिला आंदोलनों में विविध स्तरों पर उठाया गया। 'लैंगिक स्तरीकरण' वस्तुतः 'स्त्री पुरुषों में सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा संबंधी असमान वितरण' से संबंध रखता है। लैंगिक स्तरीकरण से जुड़े मुद्दों यौन भेद, लिंग भेद और लैंगिक भूमिकाओं पर 1970 के बाद की पत्रकारिता में विचार विमर्श की प्रक्रिया चली। स्त्री के प्रति आपराधिक और हिंसक प्रवृत्तियों के लिए जिम्मेदार सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ढांचों की पड़ताल शुरू हुई। लिंग आधारित हिंसा 70 के बाद स्त्री स्वातंत्र्य का एक केंद्रीय मुद्दा बनी। इसी परिप्रेक्ष्य में कहा गया कि "महिलाओं पर होने वाले दमन संबंधी समय में और उसमें परिवर्तन लाने की संकल्पना के अभाव में आनुभाविक पहलुओं को समझे बिना नारी स्वातंत्र्य की कल्पना नहीं की जा सकती।"

स्त्री के मानवाधिकारों की लड़ाई के परिप्रेक्ष्य में 1975 का अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष और अंतरराष्ट्रीय महिला दशक ने बीसवीं सदी के अंतिम चरण को महत्वपूर्ण बना दिया। पुराने महिला संगठन जी उठे, नए महिला संगठनों का उदय हुआ। जिन्होंने महिलाओं के लिए समान अधिकार और परिस्थितियों के लिए संघर्ष किया। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक असमानता को खत्म करने के लिए संघर्ष तेज हुआ। अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष और महिला दशक की पत्रकारिता ने भी लैंगिक विभेद के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हुए स्त्री के प्रति हिंसात्मक रवैये को उजागर किया। जिसे देखकर कहा गया कि "इस पूरे दौरान भारतीय स्त्री और उससे समाज के रिश्तों की एक ईमानदार व्याख्या धीमे-धीमे बढ़ती गई और स्वतंत्रता संग्राम के बाद पहली बार स्त्री के संदर्भ में सही सवाल पूछे जा रहे हैं।

अंतरराष्ट्रीय महिला दशक में स्त्री की स्वतंत्रता और नारी मुक्ति के संदर्भ में लेखों

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान मिशन रही पत्रकारिता आजाद भारत में व्यवसाय बन गई। पत्रकारिता के क्षेत्र में बड़े-बड़े घरानों ने प्रवेश किया। पत्रकारिता के उद्योग में तब्दील हो जाने पर पत्र-पत्रिकाओं की विज्ञापन पर निर्भरता बढ़ी। क्योंकि 'उद्योग' का मतलब ही था व्यावसायिक मिशन। जिसके तहत पत्र-प्रकाशन से आर्थिक संसाधन जुटाना मकसद था। दैनिक समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं

और परिचर्चाओं को हिंदी पत्रकारिता ने एक ठोस मंच प्रदान किया। अंतरराष्ट्रीय महिला दशक के दौरान हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं ने स्त्रियों की 'पहाड़ सी जिंदगी' की कठिनाइयों, स्त्री की बेचौनी, उसकी आकांक्षाओं को सामने रखते हुए उसके भीतर के तूफान को अभिव्यक्ति दी।

सन् 70 से लेकर नब्बे के दशक तक पत्रकारिता के परिदृश्य में स्त्री की पहचान, उसके उत्पीड़न और सबलीकरण के प्रश्नों को केंद्र में रखकर स्त्री के प्रति संवेदनशीलता दिखाई गई। इस दौरान लैंगिक असमानता और हिंसा से जुड़ी घटनाओं को गंभीरता से उठाया गया। इस दौर की पत्रकारिता ने सामाजिक स्तर पर चलाए जा रहे लैंगिक हिंसा के निम्नलिखित संघर्ष और आंदोलनों के साथ अपनी सहभागिता दिखाई- दहेज विरोधी आंदोलन, बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन, सती विरोधी आंदोलन, धर्म और जाति के संदर्भ में स्त्री अस्मिता का संघर्ष, सुरक्षित पर्यावरण के लिए संघर्ष, सत्ता और राजनीति के लिए संघर्ष। लैंगिक हिंसा के संदर्भ में दहेज हत्याओं का मामला बराबर उठाया गया। बलात्कार को लैंगिक शोषण से जोड़ते हुए उसे स्त्री की अस्मिता पर प्रहार मानकर उसके विरुद्ध सामाजिक चेतना लाने वाली वैचारिक सामग्री बार-बार परोसी गई। वहीं दूसरी ओर कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने व्यावसायिकता की डोर पकड़कर बलात्कार कांडों की चर्चा को चटखारों के साथ प्रकाशित कर पत्र-पत्रिकाओं को सस्ती लोकप्रियता की ऊंचाई पर पहुंचाने का उपक्रम किया।

पत्रकारिता के इतिहास में दिवराला का 'रुपकंवर सती कांड' और 'शाहबानो केस' के संदर्भ में लैंगिक असमानता के प्रश्नों को सामाजिक-राजनैतिक चेतना के साथ अभिव्यक्ति मिली। ये प्रश्न स्त्री-पुरुष के बीच असमानता के ही नहीं थे बल्कि विभिन्न धर्मों में स्त्री की प्रस्थिति से भी जुड़े थे।

बीसवीं सदी के अंतिम चरण में पहुंचते-पहुंचते स्त्री-पुरुष के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक असमानता की सार्वभौमिक प्रस्थिति के विश्लेषण को व्यापक आयाम मिलने पर सत्ता और राजनीति के प्रश्न स्त्री विमर्श के फ्रेम में पत्रकारिता

साभार : https://defendernetwork.com/category/news/page/530/

में उठाए गए। विचारशील महिलाओं की पत्रिका के नाम पर 'वामा' (संपादिका- मृणाल पांडेय) ने स्त्रियों से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों पर कवर स्टोरी प्रकाशित की। इस दौर के प्रिंट मीडिया ने पर्यावरण, जातिवाद, बाजारीकरण, राजनीति में महिला आरक्षण जैसे मुद्दों के संदर्भ में स्त्री प्रश्नों को उठाया।

आजादी से लेकर अब तक की पत्रकारिता की लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही परिणाम है कि हम स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री कल्याण और स्त्री विकास के रास्ते से होकर स्त्री सशक्तीकरण की आवाज उठा सके। पत्रकारिता की स्त्री के पक्ष में बहुत बड़ी भूमिका रही है। उसने स्री की पहचान, उसके सबलीकरण के प्रश्नों को केंद्र में रखकर स्त्री के पक्ष में सामाजिक रवैये को बदलने की कोशिश की। स्त्री के संपूर्ण विकास के लिए, उसकी अस्मिता की पहचान के लिए, नई भूमिकाओं में उसे संस्कारित करने के लिए पत्रकारिता ने एक ठोस आधार तैयार किया। पत्रकारिता के जरिये महिलाओं के जीवन में जागरूकता आई है। उनके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हुए।

पत्रकारिता ने औरत की समाज में बदलती हुई भूमिका को न केवल रेखांकित किया बल्कि स्त्री सकारात्मक दिशाएँ भी प्रदान कीं। आप कह सकते हैं स्त्री के अंतर में छिपी शक्ति और चेतना को पत्रकारिता के जरिये एक राह मिली। पत्रकारिता ने उसे आधुनिक बनाने में, दकियानूसी मकड़जाल से बाहर निकालने में और समाज में उसका शोषण करनेवाले ऑक्टोपस तंतुओं से उसे छुटकारा दिलाने में एक मददगार भूमिका अदा की है। भले ही आज भी हिंदुस्तान की स्त्री स्त्री विरोधी मानसिकता और समाज की संकीर्ण मनोवृत्ति से पूरी तरह न छूट पाई हो लेकिन वह मुक्ति का रास्ता तलाश रही है। राष्ट्रीय विकास की धारा से जुड़ने का प्रयत्न कर रही है। भारतीय समाज में जहां संकीर्णता, सड़ी-गली व जड़ मान्यताएं और पाखंड जड़े जमाए बैठे हैं, वहीं उसमें लोकतांत्रिक आचरण की उदात्तता के तत्व भी मौजूद हैं। इसीलिए जब मीडिया ऐसे तत्वों को उभारता है तब समाज आंदोलित होता है। बहसें होती हैं। फिर स्थायित्व के लिए रास्ता तैयार होता है। महिलाओं के हितों और विकास की दिशा में मीडिया की यह सकारात्मक तस्वीर है।

सूचना और तकनीकी क्रांति से समाज में बदलाव की जो अप्रत्याशित हवा बही उससे पत्रकारिता का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद हुए 'पूंजी विस्फोट' ने पत्रकारिता की दुनिया से सृजनात्मक विचारों को पूरी तरह खदेड़कर ग्लैमर का नया संसार गढ़ना शुरू कर दिया। आजादी के बाद मिशन से व्यवसाय बनी पत्रकारिता अब 'ग्लोबल' आंधी में बाजार की कठपुतली बन गई। सेटेलाइट प्रसारण

और भारतीय टेलीविजन की दुनिया में निजी टीवी चौनलों के प्रवेश ने भारतीय मीडिया की तस्वीर बदल दी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से प्रतिस्पर्द्धा ने प्रिंट मीडिया में खबर के शास्त्र को ही पलट दिया। आगे चलकर इंटरनेट से फलीभूत सोशल मीडिया ने प्रिंट मीडिया के पाठकों की पठन रुचि को प्रभावित किया।

संचार के उस कमर्शियल मॉडल से प्रिंट भी बच नहीं सका जिसके आंतरिक तर्क हैं, "निजी स्वामित्व और विज्ञापनदाताओं पर आश्रित होने के कारण प्रवृत्ति सार्वजनिक दायरे को क्षीण करने और मनोरंजन की ऐसी संस्कृति निर्मित करने की है जिसका लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ कोई तालमेल नहीं है। जनमाध्यम आउटपुट को माल में तब्दील कर देते हैं। इसका डिजाइन इस तरह तैयार होता है कि ये बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति करे न कि नागरिकों की आवश्यकताओं की।"[8]

खबरों का डिजाइन और समाचार पत्रिकाओं की समाचार सामग्री किस तरह तैयार की जाने लगी इसके उदाहरण के लिए आउटलुक मैग्जीन के एक अंक में स्त्री संबंधी खबर सामग्री की बानगी देखी जा सकती है। तेलंगाना की आई ए एस ऑफिसर स्मिता सब्बरवाल पर 2015 के आउटलुक मैग्जीन अंक में 'नो बोरिंग बाबू' शीर्षक से एक लेख छपा जिसमें लिखा गया, "सब्बरवाल हर बैठक में फैशन का खास खयाल रखती हैं। वह खूबसूरत साड़ी में आती हैं। उनका बैठक में आना आंखों को सुकून देने वाला होता है।" इस आर्टिकल की पैकेजिंग की गई। उसकी पैकेजिंग में एक कार्टून का प्रयोग किया गया जिसमें सब्बरवाल रैंप पर वॉक कर रही हैं और तेलगांना के मुख्यमंत्री के हाथ में कैमरा है। इस लेख के विरुद्ध सब्बरवाल ने पत्रिका को लीगल नोटिस भेजा, जिसमें कहा गया था कि यह आर्टिकल अप्रिय, ओछा और कामुकता से भरा हुआ है। वकील की टिप्पणी थी, "वह कड़ी मेहनत करती हैं। उनमें काम के प्रति समर्पण है। इनकी पहचान सफल पेशेवर के रुप में है। एक महिला ने खुद को साबित किया है। इनकी पहचान समर्पण और लगन के कारण है। मैं मैगजीन से कहना चाहता हूँ कि वह सब्बरवाल के प्रोफाइल को परखे और जाने तब ओछे किस्म के आर्टिकल के बारे में सोचे। आउटलुक का आर्टिकल बददिमाग और हास्यास्पद है।"[9]

बाजारोन्मुखी मीडिया का गाइडिंग सिद्धांत है बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापनों को अपनी झोली में लेना। विज्ञापन बटोरने का आधार है समाचार पत्रों की प्रसार संख्या। प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए पत्रों में स्त्रियों की अधनंगी तस्वीरें परोसी जाती हैं। भूमंडलीकरण ने मीडिया के जिस कमर्शिलाइज मॉडल को जन्म दिया है उससे मुख्यधारा की मीडिया में सामाजिक और विकासमूलक पत्रकारिता की जगह कम हुई है। महिलाएं अब उत्पाद की तरह पेश की जा रही हैं। यहां जो बिकता है वह चलता है। यहां बिकती है औरत की सेक्सुअलिटी, उसका सौंदर्य मिथ। विकसित देशों में सांस्कृतिक उद्योग में बदल चुकी सेक्सुअलिटी भारतीय मीडिया के धरातल पर धीरे-धीरे उतर रही है। जिसके चलते मीडिया के आचार शास्त्र और नैतिकता के बंधनों के बांध टूटकर बह गए हैं। वैश्वीकरण की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की खुली मंडी में विज्ञापन के बलबूते सांस ले रहे मीडिया ने औरत को बाजार में लाकर खड़ा कर दिया है। बाजार में वह अपने तमाम पारंपरिक-सांस्कृतिक मानकों की अवहेलना करके अपने श्रम और छवि को 'उत्पाद' में बदल रही है।

मुख्यधारा का भारतीय प्रिंट मीडिया स्त्री की मुक्त छवि को भुनाने वाले बाजार के साथ कदमताल कर रहा है। देह उन्मुक्तता और आर्थिक आजादी के नाम पर बाजार के हित साधक की भूमिका में खबरों का मिजाज तय कर रहा है। 26 नवम्बर 2017 को टाइम्स ऑफ इंडिया के गुड़गांव टाइम्स पृष्ठ पर 'celebrating womanhood, न्यूज की शुरुआत इस तरह की गई थी- "Give a woman the right lipstick with the perfect cocktail and she can conquer the world" ये मीडिया बाजार द्वारा उत्पादित फेमिनिज्म के स्लोगन हैं जो 'पॉप कल्चर' से पैदा होते हैं। बाजार का गाइडिंग सिद्धांत महिलाओं को देहराग की नई धुन बजाने की ओर प्रेरित करता है। समाचार पत्रों में किसी अभिनेत्री के इंटरव्यू में कही गई ये पंक्तियां अब चौंकाती नहीं है, "If my character requires me to walk nude, I will"।

पॉप संस्कृति के दर्शन हो रहे हैं। यह नैतिकता के बंधन से 'मुक्त संस्कृति' है। 'सब कुछ चलता है' जिसका सुविधाजनक मुहावरा है। संवेदनहीनता इस संस्कृति की विशेषता है। सूचनाओं के वास्तविक संसार की जगह यहां सूचनाओं का डिजनीलैंड है। डॉ. जैकब नील्सन ने सूचनाओं के भंडार का चरमसीमा पर पहुँच जाने को ही 'सूचना प्रदूषण' कहा है।

सूचनाओं के डिजनीलैंड में आज का प्रिंट मीडिया जनसंचार विशेषज्ञ रेमंड्स विलियम्स की पुस्तक 'कम्यूनिकेशंस' मे कही गई इस बात को सिद्ध कर रहा है कि "संचार उपकरणों का नियंत्रण और प्रचार अभियान या व्यापारिक लाभ (विज्ञापन के रुप में) के लिए दुरुपयोग होता है।"

टेलीविजन, म्यूजिक कैसेट, वीडियो तथा न्यू मीडिया की दुनिया में बड़ी जगह घेरने वाले पॉप कल्चरश ने पत्र-पत्रिकाओं के रंगीन पन्नों पर भी अपनी चमक-धमक भरी उपस्थिति दर्ज करा दी है। इस पॉप संस्कृति में स्त्री किसी की दादी, नानी, मामी, मौसी, बुआ या चाची नहीं है बल्कि वह महज एक स्त्री है। दैहिक सौंदर्य के आकर्षण में बंधी-फंसी स्त्री। उसका शरीर, उसकी त्वचा, उसका रंग ही उसकी पहचान का पैमाना है। कितनी बड़ी विडंबना है कि स्त्री की लड़ाई स्वयं को उपभोग के उपकरण में तब्दील किए जाने के विरुद्ध थी। आज वह स्वयं अपनी मर्जी से इस बाड़े में प्रवेश कर रही है। Ⓜ

संदर्भः

1. सुधा चौहान, *मिला तेज से तेज*, पृ. 20
2. कविवचन सुधा, 3 नवंबर, 1873
3. विश्वमित्र, जून 1939
4. सुधा, जनवरी 1928
5. सुधा, मासिक लखनऊ, मार्च, 1930 ('स्त्री-समाज' शीर्षक स्तम्भ में) प्रबंध प्रतिमा में संकलित)
6. शिवपूजन सहाय रचनावली- पृ. 373
7. *इंडियन विमेन* (संपादिका - देवकी जैन
8. हर्मन डब्ल्यू मैक्चेसनी
9. स्रोतः नवभारत टाइम्स.कॉम

रबी प्याज की खेती को हरियाणा सरकार का प्रोत्साहन

सरकार ने रबी प्याज की खेती को बढ़ावा देने के लिए प्याज के बीज पर अधिकतम 500 रुपये प्रति किलोग्राम अनुदान देने का फैसला लिया है। बीज की किस्म, बिक्री दर, अनुदान राशि व बीज बिक्री केन्द्र का विवरण निम्न अनुसार है :-

क्र. सं.	किस्म का नाम	बिक्री दर रुपये प्रति कि.ग्रा.	अनुदान राशि रुपये प्रति कि.ग्रा.	बीज बिक्री केन्द्र
1.	एग्रीफाउंड लाईट रेड (ए.एल.आर.)	2,000	500	एन.एच.आर.डी.एफ., के बीज ब्रिकी केन्द्र सलारू (करनाल) पर उपलब्ध
2.	एन.एच.आर.डी.एफ. रेड (एल.-28)	2,300	500	
3.	एन.एच.आर.डी.एफ. रेड-3 (एल.-652)	2,300	500	
4.	ए.एफ.एल.आर.	2,000	500	राज्य में स्थित राष्ट्रीय बीज निगम (एन.एस.सी.) के बीज बिक्री केन्द्रों पर उपलब्ध

- अधिकतम सीमा एक हैक्टेयर (10 किलोग्राम बीज) एवं 5,000 रुपये प्रति किसान है।
- किसान उपरोक्त तालिका में दर्शाये गये बीज बिक्री केन्द्रों से केवल अपने हिस्से की राशि जमा करवाकर नियमानुसार बीज प्राप्त कर सकते हैं।
- अनुदान के लिए किसान द्वारा **'मेरी फसल, मेरा ब्यौरा'** पोर्टल पर पंजीकरण करवाना अनिवार्य है।
- बीज बिक्री केन्द्र में किसान अपना पहचान-पत्र जैसेकि आधार कार्ड व उसकी फोटोप्रति तथा **'मेरी फसल, मेरा ब्यौरा'** पोर्टल पर पंजीकरण की प्रति अवश्य लेकर आएं।
- अनुदान 'पहले आएं - पहले पाएं' के आधार पर दिया जा रहा है तथा अनुदान राशि की उपलब्धता तक ही मान्य होगा।

किसान भाई अधिक जानकारी के लिए अपने जिला बागवानी अधिकारी से संपर्क करें।

उद्यान विभाग, हरियाणा

सेक्टर-21, पंचकूला-134112

Website : www.hortharyana.gov.in | Email : horticulture@hry.nic.in

"पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।"

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्स यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

"यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

ISBN 978-93-5186-262-8

₹ 500/-

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय

कर्तृत्व एवं विचार

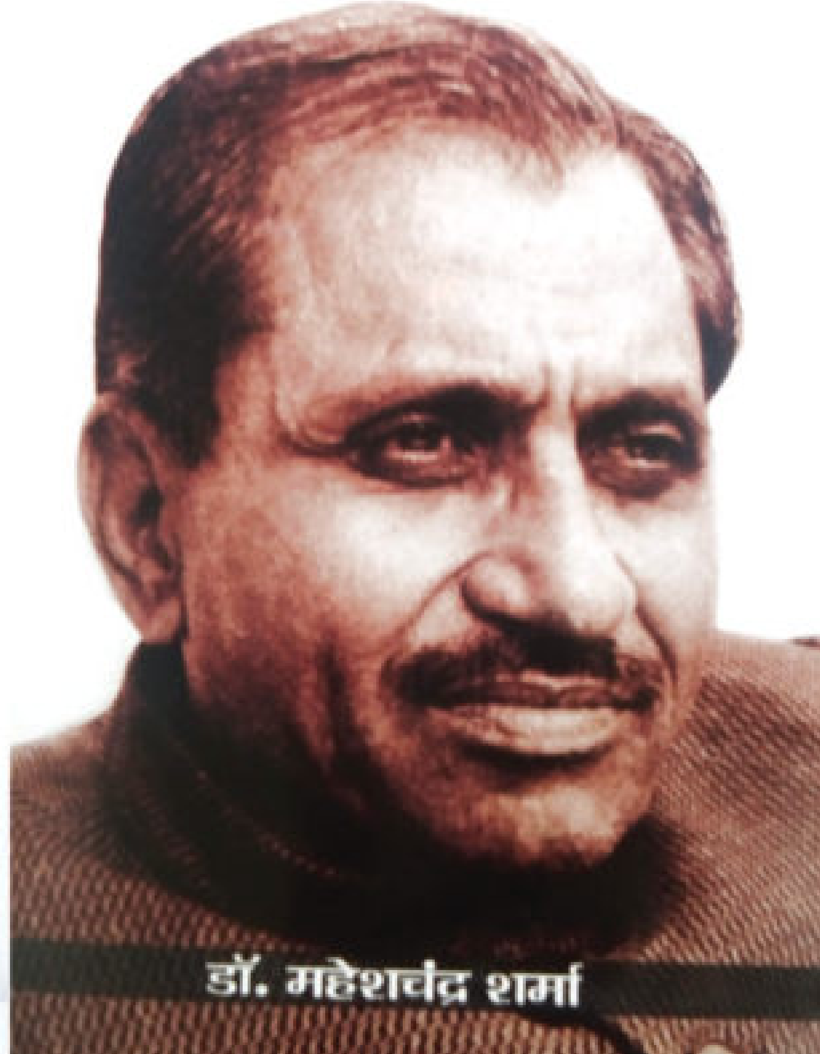

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

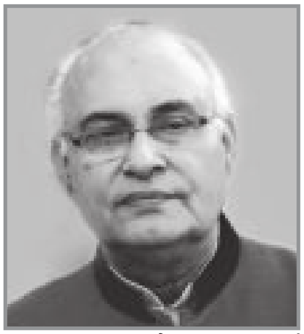

दीनदयाल जी की दृष्टि में स्त्री

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

दीनदयाल जी का दर्शन मनुष्य को उसकी समग्रता में देखने का है। वह स्त्री और पुरुष को अलग-अलग बाँट कर नहीं देखते। सभी को संपूर्ण अस्तित्व के अविभाज्य अवयवों के रूप में देखते हैं। स्त्री संबंधी उनका दर्शन पूरी तरह प्रगतिशील है

एकात्म मानवदर्शन में दीनदयाल उपाध्याय का विवेचन समग्रतावादी है। वे स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, मानव-पशु तथा भौतिक-आध्यात्मिक आदि विषयों का पृथक-पृथक विवेचन नहीं करते हैं। यह पृथक विवेचन यथा प्रसंग उनके साहित्य एवं व्यवहार में परिलक्षित होता है। महिला या स्त्री विषय पर उनका कोई आलेख या वक्तव्य नहीं है, लेकिन यथाप्रसंग जो विषय प्रतिपादित हुआ है यह पर्याप्त बोधप्रद है।

'जगद्गुरु शंकराचार्य' दीनदयाल जी की एक औपन्यासिक रचना है, इस रचना में ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर दीनदयाल उपाध्याय मंडन मिश्र की पत्नी से महिला के अधिकारों का वर्णन करवाते हुए उसे शास्त्रार्थ का अधिकार देकर, अंत में उसे संन्यास ग्रहण करवा देते हैं। महिला अधिकारों के लिए भारती तर्क देती है: "स्त्री हूँ तो क्या हुआ आचार्य? स्त्री के क्या विचार नहीं होते? उसके मन में क्या शंकाओं-कुशंकाओं की आंधी नहीं उठ सकती? उसके पास भी मस्तिष्क है, हृदय है और फिर वह भी तो राष्ट्र का अंग है। उसका भी राष्ट्र के प्रति दायित्व है और उस दायित्व को निभाने का उसको भी अधिकार है।. ...और आचार्य, स्त्रियों के साथ क्या शास्त्रार्थ नहीं हुए हैं? गार्गी व याज्ञवल्क्य का संवाद आपको ज्ञात नहीं है? गार्गी क्या पुरुष थी? और उसका शास्त्रार्थ भी किसी साधारण विषय पर नहीं किंतु आत्मा के संबंध में हुआ था। जनक और सुलभा का शास्त्रार्थ तो प्रसिद्ध ही है। सुलभा भी कोई पुरुष नहीं थी। जनक और याज्ञवल्क्य भी कोई साधारण मनुष्य नहीं थे किंतु अत्यंत प्रसिद्ध महात्मा थे। यदि वे महात्मागण स्त्रियों से विवाद कर सकते हैं तो आप मुझसे क्यों नहीं कर सकते?"[1]

भारती के इस कथन में स्त्री के प्रति दीनदयाल जी के विचार परिलक्षित हैं।

इसी प्रकार उन्होंने महिलाओं की सामाजिक सहभागिता के संदर्भ में भी अपनी चिंता व्यक्त की है। सामाजिक सहभागिता के लिए वे महिला आरक्षण के पक्ष में हैं।

अत: उन्होंने आग्रहपूर्वक जनसंघ के संविधान में मण्डल समितियों के गठन में महिलाओं तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों के लिए दो-दो स्थान आरक्षित करवाए।[2]

इसी प्रकार परिवार नियोजन के लिए कृत्रिम उपायों के उपयोग के बारे में भी काल्पनिक श्रेष्ठता व पवित्रता के आवरण में विरोधी तथा अनुदार दृष्टिकोण यत्र-तत्र दिखाई देता है। जनसंघ की नागपुर अ.आ. प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन के समय मध्य प्रदेश के एक प्रतिनिधि ने 'परिवार नियोजन' के लिए केवल ब्रह्मचर्यपूर्वक संयमी जीवन को स्वीकार करना चाहिए, भारतीय जनसंघ कृत्रिम उपायों के उपयोग का विरोध करे, ऐसा प्रस्ताव रखा। उपाध्याय ने समझाया कि कल्पना लोक में रहने का लाभ नहीं है। हमें व्यावहारिक बनना चाहिए तथा उस प्रस्ताव को बहुमत से अस्वीकृत कर दिया गया।[3]

बहुत से समुदायों में स्त्री के केवल बच्चे पैदा करने की मशीन की तरह इस्तेमाल किया जाता है। दीनदयाल जी उसके उग्र विरोधी हैं तथा इसे अभारतीय दृष्टि करार देते हैं।

विषयों का दार्शनिक विश्लेषण करना एवं उसके लिए किसी भारतीय प्रत्यय को खोज निकालना दीनदयाल उपाध्याय के स्वभाव की विशेषता थी, इसी वैशिष्ट्य के कारण 'अधिलवण' अवधारणा को उन्होंने खोज निकाला। सामान्यत: प्राचीन परंपरावादी व धर्मशास्त्रीय जन 'परिवार नियोजन' के खिलाफ देखे जाते हैं। उपाध्याय

अधिलवण का दैशिक शास्त्रीय विवेचन, पुरानी मान्यताओं पर आधारित है। उन तर्कों एवं समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की आज पुष्टि नहीं की जा सकती। उपाध्याय का एक सूत्र है, "स्वदेशी को युगानुकूल व विदेशी को स्वदेशानुकूल बनाकर ग्रहण करना।" उपाध्याय ने अपने विवेचन में दैशिक शास्त्र के लेखक की मान्यताओं को बिल्कुल भी प्रस्तुत न करते हुए केवल मूल बात को ग्रहण किया

ने भारतीय दार्शनिक परंपरा को ही परिवार नियोजन के पक्ष में गवाही के लिए ला खड़ा किया तथा 'परिवार नियोजन' के उद्देश्यों का मण्डन किया। यह अधिलवण अवधारणा दीनदयाल उपाध्याय ने दैशिक शास्त्र से प्राप्त की।

भारतीय परंपरा में गुणवान मनुष्यों को उत्पन्न करने, गुणवत्ता को विकसित करने एवं अनचाही संतानों से समाज को मुक्त रखने के लिए जो चिंतन किया तथा प्रयोग हुए, उनका विवेचन दैशिक शास्त्र के "देवीसम्पदयोगक्षेमोध्यायः' में किया गया है। तद्नुसार गुणवान संतानों को पैदा करने के लिए 'अधिजनन' प्रक्रिया जो मुख्यतः 'जीवशास्त्रीय' है, का वर्णन है। गुणवत्ता को विकसित करने के लिए 'अध्यापन' कला की विवेचना है जो 'शिक्षा शास्त्रीय' है तथा अनचाही संतानों से बचने के लिए 'अधिलवण' अथवा 'जातीयलवण' अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। दैशिक शास्त्र में अधिलवण को परिभाषित करने के लिए 'वनस्पति शास्त्र' का सहारा लेते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वृक्ष को बूढ़ा व निस्प्राण होने से बचाने के लिए गलित शाखा प्रशाखाओं को विधिपूर्वक काटने-छांटने का उपक्रम किया जाता है, वृक्ष की हरीतिमा व आयु को बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार "जातीय (राष्ट्र) रूपी वृक्ष में अनभिष्ट अंश को उत्पन्न न होने देकर और उत्पन्न हुए अनभिष्ट अंश (अनचाही संतानों) को निकालकर, उसको अवपात से बचाये रखना, इसको हमारे दैशिक शास्त्र में 'जातीयलवण' कहा जाता है। जातीय लवण के बिना कोई जाति बहुत दिनों तक हरी-भरी नहीं रह सकती, शीघ्र ही उसका क्षय काल उपस्थित हो जाता है अत: जातीयलवण के अनेक अंग है। इनमें तीन अंग मुख्य हैं 1. बाल ब्रह्मचर्य, 2. वानप्रस्थ प्रथा 3. युद्ध।"[4]

अधिलवण का दैशिक शास्त्रीय विवेचन, पुरानी मान्यताओं पर आधारित है। उन तर्कों एवं समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की आज पुष्टि नहीं की जा सकती। उपाध्याय का एक सूत्र है, "स्वदेशी को युगानुकूल व विदेशी को स्वदेशानुकूल बनाकर ग्रहण करना।" उपाध्याय ने अपने विवेचन में दैशिक शास्त्र के लेखक की मान्यताओं को बिल्कुल भी प्रस्तुत न करते हुए केवल मूल बात को ग्रहण किया। इसी क्रम में वे 'अनचाही संतानों' से बचने के लिए 'अधिलवण' या 'जातीय लवण' की अवधारणा का विश्लेषण करते हैं। उन्होंने इसका अपने प्रकार से उपयोग किया, अपने ही तर्कों तथा उदाहरणों के साथ वे लिखते हैं:

"भारत में प्राचीन समाजशास्त्रियों ने 'जनसंख्या-नियंत्रण' के विषय में कुछ विचार प्रतिपादित किए हैं, यद्यपि माल्थस के समान कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं की। उनहोंने निश्चित रूप से संदर्भित किया है कि अधिक जनसंख्या धर्म की हानि कारण बनती है तथा अंततोगत्वा 'प्रलय' को निमंत्रित करती है। उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण के साधन के रूप में 'ब्रह्मचर्य', 'वानप्रस्थ' तथा 'अधिलवण' का नियमन किया।[5]

उपाध्याय ने इस अवधारणा को विकसित करते हुए प्रतिपादित किया कि भारतीय परंपरा में 'योजित पितृत्व' की व्यवस्था का उल्लेख है, उन्होंने परिवार नियोजन के लिए महाभारत की एक कथा का हवाला देते हुए लिखा है:

शास्त्रोक्त सोलह संस्कारों में प्रथम 'गर्भाधान' संस्कार, यह प्रदर्शित करता है कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने न केवल 'योजित पितृत्व' का विचार रखा वरन धार्मिक कर्तव्य के रूप में उसका आग्रह किया। गर्भधारण अनियोजित या संयोगवश होने वाला विषय नहीं था। यह महाभारत में उल्लिखित है कि चार बच्चों के होने के बाद पाण्डु ने एक बार फिर कुंती के समक्ष यह इच्छा प्रकट की थी व एक बार और 'भगवान का आह्वान' कर एक बच्चा प्राप्त करे। कुंती ने इसे यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि वह औरत जो चार से अधिक बच्चे रखती है वह मानवी नहीं, गर्दभी है। वह चार बच्चों को पहले ही जन्म दे चुकी है, और बच्चा पैदा नहीं करेगी। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि बच्चों की संख्या को सीमित रखने का विचार बहुत पहले से भारत में था। अत: 'परिवार नियोजन' का विचार भारतीय परंपरा व संस्कृति के विपरीत नहीं है, तथा इसमें कुछ भी अधार्मिक या अनैतिक नहीं है।[6]

दीनदयाल उपाध्याय स्त्री गरिमा को व्यक्त करते हुए अपने शिक्षा दर्शन में माँ को परिवार की अधिष्ठात्री तथा परिवार को शिक्षा व संस्कार का प्रथम् अभिकेन्द्र मानते हुये 'माता प्रथम् गुरुः' मंत्र की विवेचना करते हैं। स्त्री केवल जननि नहीं वरन् 'माँ' है। 'माँ' का स्थान जननि से उच्चतर है।

फुटकर प्रसंगों में ही क्यों न हो परन्तु दीनदयाल जी ने स्त्री विषय अपने विचारों को सांगोपांग विवेचन किया है। वे पुरुष बनाम स्त्री के विषय को अपने विवेचन में स्थान नहीं देते। यह समीकरण उनके मूलभूत 'एकात्म विचार के प्रतिकूल है। Ⓜ

शुभम्।

संदर्भ :

1. उपाध्याय दीनदयाल, *जगद्गुरु शंकराचार्य* (1947), राष्ट्रधर्म प्रकाशन, लखनऊ, भारती का समाधान, पृ.85-86
2. *भारतीय जनसंघ का संविधान; अनुच्छेद 9: मंडल समितियाँ (2) मंडल समिति अधिकतम 21 सदस्यों की होगी जिसमें उपर्युक्त निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त शेष की नियुक्ति प्रधान द्वारा होगी। प्रत्येक मंडल समिति में दो स्थान महिला तथा अनुसूचित जाति/जनजाति सदस्यों के लिए सुरक्षित रखे जाएंगे। - भारतीय जनसंघ: घोषणाएं एवं प्रस्ताव, 1951-1972, भाग-1, भारतीय*

जनसंघ, विट्ठल भाई पटेल भवन, नई दिल्ली, पृ. 187।
3. पांचजन्य, 21 नवंबर , 1966, पृ. 10
4. क्र. 12, पंचम अध्याय, देवीसंपद्योगक्षेम, तृतीय आह्लिक (अधिलवण), पृ. 154
5. *Sociologist in ancient India appear to have possessed some idea of 'Population Control' though they might not have propounded a theory such as Malhan did. They have definitely referred to excess population as course to lose of Dharma, ultimately leading to 'Pralaya'. They prescribed 'brahmacharya', 'vanaprastha' and 'Adhilavana' as means of population control" – Deendayal Upadhyaya, The Family Planning Policy, Issues of National Policy, Ed. By P.R. Daswani, Jalco Books, Bombay.*
6. *'Garbhadhan' the first of the 'sixteen sanskaras' enjoined in shastras shows that the ancient sanskaras not only had the idea of 'Planned parenthood', they even insisted on it as a religious duty. Conception could not be a matter of accident. It is mentioned in the Mahabharata, that after the birth of his four children, Pandu expressed a desire that Kunti should once again 'invoke a God' and get a child. To this Kunti referred saying that she who bears more than four children is not a human being, but a donkey (Gardabhi). She had already given birth to four and would not bear any more. Generally speaking, there was no idea since long in India of limiting the number of children. Hence the concept of family planning is not against our tradition and culture and certainly there is nothing irreligious or immoral about it. Deendayal Upadhyaya, The Family Planning Policy, Issues of National Policy, Ed. By P.R. Daswani, Jalco Books, Bombay.*

बहू ने लिया शिवाजी का बदला

अपने सबसे बड़े शत्रु शिवाजी की असमय मृत्यु एवं उनके पुत्र शम्भा जी को तड़पा तड़पा कर मृत्यु के घाट उतारने वाला औरंगजेब अब निश्चिन्त था कि वह मराठों को हरा देगा और जीवन के अंतिम दिनों में जो स्वयं से वादा किया था कि उत्तर से दक्खन तक वह मुगल शासन को स्थापित कर देगा! मगर शिवाजी के छोटे पुत्र ने उसका यह स्वप्न धूमिल कर दिया! औरंगजेब अब दक्खन में बेचौन होने लगा था. उसे बार बार शिवाजी का अट्टाहस याद आ रहा था जिसमें उसने कहा था कि मैं रहूँ या न रहूँ, मराठा कभी भगवा ध्वज झुकने नहीं देंगे! वर्ष 1689 में राजाराम ने छत्रपति तृतीय के रूप में सिंहासन सम्हाला!

परन्तु वह मात्र ग्यारह वर्ष ही शासन कर सका और उन ग्यारह वर्षों में भी मुट्ठी भर मराठों ने मुगल सेना के सामने समर्पण नहीं किया! वह लड़ते रहे, कभी जीतते, कभी हारते, कभी हारकर जीतते, तो कभी जीतकर हारते! मगर समर्पण नहीं किया! शिवाजी के आदर्श उनके साथ थे. औरंगजेब वर्ष 1683 से ही दक्कन में डेरा डाले था. उसे भान भी नहीं था, कि जिस मराठा शासक के लिए उसने आगरा में जाल बिछाया था, वह मरने के बाद उसे दक्कन के जाल में फंसा जाएगा, और ऐसे जाल में कि वह अंतिम सांस भी अपनी राजधानी से दूर लेगा!

राजाराम की मृत्यु के उपरान्त औरंगजेब ने चौन की एक बार फिर सांस ली और सोचा कि अब तो शायद सपना पूरा हो! मगर इस बार फिर उसके सपने को शिवाजी के मूल्यों से हार माननी थी. इस बार उसके सामने डटकर खड़ी हुई राजाराम की विधवा रानी ताराबाई!

रानी ताराबाई ने स्वतंत्र मराठा साम्राज्य में साँस ली थी, और उसे पता था कि स्वाधीनता की उन्मुक्त हवा और गुलामी की गंधाती हवा में क्या अंतर है! उसने अपने पति की मृत्यु का शोक नहीं किया बल्कि निराश मराठा सेना में एक प्रेरणा का संचार किया! उसने अपने पति राजाराम के साथ मिलकर गुरिल्ला युद्ध की सभी तकनीकें सीखी थीं! वह तलवारबाजी, तीरंदाजी, प्रशासन आदि सभी कार्यों में पारंगत थी। उसने पूरे छ वर्षों तक मुगल सेना को रोके रखा और औरंगजेब के दक्कन पर अधिकार के सपने को ध्वस्त किया. वर्ष 1707 में दक्कन पर अधिकार की ख्वाहिश लिए औरंगजेब की मृत्यु हो गयी! वह अंतिम पचीस वर्षों तक दक्कन रहा!

विडंबना यह है कि उसने यह चाहा था कि शिवाजी अपनी मातृभूमि और परिवार से दूर मृत्यु का ग्रास बनें, उनके परिवार का कोई इंसान उनके साथ न हो, मगर बादशाह कण कण में वास करने वाले भगवान के न्याय से शायद परिचित नहीं था, शिवाजी को तो नहीं बल्कि उसे ही अपने जीवन के अंतिम दिन अपने परिवार सेदूर, अपनी मिट्टी से दूर काटने पड़े!

और उसे इस अंजाम तक पहुंचाने में ताराबाई का योगदान भी काफी था। Ⓜ **सोनाली**

सोनाली मिश्रा

कहानी, कविता और स्त्री

किसी भी समाज का साहित्य उसके विकासक्रम की ही परिणति होता है। यूरोप का साहित्य यूरोप की परिघटनाओं की देन है और भारत का साहित्य भारत की परिघटनाओं की देन। ऐतिहासिक क्रम के अनुरूप देखें तो दोनों की सामाजिक-अर्थिक स्थितियों में बहुत अंतर रहा है। इसके बावजूद दासता की बेड़ियों में एक बार फँस जाने का यह परिणाम भी रहा है कि भारत में लेखकों का एक वर्ग बहुत कुछ यूरोपीय दृष्टि से देखने का अभ्यस्त हो गया। एक दृष्टि स्त्री विमर्श पर

यदि आप महिला हैं तो यूरोपीय साहित्य एक सन्नाटे के साथ आरंभ होता है, यह कहना है बुकर पुरस्कार से सम्मानित लेखिका पैट बार्कर का। यह बात वह उस यूरोपीय साहित्य के विषय में कहती हैं जिससे हिंदी साहित्य का एक बड़ा युग प्रभावित हुआ है और जिसने यूरोपीय मूल्यों के अनुसार ही कहानियां लिखी हैं। अंग्रेजी उपनिवेश होने के नाते भारत के मानस पर अंग्रेजी मानसिकता का प्रभाव कुछ अधिक ही था। यह कहा जाए कि सोच ही यूरोपीय हो गई थी, तो भी यह अतिश्योक्ति नहीं होगी। जब हम हिंदी साहित्य की बात करते हैं तो स्वतंत्रता से पूर्व भी साहित्य की दो प्रकार की धाराएं हमें दिखाई देती हैं। इनमें से एक में भारतीयता की बात थी तो दूसरी में अंतरराष्ट्रीय मानवता की। एक धारा में हिंदू समाज में आई कुरीतियों के कारण धर्म को तोड़ने की बात थी तो दूसरी में कुरीतियों से उबरकर भारतीय मानस में अपनी संस्कृति के प्रति लगाव उत्पन्न करने की। इन्हीं भिन्न-भिन्न धाराओं के मध्य हिंदी कथा साहित्य की नींव रखी जा रही थी। हर प्रकार के विचारों की कहानियों से प्रेरणा लेकर आगे का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा था।

जब हम कथा साहित्य की बात करते हैं तो हमें यह देखना होगा कि उस कथा साहित्य में स्त्रियाँ कहाँ पर थीं? पुरुष कहानीकारों की कहानियों में स्त्रियाँ कहाँ थी और उनकी स्थिति क्या थी और क्या यह दोनों भिन्न-भिन्न थे? क्या स्त्रियों की जो कहानी पुरुषों ने कही और जो कहानी स्त्रियों ने स्वयं कही वह भिन्न थी? क्या पुरुषों का दृष्टिकोण वही था जो स्त्रियों का था? यह सब अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु हैं, जिन्हें उठाया एवं समझा जाना अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, यह प्रश्न भी उठता है कि जिस प्रकार यूरोपीय साहित्य महिलाओं के नाम पर सन्नाटे के साथ आरंभ होता है, क्या हिंदी कथा साहित्य में भी स्त्रियों के साथ वही हुआ है? क्या हिंदी कथा साहित्य में भी स्त्रियों के साथ छल भरा सन्नाटा रहा है?

इस दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि हिंदी में ऐसा बिलकुल नहीं रहा है। यदि यह कहा जाए कि हिंदी कथा साहित्य का आरंभ ही स्त्रियों के साथ हुआ है तो भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। जब हम कथा साहित्य की बात करते हैं तो यह तो बात अवश्य ही आती है कि स्त्री कहानीकारों का पदार्पण हिंदी कहानी में कब से हुआ? क्या वह भी सन्नाटे के साथ शुरुआत थी? या वह मुखर थी? यह जानकर सुधी पाठकों को आश्चर्य होगा कि जब भी हिंदी की प्रथम कहानी की बात होती है तो हमें बंग महिला राजेन्द्रबाला घोष का नाम पूरे अधिकार के साथ उपस्थित मिलता है। हिंदी की प्रथम कहानी कौन सी है, इस पर आज भी विवाद हैं। परन्तु जब नाम उभर कर आते हैं तो हम पाते हैं कि कई विद्वानों ने कई कहानियों को हिंदी की प्रथम कहानी माना है। जिनमें सैय्यद इंशाअल्लाह खां की 'रानी केतकी की कहानी', राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा लिखी गई 'राजा भोज का सपना', किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमति', आचार्य राम चन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंग महिला राजेन्द्र बाला घोष की 'दुलाई वाली' कहानी महत्वपूर्ण है।

राजेन्द्र बाला घोष का जन्म 1882 में वाराणसी में हुआ था। यह एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार से संबंध रखती थीं। इनके पूर्वज बंगाल से आकर वाराणसी में बस गए थे। राजेन्द्र बाला

घोष के विषय में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि इनकी माताजी साहित्यिक रूचि वाली स्त्री थीं एवं राजेन्द्र बाला घोष की प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा अपनी माता जी के ही संरक्षण में हुई थी। राजेन्द्र बाला घोष ने कई निबंध लिखे एवं उनकी विभिन्न रचनाएँ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं।

यह तो थी हिंदी की प्रथम कहानी की बात। उसके उपरांत भी कई स्त्री कहानीकारों ने अपनी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपना स्थान सुनिश्चित किया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण नाम है सुभद्रा कुमारी चौहान का। जी हां, सुभद्रा कुमारी चौहान। सुभद्रा कुमारी चौहान की पहचान एक कवयित्री के रूप में है। मात्र एक कविता ने उन्हें वह यश प्रदान कर दिया जिसके लिए बड़े-बड़े विद्वान आज भी तरसते हैं। परंतु पहचान की इस चादर में उनका जो एक महत्वपूर्ण पक्ष था, वह पूरी तरह से दब गया। वह पक्ष जिस पर चर्चा नहीं हुई। वह कहानीकार के रूप में एक समर्थ कहानीकार थीं जिन्होंने स्त्री की उस समय की स्थिति का तो वर्णन किया ही है, परंतु जो सबसे महत्वपूर्ण है, वह है सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारतीय पुलिस अधिकारियों एवं स्वतंत्रता संग्राम के वीर क्रांतिकारियों के मध्य उत्पन्न होने वाले द्वंद्व की अभिव्यक्ति। यहाँ पर सुभद्रा कुमारी चौहान स्त्रियों की कहानी तो कहती ही हैं, वह समग्र रूप से समाज को साथ लेकर कहानी लिखती हैं। 'पापी पेट' नामक कहानी ऐसी ही एक कहानी है। इस कहानी में वह किसी भी समर्थ पुरुष कहानीकार के जैसी ही कहानीकार के रूप में उभरी हैं। इस कहानी में सभा में हुए लाठीचार्ज के बाद भारतीय पुलिस अधिकारियों का द्वंद्व है। कहानी के लिए जो भी आवश्यक तत्व होते हैं, वह सभी इस कहानी में उपस्थित हैं। इस कहानी का जो कथानक है वह स्वयं में विशिष्ट है क्योंकि प्राय: स्त्री कहानीकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन विषयों में दखल नहीं देंगी जो स्त्रियोचित नहीं हैं। स्त्रियोचित अर्थात स्त्रियों की पीड़ा, समसामयिक विषयों में भी स्त्रीत्व के अनुसार लिखना। सुभद्राकुमारी चौहान ने यह विभाजन तब भी स्वीकार नहीं किया था जब इस प्रकार का विभाजन लेखकों के मध्य किया जा रहा था। सुभद्रा कुमारी चौहान की लिखी 'मंझली रानी' स्त्री विमर्श की कहानी है एवं एक ऐसे रिश्ते की कहानी है जिसका कोई नाम नहीं है। अतएव कहा जा सकता है कि हिंदी कथा साहित्य में स्त्री स्वर न तो धीमे रूप में आरंभ हुआ और न ही कथानक के स्तर पर स्त्रियों ने प्रयोग करने से स्वयं को रोका।

स्वतंत्रता उपरांत की हिंदी कहानियां

आगे बढ़ने पर हम देखते हैं कि सत्तर के दशक के उपरांत देश एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। भारत ने 1947 में स्वतंत्रता के उपरांत प्रगति के पथ पर कदम बढ़ा दिए थे। हम तमाम तरह से आगे बढ़ रहे थे। 47 से लेकर 70 तक की राह सुगम थी। जनता सरकार के प्रति आश्वस्त थी। परंतु औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हर छोर पर दुनिया बदल रही थी तो भारत कैसे अछूता रह जाता।

स्थितियां तेजी से बदल रही थीं, राजनीतिक भी और सामाजिक भी। एक तरफ हमें विश्व की आंखों में आँखें डालकर बात करनी थी और दूसरी तरफ देश की समस्याओं को हल भी करना था। सत्तर के दशक में गाँव के टूटने की प्रक्रिया जारी थी, परिवार के टूटने की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। असंतुलित आर्थिक विकास के कारण गाँवों से लोग पलायन कर रहे थे। महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज का सपना ध्वस्त होने की कगार पर था। और इन्हीं सबके बीच साहित्य भी अछूता नहीं था। कहानी और कविता दोनों ही इस बहाने दरकते हुए रिश्तों की कहानी कह रहे थे। मगर कहानी इन सबसे सशक्त माध्यम है। ग्रामीण परिवेश में जो घट रहा था और उससे भी ज्यादा जरूरी यह था कि शहरी समाज कितना विघटित हो रहा था और उसमें भी स्त्री पर इन परिवर्तनों का क्या परिणाम हो रहा था, वह सब इन कहानियों में दर्ज हो रहा था।

कामकाजी स्त्री उस समय की सबसे नई घटना थी। यद्यपि स्त्रियाँ पहले भी श्रमजीवी ही रही हैं। परंतु जिस प्रकार उस श्रम को ही श्रम के रूप में गिना जाएगा जिससे कुछ आर्थिक लाभ हो, तो उस दायरे में स्त्रियाँ धीरे-धीरे प्रवेश कर रही थीं और उस स्वतंत्रता का स्वाद चख रही थीं, जो उन्होंने कभी सोचा नहीं था। उसके साथ ही उनके सामने आ रही थी तमाम समस्याएं। समस्याएं जो उनकी थीं भी और नहीं भी, जो उनके कारण थीं भी और नहीं भी।

बदलते समय के साथ ज्यों ज्यों उपभोक्तावाद की संस्कृति बढ़ रही थी, उसी प्रकार स्त्रियों को भी वस्तु मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। स्त्री की स्थिति कहानियों में भी बदल रही थी। उनके साथ संवेदना बदल रही थी। स्त्रियों ने समकालीन परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए लिखना आरंभ किया। जब भी हम समकालीनता के विषय में बात करते हैं तो उसके अर्थ के विषय में भी चर्चा आवश्यक होती है। समकालीन होने का अर्थ है अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना। समय जो भी वैज्ञानिक एवं रचनात्मक दबाव प्रस्तुत कर रहा है, उनसे जो भी तनाव उत्पन्न हो रहे हैं, उनका प्रबंधन करते हुए आगे बढना। क्या स्त्रियों ने रचनात्मक क्षेत्र में इस तनाव का सामना किया? क्योंकि 70 का दशक एक नई राजनीतिक संस्कृति को लेकर आ रहा था। दमन की संस्कृति।

आपातकाल के उपरांत उत्पन्न राजनीतिक

एक तरफ हमें विश्व की आंखों में आँखें डालकर बात करनी थी और दूसरी तरफ देश की समस्याओं को हल भी करना था। सत्तर के दशक में गाँव के टूटने की प्रक्रिया जारी थी, परिवार के टूटने की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। असंतुलित आर्थिक विकास के कारण गाँवों से लोग पलायन कर रहे थे। महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज का सपना ध्वस्त होने की कगार पर था

संस्कृति एवं उसके उपरांत कंप्यूटर के आगमन, सूचना क्रांति के परिणामस्वरुप एवं उसके उपरांत उदारीकरण के कारण जितना प्रभाव बाजारों पर पड़ा, उतना ही असर स्त्रियों की कहानियों पर भी पड़ा। जो कहानीकार थीं, वह भी उन सभी पहलुओं से परिचित होने लगीं जो पहले मात्र पुरुषों तक ही सीमित थे। उनमें देह को लेकर चेतना आई और कालांतर में स्त्री विमर्श मात्र देह विमर्श के रूप में देखा जाने लगा।

बहुधा स्त्री रचनाकारों पर यह आरोप अप्रत्यक्ष लगता रहता है कि वह आतंकवाद या उन विषयों पर नहीं लिख सकती हैं जिन्हें लिखने के लिए बौद्धिकता की आवश्यकता होती है। परंतु क्षमा कौल इस दुराग्रह को पूरी तरह तोड़ती हुई परिलक्षित होती हैं। वह 'दर्दपुर' में उस समस्या को बखूबी उधेड़कर पीड़ा को लिखती हैं, जिस समस्या का हल आज तक नहीं निकाला जा सकता है। परंतु राजनीतिक धर्म की समस्या को उन्होंने बखूबी लिखा

70 के दशक के उपरांत मुख्य स्त्री कहानीकार

यदि 70 के दशक के उपरांत की मुख्य स्त्री कहानीकारों पर नजर डालते हैं तो हमारे सम्मुख ममता कालिया, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी, मालती जोशी, चित्रा मुद्‌गल, मृदुला सिन्हा, उर्मिला शुक्ल आदि नाम आते हैं तथा साथ ही यदि आज नजर डालें तो मनीषा कुलश्रेष्ठ, जयंती रंगनाथन ऐसी महिला कहानीकार हैं जो बदलते समय एवं मूल्यों को अपनी कहानियों में व्यक्त कर रही हैं।

महिलाओं की वेदना एवं समाज में एक कामकाजी स्त्री के सामने जो समस्याएं आती हैं, उन पर दो रचनाएं अत्यंत चर्चित एवं मील का पत्थर साबित हुई थीं। वह थीं, मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' एवं मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी'। 'आधे अधूरे' में मोहन राकेश ने अत्यंत ही निर्ममता से एक कामकाजी स्त्री की स्थिति को दिखाया है। परंतु यह नाटक स्त्री के साथ न्याय करता हुआ परिलक्षित नहीं होता है। समय के साथ स्त्री के उत्तरदायित्व बढ़े, वह बाहर निकली, उसका मिलना जुलना और पुरुषों के साथ भी हुआ। मगर समाज का जो दृष्टिकोण था, वह उसके प्रति वैसे का वैसा ही रहा। वर्ष 1969 में लिखे गए इस नाटक में एक बेरोजगार पति है, और एक कमाऊ पत्नी। यह पूरा नाटक बेरोजगार पति के अधूरेपन को सही ठहराने के लिए ही समर्पित है। यद्यपि यह नाटक अंत में पारिवारिक मूल्यों की स्थापना पर ही जोर देता है, परंतु भटकाव केवल स्त्री का ही दिखाया गया है। इस समाधान पर बल नहीं दिया गया है कि आज आर्थिक क्रांति के इस युग में, जब मध्यवर्गीय परिवार पूरी तरह से अपनी जड़ों से कट गया है और स्त्री की भूमिकाएं बदल गई हैं तो स्त्री का सहयोग करने के लिए परिवार और समाज कितना तैयार है। पति यह बर्दाश्त नहीं कर पाता है कि पत्नी नौकरी कर रही है और उससे भी अधिक कि पत्नी के पुरुष मित्र हैं। वहीं जो पत्नी के पुरुष मित्र हैं वह चारों ही उसे छलते हैं। एक वापस अपनी पत्नी के पास चला जाता है और एक व्यक्ति मनोज, जो समाजसेवी है वह उसकी ही बेटी से विवाह कर लेता है। यह दूसरी बात है कि उसकी बेटी को वह छोड़ देता है। छोटी बेटी है, वह मुंहफट हो चुकी है और बेटा पूरी तरह से नियंत्रण से बाहर है। यह नाटक आर्थिक विपन्नता के साथ सामंजस्य न स्थापित करने के कारण एवं स्त्री की बदलती भूमिका के साथ समन्वय न स्थापित करने के कारण उत्पन्न समस्याओं का एक ब्लू प्रिंट है।

इसके बाद बात करते हैं मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' की। यह भी बिखरते हुए समाज की कहानी है। यह भी मूल्यों के विखंडन के कारण परिवार के विखंडन की कहानी है। यह उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसके बिना बीसवीं शताब्दी के हिंदी उपन्यास की बात भी नहीं की जा सकती है। इस उपन्यास के दर्जनों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं एवं उसके कई अनुवाद भी हुए हैं। यह एक बच्चे की नजर से कही हुई कहानी है। यह भी कहना मुश्किल है कि यह कहानी बंटी की है या शकुन की या अजय और शकुन के रिश्ते की, या फिर भारतीय पारिवारिक मूल्यों के विघटन की। यह सभी एक दूसरे से इस कदर उलझे हुए हैं कि यह जो त्रासदी है वह इस कहानी में सभी के लिए एक यातना की यात्रा बन जाती है। पति और पत्नी के बीच में जो द्वंद्व है उसका सबसे बड़ा शिकार होती हैं उनकी अपनी संतानें।

'आपका बंटी' और 'आधे अधूरे' दोनों में ही स्त्री की बदलती भूमिका के साथ सामंजस्य न स्थापित कर पाना एक बड़ी समस्या है। शायद यह समस्या आज तक है, या कहें आज वह और भी बढ़कर सामने आई है। परंतु पारिवारिक एवं सामाजिक मुद्दों के इतर स्त्री रचनाकारों ने अन्य मुद्दों पर भी लिखा है। जैसे जब कश्मीर में आतंकवाद का दौर आरंभ हुआ एवं लाखों की संख्या में कश्मीरी पंडितों ने पलायन किया तो ऐसे में क्षमा कौल ने विस्थापन के उस दर्द को अपने उपन्यास 'दर्दपुर' में उकेरा। इस उपन्यास में दर्द बताती स्त्री की पीड़ा को कह बैठती हैं–

"गुलशनआरा स्त्री है, काश स्त्रियों के वश में होता कुछ? पुरुष आतंक। पुरुष ने तबाह किया।..."

बहुधा स्त्री रचनाकारों पर यह आरोप अप्रत्यक्ष लगता रहता है कि वह आतंकवाद या उन विषयों पर नहीं लिख सकती हैं जिन्हें लिखने के लिए बौद्धिकता की आवश्यकता होती है। परंतु क्षमा कौल इस दुराग्रह को पूरी तरह तोड़ती हुई परिलक्षित होती हैं। वह 'दर्दपुर' में उस समस्या को बखूबी उधेड़कर पीड़ा को लिखती हैं, जिस समस्या का हल आज तक नहीं निकाला जा सकता है। परंतु राजनीतिक धर्म की समस्या को उन्होंने बखूबी लिखा। यह जानते हुए भी कि दिल्ली का राजनीतिक एवं वैचारिक परिदृश्य कैसा है, और उन्हें एक प्रकार से वैचारिक भेदभाव का सामना करना होगा, उन्होंने यह कदम उठाया एवं लिखा। उन्होंने

धार्मिक उन्माद को लिखा है, एवं वह पक्ष लिखा है जिसे लिखने से प्राय: लेखक बचते हैं।

सत्तर के दशक के उपरांत की अन्य स्त्री रचनाकारों में ममता कालिया सशक्त कहानीकार हैं। उन्होंने शहरी स्त्रियों की समस्याओं को बहुत ही खूबसूरती से अपनी कहानियों में उकेरा है। उन्होंने छीजते हुए नैतिक मूल्यों के विषय में भी लिखा है। मगर उन्होंने स्त्रियों की आजादी पर 'आजादी' कहानी लिखी है, वह स्त्रियों की एक अजीब सी पीड़ा को दिखाती हैं। जैसे स्त्रियों को उस आजादी से मतलब ही नहीं है जो अंग्रेजों के जाने के बाद समाज में आई है, बल्कि वह अपनी आजादी के बारे में बात करती हैं कि क्या उसे दमन से स्वतंत्रता प्राप्त होगी जो उनके साथ हो रहा है। बूढ़ी दादी और बहू के बीच, सास और बहू का पारिवारिक सहज द्वंद्व है। दादी अपनी पीड़ा से दुखी है। दादी चाहती है कि एक दिन उसकी पोती डॉक्टर बन जाए, जिससे वह उसे उसकी पीड़ा से मुक्ति दिला सके।

ममता कालिया ने इस कहानी के माध्यम से उस वैचारिक द्वंद्व की भी बात की है जो अंग्रेजी पढ़ाई के कारण पैदा हो रहा है। गाँव की दुकानों से सामान बेच बेच कर बेटे की पढ़ाई कराने वाला पिता जैसे ही अपने बेटे से यह कहता है कि वह आकर अब दुकान संभाले तो बेटा भड़क जाता है।

"बाबा घर में होती चहल - पहल से बेखबर अपनी दुकान में गद्दी पर बैठ कर गल्ला गिनते रहते। एक दिन ब्यालू के बाद बाबू से बोले, 'बब्बू तेरी पढ़ाई खत्म भयै वाली है, दुकान गद्दी संभारौ अब। मैं बहुत थक गयौ हूँ।'
बाबू सन्न रह गये।
बाबा बोले, 'आखरी साल है न जे?'
'हां, बाऊजी।'
'तो बस इस बार तुम हिसाब - किताब समझ लो। दिवाली पर बहीखाता, बांट - तराजू तुम्हीं पूजियो आय के।'
'दुकान पर बैठने के लिए तो मैं एम. ए. नहीं कर रहा हूँ बाऊजी, मैं जोरों से नौकरी ढूंढ रहा हूँ, पास होने तक मिल ही जाएगी।'
बाबा एकदम भड़क गए, 'नहीं बैठेंगे, का मतलब? का इसीलिए तोय पढ़ायौ है कि तू पढ़ लिख कर कुर्सी तोड़े! ससुरी फीस भरी है जनम भर। मर - मर कर पढ़ायौ है कि लोगों के सामने छाती ठोंक कर कहैं, 'देखो मेरा छोरा ऐ, सोलह क्लास पढ़ौ है।''[1]

विदेशी शिक्षा के प्रति यह मोह ही है जो अंतत: जाकर पारिवारिक विखंडन का कारण बनता है जो हम मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' में देखते हैं।

कहानियों की बात हो और हिंदी में नासिरा शर्मा का नाम न आए, ऐसा सहज नहीं हो सकता है। नासिरा शर्मा का नाम इसलिए विशेष है क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता के उपरांत जो कुछ मुस्लिम समाज ने झेला उसे बताने के साथ ही उन्होंने मुस्लिमों के बीच जो जातियां हैं, कुरीतियाँ हैं उन पर भी अपनी कलम चलाई है। अपनी एक कहानी 'सरहद के इस पार' में वह लिखती हैं

"रेहान ने फर्स्ट क्लास में एम.ए. पास किया था। पाँच साल से नौकरी की तलाश थी। पी-एच. डी. से मन उचटा हुआ था। सुरैया से उसकी दोस्ती बी.ए. में हुई थी। दोस्ती इश्क में बदली और फिर शादी के वायदे में, मगर जब घरवालों को पता चला तो उन्होंने सुरैया से साफ कह दिया कि सैयद की लड़की शेखों में नहीं जाएगी। खानदान भी छोटा, औसत लोग हैं, फिर दो वर्ष से बेकार लड़का। लड़की का गला न घोंट दें ऐसे घर में शादी करने से।"

यह बात सत्य है कि इसी कहानी में वह पहले हिंदू और मुस्लिमों के बीच जो दूरियां हैं उसे बताती हैं, मगर इसी कहानी में वह रिहान द्वारा एक हिंदू लड़की को बचाए जाने को भी लिखती हैं। नासिरा शर्मा ने दंगों पर भी अपनी कलम चलाई है। असली बात कहानी में वह लिखती हैं

"दोनों मोहल्लों के गरीबों ने पछताना शुरू कर दिया था। सुस्ती अब उदासी में बदल गई थी। मजदूर ने मजदूरी से हाथ धोए, दुकानदारों ने ग्राहकों से। चूल्हे तो घर-घर दूसरे दिन से ही ठंडे पड़ने लगे थे। कर्फ्यू खुलता भी घंटे-भर को तो खरीदारी की सकत किसमें थी? बताशों के बिना हनुमान जी का मंदिर सूना पड़ा था। चींटे-चींटियाँ अलबत्ता बताशों का चूरा ढो-ढोकर बिल भर रहे थे। आखिर कुछ दुकानदारों ने सलाह-मशविरा कर एस.पी. को मनाने की बात सोची और कर्फ्यू खुलते ही सीधे थाने पहुँचे तथा विपदा कह सुनाई।"[2]

इस कहानी में नासिरा शर्मा बताती हैं कि आगे जाकर दंगों के कारण ठंडे पड़े चूल्हे किस तरह आपसी समन्वय से जलेंगे।

अत: यह कहा जा सकता है कि स्त्री कहानीकारों ने हर विषय पर लिखा है। जिस समय भारतीय जनमानस एक पूरे बदलाव से गुजर रहा था, स्त्रियों के मध्य देह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता हावी थी, उस समय भी स्त्रियाँ विविध विषयों पर लिख रही थीं। हाँ यह भी सही है कि कई कहानीकार देह को ही मध्य में लेकर लिख रही थीं, एवं एक अजीब सा विमर्श स्थापित करने की प्रक्रिया में थीं। जैसे मैत्रेयी पुष्पा ने यद्यपि स्त्रियों के विषय में अत्यंत सहज एवं सजग कहानियां लिखी हैं। परंतु 'चाक' उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जो कई स्तर पर द्वंद्व उत्पन्न करता है, जैसे सबसे चर्चित यह संवाद

"हम जाट स्त्री बिछुआ अपनी जेब में रखती हैं। जब चाहती हैं, पहन लेती हैं, जब चाहती हैं तब उतार देती हैं।"

इस उपन्यास में यौन शुचिता को तोड़ने जाने की पूरी यात्रा है। यह कार्य वह कलावती चाची और सारंग के माध्यम से करती हैं। 'चाक' में कई स्थानों पर यौन शुचिता को तोड़ा गया है।

इसी प्रकार मालती जोशी भी 70 के दशक के उपरांत की एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं जिन्होनें स्त्रियों के साथ साथ कई अन्य विषयों पर कहानियां लिखी हैं। मालती जोशी ने अपनी कहानियों को परिवार के आसपास रखा है। उन्होंने महिलाओं की पीड़ा को तो बताया ही है, साथ ही उस समन्वय को भी बनाए रखा है, जिसे बनाए रखने में मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाएं विफल रही हैं। मालती जोशी अपनी कहानियों में कथ्य को उलझाती नहीं हैं। वह सहज तरीके से स्त्री की समस्याओं को लिखती हैं। वह परिवार के विखंडन से दूर रहते हुए इस प्रकार अपने कथ्य को बुनती हैं कि समस्याएँ भी आ जाएं और विखंडन भी न हो।

उनकी कहानी 'सन्नाटा' भी पुरुष अहम की ही कहानी है, जिसमें पति को अपनी पत्नी का साहित्यिक आयोजनों में जाना एवं

पत्नी का नाम होना पसंद नहीं है। पर वह इस कहानी में अंत में स्त्री को जूझते हुए दिखाती हैं। वह जानती हैं कि विखंडन का परिणाम बच्चों पर पड़ेगा। अत: संस्कृति एवं विकृति में वह संस्कृति को चुन लेती हैं।

इसी पीढ़ी की चित्रा मुद्गल भी हैं जिनकी कहानियों में एक भिन्न स्त्री स्वर परिलक्षित होता है। पीड़ा है, बलात्कार की कोशिश की शिकार होने के बाद एक मध्यवर्गीय लड़की पर उसके परिवार वालों के द्वारा ही किस प्रकार के अत्याचार होते हैं, वह सब उन्होंने 'प्रेतयोनि' कहानी में दिखाया है। इस कहानी में मध्यवर्गीय मूल्यों का क्षरण है कि किस प्रकार लड़की के साथ हुए अत्याचार को समाज से छिपाना आज प्रचलन में आ गया है।

चित्रा मुद्गल ने थर्ड जेंडर की समस्याओं पर भी उपन्यास लिखा है।

जिन स्त्री कहानीकारों ने सूचना क्रांति के परिणामस्वरूप होने वाले आर्थिक विकास एवं मानवीय मूल्यों के क्षरण को देखा है, महसूस किया है, वह उन्होंने अपनी अपनी कहानियों में दिखाया है। उन सभी ने विमर्श की उस रेखा को ही आगे बढ़ाया है जिस रेखा को बंग महिला, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी लेखिकाओं ने बनाया था। जिस विमर्श की नींव सुभद्रा कुमारी चौहान ने डाली कि स्त्री को आत्महत्या न करते हुए सामना करना चाहिए। 'मंझली रानी' कहानी में वह उस लड़की की जिजीविषा और साहस को लिखती हैं जिसका विवाह तो एक राजघराने में हुआ था, मगर अनर्गल चारित्रिक आरोप लगाकर उसे घर से निकाल दिया गया। मायके ने उसे नहीं अपनाया और वह भिक्षावृत्ति के मार्ग पर चल पड़ी। परंतु उसने धीरज और साहस नहीं खोया। जो मध्यमवर्गीय परिवार सुभद्रा कुमारी चौहान के समय उस लड़की को अपनाने का साहस नहीं कर पाता जिसे झूठे आरोप के कारण निकाल दिया गया है और समाज की बातों से डर जाता है, वही मध्यमवर्गीय परिवार चित्रा मुद्गल के समय में भी शारीरिक शोषण का शिकार हुई लड़की का साथ देने के स्थान पर समाज की बातों से डरकर परदे में बंद करता है और जब वह खुद कुछ करने का प्रयास करती है तो उसे अपने परिवार द्वारा ही शारीरिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

यह एक समानता तब से लेकर अब तक उस उभरते हुए शहरी मध्यमवर्ग में है जो समाज की चिंता में मूल्यों की रक्षा करने में अक्षम दिखाई देता है।

परंतु जिस प्रकार 'मंझली रानी' में भी लड़की अकेली नहीं है, उसका संबल बनने के लिए समाज से ही कोई आता है, इसी प्रकार 'प्रेतयोनि' में भी उसकी सहेलियां ही उसके साथ आती हैं।

कहा जा सकता है कि 70 के दशक के बाद से लेकर अब तक स्त्री लेखन ने काफी लंबी यात्रा की है। यह यात्रा निरंतर चल रही है। इस यात्रा को अब मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाएं कथा साहित्य में आगे बढ़ा रही हैं।

कविता में स्त्री विमर्श

कथा साहित्य से इतर होकर जब हम हिंदी कविता में स्त्री विमर्श पर नजर डालते हैं तो पहले तो यह निर्धारित करना होगा कि भारतीय साहित्य में स्त्री का आगमन कब हुआ, हिंदी साहित्य में स्त्री स्वर कैसा रहा और कब से उत्पन्न हुआ, उसकी दिशा क्या रही है, उसका विमर्श क्या रहा है... यह सब जाना जाना सबसे महत्वपूर्ण है। भारतीय काव्य शास्त्र यूं तो आज की बात नहीं है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में काव्य विमर्श के उपरांत उसने आज तक की एक लंबी यात्रा तय की है। स्त्री विमर्श की यह यात्रा वेदों में रची गई ऋषिकाओं की रचनाओं से ही आरंभ हो जाती है। रोमशा ऐसी ही एक ऋषिका हैं। वाणी प्रकाशन से प्रकाशित ईको फेमिनिज्म में उनका उल्लेख है। यह पुस्तक के वनजा ने लिखी है। इसमें वह रोमशा का उल्लेख करते हुए लिखती हैं कि रोमशा अपने पति भावभव्य की बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि हे पति राजन, जैसे पृथ्वी राज्यधारण एवं रक्षा करने वाली होती है वैसे ही मैं भी प्रशंसित रोमों वाली हूँ। मेरे समस्त गुणों को विचारो, मेरे कार्यों को अपने सामने छोटा न मानो।"[3]

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 126वें सूक्त के सातवें मंत्र की रचयिता रोमशा लिखती हैं

"उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथा:।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।।"

आगे आकर यह विमर्श और विस्तृत होता है एवं कविताओं में परिलक्षित होता है। वेदों से आरंभ हुआ यह स्त्री विमर्श भक्तिकाल में आकर और भी विशेष हो जाता है क्योंकि उस समय भारत में कविताओं में भक्ति की हर शाखा में लेखन हो रहा था। भक्तिकाल एक ऐसा काल था जब रचनात्मकता अपने शिखर पर थी। जिसे आध्यात्मिक पुनर्जागरण का काल कहा जा सकता है। इस काल में जहाँ एक तरफ कबीर, तुलसी, रहीम जैसे पुरुष रचनाकार अपनी रचनाओं से सुप्त चेतना में पुनर्जागरण कर रहे थे, तो वहीं ऐसे समय में क्या यह कभी विचार आया कि क्या स्त्रियाँ इस समय शांत थीं? क्या स्त्रियाँ इस समय कुछ रच रही थीं? क्या स्त्रियाँ उस समय कुछ पढ़ रही थीं? ऐसे तमाम प्रश्न हैं जो प्राय: मानस में विचरण करते रहते हैं।

यदि हिंदी कविता की बात की जाए तो इस समय हम जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं, जिस मुक्ति की बात करते हैं, पूरी हिंदी कविता जिस स्त्री अस्मिता की बात करती है, वह स्वतंत्रता कहाँ से उपजी? क्या यह विमर्श एकदम से इक्कीसवीं शताब्दी में सत्तर के दशक के बाद अवतरित हुआ? या फिर वह चेतना में पहले से ही उपस्थित

स्त्री विमर्श की यह यात्रा वेदों में रची गई ऋषिकाओं की रचनाओं से ही आरंभ हो जाती है। रोमशा ऐसी ही एक ऋषिका हैं। वाणी प्रकाशन से प्रकाशित ईको फेमिनिज्म में उनका उल्लेख है। यह पुस्तक के वनजा ने लिखी है। इसमें वह रोमशा का उल्लेख करते हुए लिखती हैं कि रोमशा अपने पति भावभव्य की बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि हे पति राजन, जैसे पृथ्वी राज्यधारण एवं रक्षा करने वाली होती है वैसे ही मैं भी प्रशंसित रोमों वाली हूँ

था? भक्ति काल में एक से बढ़कर एक रचनाकार हुईं, जिन्होनें अपनी चेतना का प्रयोग करते हुए आने वाले विमर्श के लिए आधार का निर्माण किया?

ऐसी ही एक कवयित्री थीं, मीरा बाई! कृष्ण भक्ति में इतना डूब गईं कि स्त्री के प्रेम के अधिकार पर हर तरह के विमर्श को एक बार पुनः आरंभ कर गईं। उनकी रचनाओं में यद्यपि भक्ति है, पर यह भक्ति पुरुष भक्तों की तुलना में भिन्न प्रकार की भक्ति थी। यह भक्ति प्रेम से परिपूर्ण भक्ति थी एवं वह उस स्वतंत्रता की भक्ति थी जो सदियों से भारत भूमि पर पल्ल्ववित होती आ रही है। मीरा बाई कृष्ण को अपना पति मान चुकी हैं। वह कहती हैं

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई,
जाके सिर मोरमुकुट, मेरो पति सोई"

यह जैसे उस सामंतवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह है जो कुरीतियों के कारण उस समय स्त्री को आवरण में बंद रखना चाहती थी। मीरा बाई ने जो विद्रोह किया वह सहजो बाई की कविताओं में नहीं है। सहजो बाई के दोहों में निर्गुण राम की उपासना है। यह भक्ति का वह स्तर है जहाँ पर कबीर पहले से ही स्थापित हो चुके हैं। निर्गुण राम का उल्लेख आने पर इतिहास मात्र कबीर की बात करता है, मात्र कबीर को ही निर्गुण राम के भक्त का पर्याय बना दिया गया है। परंतु ऐसे में जब सहजो बाई और दया बाई की रचनाओं से हम परिचित होते हैं तो वस्तुस्थिति दूसरी ही नजर आती है। ऐसी ही एक रचनाकार हैं उमा, जिनका काल यद्यपि ज्ञात नहीं हो पाया है, परंतु मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ पुस्तक में लेखिका डॉ. सावित्री सिन्हा इनके विषय में लिखती हैं कि उन्हें योग और ज्ञान से काफी परिचय था। राम शब्द का प्रयोग उन्होंने दशरथ पुत्र राम के लिए नहीं अपितु निर्गुण ब्रह्म के लिए किया है।[4]

ऐसे फाग खेले राम राय,
सूरत सुहागण सम्मुख आय,
पंचतंत्र को बन्यो है बाग,
जामें सामंत सहेली रमत फाग'[5]

इसी प्रकार सहजो बाई की रचनाएँ भी

मीरा बाई ने जो विद्रोह किया वह सहजो बाई की कविताओं में नहीं है। सहजो बाई के दोहों में निर्गुण राम की उपासना है। यह भक्ति का वह स्तर है जहाँ पर कबीर पहले से ही स्थापित हो चुके हैं। निर्गुण राम का उल्लेख आने पर इतिहास मात्र कबीर की बात करता है, मात्र कबीर को ही निर्गुण राम के भक्त का पर्याय बना दिया गया है

सहज ब्रह्म के विषय में है। गुरु को उन्होंने सबसे बढ़कर माना है। गुरु के विषय में वह लिखती हैं

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं,
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलें, समझ देख मन माहिं![6]

कविताओं में स्त्री विमर्श आगे आकर और भी विकसित हुआ जब भारत का सामना पश्चिम से हुआ। पश्चिम ने एक और दृष्टि दी। महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में हमें दो प्रकार की दृष्टि दिखती है। जहां महादेवी वर्मा स्त्रियों के साथ होने वाले अन्याय से दुखी हैं, विचलित हैं और इसी पीड़ा के वशीभूत होकर लिख देती हैं,
मैं नीर भरी दु:ख की बदली,

इसी कविता में आगे वह स्त्री जीवन को जैसे निरर्थक बताते हुए लिखती हैं

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही–
उमड़ी कल थी, मिट आज चली!"

यह विमर्श पहचान के उस विमर्श से एकदम विपरीत था, जो पूर्व में स्थापित हो चुका था। इन कविताओं से वैयक्तिक विमर्श उत्पन्न होता है, जबकि इससे पूर्व स्त्रियों द्वारा जो कविताएँ लिखी गईं, उनमें जनकल्याण का भाव होता था, एक समग्र भाव होता था। महादेवी वर्मा की कविताओं ने स्त्रियों की कविताओं को जनकल्याण से विमुख कर व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित कर दिया। यही कारण है कि जहां हमें भक्ति काल से लेकर 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक स्त्री रचनाओं में वैविध्य प्राप्त होता था, वह महादेवी वर्मा के बाद मात्र स्त्री वेदना, स्त्री पीड़ा, में परिवर्तित हो गया। परंतु यह भी देखना रोचक है कि उनकी समकालीन कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान एक अलग विमर्श लिख रही थीं, जिसमें इस भारत भूमि का वीर इतिहास था। उनकी लिखी गई एक कविता, इस हद तक लोकप्रिय हुई कि उसने उनके पूरे विमर्श को ही अपनी छाया में ले लिया। 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की सबसे वीर नायिका रानी लक्ष्मी बाई पर लिखी गई एक कविता ने पूरे विमर्श को ही बदल कर रख दिया। उन्होंने ओज लिखा, उन्होंने वीर रस लिखा, जिसे प्राय: स्त्रियाँ नहीं लिखती हैं।

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी
तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी
जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने
पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन
में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में,
वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी
कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी
वाली रानी थी।।[7]

सुभद्रा कुमारी चौहान के विमर्श से आगे बढ़ने पर हमें विमर्श का एक नया रूप दिखता है। यह विमर्श पश्चिम से आयातित विमर्श का एक हिस्सा है। कथित रूप से प्रगतिशील साहित्य एक पार्टी विशेष का समर्थन पत्र बनकर रह गया और इसका प्रभाव स्त्री कविता पर भी पड़ा। 'प्रगतिशील कविता का सौंदर्य मूल्य' में अजय तिवारी प्रगतिशीलता के तेजी से प्रसार के विषय में लिखते हैं, "श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा की नजर में प्रगतिवाद के सर्वव्यापी प्रभाव का कारण दूसरा है: हिंदी

साहित्य में कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्यिक दल प्रगतिशील लेखक संघ ने दस वर्षो तक ऐसा आंदोलन चलाया था कि जिसके परिणामस्वरुप हिंदी के अनेक साहित्यकारों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने को प्रमाणित करने के लिए किसी न किसी रूप में प्रगतिशील लेखक संघ से अपना संबंध स्थापित कर लें। इस भागदौड़ में सभी शामिल थे, यहाँ तक कि पन्त, निराला, महादेवी वर्मा भी इससे नहीं बच सके। प्रगतिशील लेखक संघ के पास हंस, नया साहित्य, जनयुग, वीणा, वसुधा आदि अनेक पत्रिकाएं थीं, जिनके माध्यम से लेखकों का प्रचार प्रसार तो होता ही था, उनको साहित्यिक प्रतिष्ठता भी मिलती थी।"[8]

जैसा इस कथन से स्पष्ट होता है, वैसा हम स्त्री विमर्श की कविताओं में देखते भी हैं कि कविता से कल्पना का ह्रास होने लगा, यथार्थ परक कविताएँ होने लगीं। कविताओं में पुरुष विरोध सबसे मुख्य स्वर हो गया। जो कविता पहले हृदय को आनंद देने के लिए रची जाती थी, वह मात्र पुरुष विरोध में बदल कर रह गयी। उसमें एक प्रतिशोध आ गया। उसमें कथित पितृसत्ता का विरोध आ गया। वह भारत जिसमें पितृसत्ता नामक कोई अवधारणा ही नहीं थी, जहाँ पर समाज के कल्याण के लिए कविता रची जाती थीं, वहां पर अब मात्र परिवार की व्यवस्था का विरोध और पुरुष का विरोध ही कविता हो गया। एक कवयित्री हैं कात्यायनी, इन्होनें कविता के बहाने स्त्री विमर्श किया है, परन्तु उनके स्त्री विमर्श में पारिवारिक व्यवस्था के प्रति द्रोह अधिक व्यक्त होता है। उन दिनों कविता में एक ऐसी अवधारणा का विकास हुआ कि स्त्री के लिए घर अर्थात शोषण का क्षेत्र, और उसे वह छोड़कर भाग जाना चाहिए, स्त्रियों की दुनिया में। एक ऐसी कृत्रिम अवधारणा बनाई गई कि घर ही है जहाँ से शोषण होता है, जबकि भारतीय दर्शन यह कहता है कि यह परिवार ही है जो शिशु की प्रथम पाठशाला है, किसी भी राष्ट्र की प्रथम इकाई परिवार ही है। तथाकथित प्रगतिशील एवं जनवादी कविताओं में इस प्रथम इकाई को ही छिन्न भिन्न कर दिया। कविता के बहाने समाज की रीढ़ पर प्रहार किए गए। कात्यायनी लिखती हैं:

कविताओं में पुरुष विरोध सबसे मुख्य स्वर हो गया। जो कविता पहले हृदय को आनंद देने के लिए रची जाती थी, वह मात्र पुरुष विरोध में बदल कर रह गयी। उसमें एक प्रतिशोध आ गया। उसमें कथित पितृसत्ता का विरोध आ गया। वह भारत जिसमें पितृसत्ता नामक कोई अवधारणा ही नहीं थी, जहाँ पर समाज के कल्याण के लिए कविता रची जाती थीं, वहां पर अब मात्र परिवार की व्यवस्था का विरोध और पुरुष का विरोध ही कविता हो गया

वहां एक औरत रहती रही,
घर को हिफाजत के साथ घर बनाए हुए,
उसे भूतों का डेरा बनने से जतनपूर्वक बचाते हुए,
घर में सुरक्षापूर्वक
होने का अहसास बस एक
बेहद नशीली शराब की तरह पीती रही,
वहां गैस थी, मिक्सी थी, मसालदानी थी।
सिंक, वाशबेसिन,
सैनिफ्रेश-ओडोनिल और मेहंदी थी।[9]

भारतीय अवधारणा के विरोध में लिखी गयी इन कविताओं में सौन्दर्य, जो कि कविता का सबसे मूल तत्व था, वह खोता रहा। एवं यह कविताएँ कहीं किसी न किसी किताबों में सिमट कर रह गई जन कविता नहीं बन पाई।

मम्मट ने कहा था कि
"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावन्लंक्रती पुन: क्वापि"

अर्थात दोष रहित और गुण और अलंकार सहित शब्दार्थ का नाम काव्य है। कहीं कहीं अलंकर स्फुट न होने पर दोषरहित व अलंकार सहित शब्दार्थ काव्य कहे जा सकते हैं।[10]

पाश्चात्य काव्यशास्त्र ने भी कविता में सौंदर्य को प्रधानता दी थी, जिसके कारण कविता आम आदमी की पीड़ा एवं हर्ष दोनों ही मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती थी। परंतु प्रगतिशील एवं जनवादी कविता में परंपरागत सौंदर्य को एक तरफ रख दिया गया। इन कविताओं को पढने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह समाज के विरुद्ध स्त्री को रख रही हैं। ऐसी ही कुछ कविताएँ हैं:

ममता कालिया
एक नदी की तरह
सीख गई है घरेलू औरत
दोनों हाथों में बर्तन थाम
चौके से बैठक तक लपकना
जरा भी लड़खड़ाए बिना

एक सांस में वह चढ़ जाती है सीढ़ियां
और घुस जाती है लोकल में
धक्का मुक्की की परवाह किए बिना
राशन की कतार उसे कभी लंबी नहीं लगी
रिक्शा न मिले
तो दोनों हाथों में झोले लटका
वह पहुंच जाती है अपने घर
एक भी बार पसीना पोंछे बिना

एक कटोरी दही से तीन कटोरी रायता
बना लेती है खांटी घरेलू औरत
पाव भर कद्दू में घर भर को खिला लेती है
जरा भी घबराए बिना![11]

इस कविता में स्त्री की पीड़ा या संघर्ष से कहीं अधिक परिवार की परंपरा का विरोध परिलक्षित हो रहा है। इस कविता में विमर्श उत्पन्न होता है वह सूर्या सावित्री के उस विमर्श से सर्वथा विपरीत है जिसमें स्त्री को गृहलक्ष्मी मानते हुए उसके वैभव की व्याख्या की गई थी। इस कविता में यथार्थ है, इस कविता में सौंदर्य नहीं है, मात्र घटनाओं का वर्णन है। ऋग्वेद में सूर्यासावित्री ने विवाह संबंधी सूक्तों की रचना की थी। स्त्री एवं पुरुष के एक साथ जीवन जीने एवं एक साथ वृद्धावस्था में कदम रखने की कामना के मन्त्र सूर्या सावित्री ने रचे हैं। वह लिखती हैं

आ न: प्रजां जन्यातु प्रजापति राज्ररसाय

सम्नक्त्वर्यमा
अदुर्मंगली: पतिलोकमा विशु शं नो भव
द्विपदे शम् चतुष्पदे ।
(ऋग्वेद 10 मंडल सूक्त 85. मन्त्र 43)

अर्थात पति पत्नी द्वारा प्रजापति से मात्र अच्छी संतान की कामना ही नहीं है अपितु वृद्ध होने पर अर्यमा से रक्षा की भी प्रार्थना है, इसके साथ ही हर पशु के कल्याण की भी कामना है।

परिवार को लेकर इस सूक्त में एक अवधारणा है, जबकि जो कथित प्रगतिशील स्त्री कविताएँ हैं, उनमें मात्र घटनाओं का वर्णन है या फिर परिवार नामक इकाई का विरोध।

ऐसी ही एक और रचनाकार हैं अनामिका। इनकी कविताओं में स्त्री विमर्श परिपक्व रूप से परिलक्षित होता है। पूर्णग्रहण कविता में वह दो बहनों के माध्यम से स्त्री पीड़ा को बेहद अनूठे तरीके से प्रस्तुत करती हैं, एवं कुरीतियों के दबाव में बदले समाज ने स्त्रियों पर क्या अत्याचार किए हैं, वह बताती हैं:

पूर्णग्रहण काल था ये!
बरसों की बिछड़ी हुई दो वृद्ध बहनें -
चाँद और धरती-
आलिंगनबद्ध खड़ी थीं -
निश्चल!
ग्रहण नहाने आई थीं औरतें
सरयू के तट पर
गठरी उनके दुखों की
उनकी गोद में पड़ी थी!"

अनामिका स्त्री की विराटता का अहसास कराती हैं। वह शीर्ष की टहनी कविता में लिखती हैं

"*जड़ कहो हमको*
मगर हम जड़ नहीं हैं
काल की बरगद जटाएं हमीं में आकर
सदा से लय हुई हैं"[12]

प्रगतिशील या कहें आधुनिक स्त्री विमर्श में सविता सिंह का भी नाम महत्वपूर्ण है। वह इन दिनों लिख भी रही हैं। परंतु उनका भी दृष्टिकोण एवं जो उनकी कविता की सृष्टि है वह कहीं से भी समग्र दृष्टि वाली दृष्टि नहीं दिखती है। पीड़ा को उठाते हुए वह पूरे भारतीय समाज को कठघरे में खड़ा कर देती हैं। जबकि कविता का उद्देश्य कहीं से भी पूरे समाज को कठघरे में खड़ा करना नहीं होता है।

सत्तर के दशक के बाद के स्त्री विमर्श की एक और मुख्य बात परिलक्षित होती है। जहाँ स्त्रियों में देह विमर्श एवं परिवार तथा पुरुषों का विरोध मुख्य था, वहीं वह कथित धर्मनिरपेक्षता के साथ भी खड़ी दिखाई दीं। वह धर्मनिरपेक्षता जो अयोध्या में विवादित ढाँचे के गिरने बाद एकदम से उत्पन्न हुई। उससे पूर्व भारत में जो हिंसा हो रही थी, कश्मीर पर बहुसंख्यक समाज वहां के अल्पसंख्यक समाज अर्थात कश्मीरी पंडितों पर जो अत्याचार कर रहा था, वह सब उनकी रचनाओं में नहीं मिलता है। हाँ, अयोध्या, गाजा, फिलिस्तीन, पर काफी कविताएँ लिखी गईं। एकतरफा दर्द उन्होंने भी अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह समग्र पीड़ा को महसूस करने में विफल रहीं या फिर उन्होंने स्वयं ही नहीं देखा।

निर्मला गर्ग की गाजा पट्टी कविता यदि हम देखते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने इजरायल को काठ का कहा है, जिसे किसी की परवाह नहीं है।

गजा पट्टी रक्त से सनी है
खुले पड़े हैं अनगिनत जख़्म
अरब सागर अपनी चौड़ी तर्जनी से बरज रहा है
इस्त्राइल को किसी की परवाह नहीं है
काठ का हो गया है
उसका हृदय
ताकत के नशे में वह इतिहास को भूल रहा है
अभागे फिलिस्तीनी अपनी मिट्टी से
बेदख़ल किए गए
उनके घर के दरवाजे
उनके चाँद तारे
सब पर कब्जा कर लिया
दुनियाभर से आए यहूदियों ने[13]

इस कविता में वह यहूदियों के प्रति हुए अत्याचार या फिलिस्तीन क्या कर रहा है, इस विषय पर कुछ नहीं लिखती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह कविता या तो आधी अधूरी जानकारी के साथ लिखी गई है, या फिर एजेंडा के तहत।

इन दोनों ही कविताओं में एकतरफा विमर्श परिलक्षित होता है एवं एक बात और उभर कर आती है कि जो भी अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर लिखी गई कविताएँ हैं, उनपर कहीं न कहीं व्यक्तिगत राजनीतिक दुराग्रह हावी रहे हैं। यहूदियों की पीड़ा को किसलिए नहीं समझा गया या अयोध्या की पहचान की पीड़ा को क्यों नहीं समझा गया। प्रथम नजर में यह उस आयातित विमर्श का परिणाम मालूम होता है जो यह कहता है कि मनु द्वारा बसाई गई अयोध्या एक मिथक है, एवं इतिहास का अर्थ मात्र मुगल इतिहास है। यह कविताएँ जमीन की कविताएँ न होकर डिजाइनर विमर्श की कविताएँ हैं, जो स्त्री रचनाकारों की अंतरराष्ट्रीय समझ पर कहीं न कहीं एक प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। कहीं न कहीं भारतीयता से दुराव भी इसमें परिलक्षित होता है। इसी के साथ एक और मुद्दा जिस पर कथित प्रगतिशील लेखिकाओं ने कविताएँ लिखी हैं, वह है 2002 के गुजरात के दंगे। ऐसा प्रतीत होता है जैसे दंगों पर जो राजनीति हुई, उसने स्त्री विमर्श को प्रभावित करते हुए एक नया विषय दे दिया। जो एक बार फिर से एजेंडा प्रेरित अधिक लगता है, एजेंडा इसे इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि इन कविताओं में हिंदुत्व को और सनातन को अर्थात भारत की पूरी

जहाँ स्त्रियों में देह विमर्श एवं परिवार तथा पुरुषों का विरोध मुख्य था, वहीं वह कथित धर्मनिरपेक्षता के साथ भी खड़ी दिखाई दीं। वह धर्मनिरपेक्षता जो अयोध्या में विवादित ढाँचे के गिरने बाद एकदम से उत्पन्न हुई। उससे पूर्व भारत में जो हिंसा हो रही थी, कश्मीर पर बहुसंख्यक समाज वहां के अल्पसंख्यक समाज अर्थात कश्मीरी पंडितों पर जो अत्याचार कर रहा था, वह सब उनकी रचनाओं में नहीं मिलता है। हाँ, अयोध्या, गाजा, फिलिस्तीन, पर काफी कविताएँ लिखी गई

की पूरी संस्कृति को ही निशाने पर ले लिया गया है। उन्हीं लोगों को आदर्श मानकर कविताएँ लिखी गई हैं जिन्होंने भारत की अवधारणा पर प्रश्न उठाए हैं। एक बेहद ही चर्चित प्रगतिशील कवयित्री सरला माहेश्वरी ने लिखा है:

देखो !
आत्मा की अदालत, सच की अदालत भी
कह रही है तुमसे
लिखो पेरुमल मुरगन लिखो ! लिखो !!
आओ ! हम हुकूमत को डराएँ
"कि एक दिन कमजोर और निहत्थे लोग
उससे डरना छोड़ देंगे।"
देखो ! एक ही मंच पर
मुस्कुरा रहें हैं कुतुबुद्दीन और अशोक मोची!
गुजरात दंगों का ख़ौफनाक चेहरा !
आज उस मोची के हाथ में वो खूनी लोहे की रॉड नहीं
गुलाब का फूल है !
बोल रहा है सॉरी !!
डर रही है हुकूमत !![14]

भारत में सत्ता का अर्थ सदैव कर्तव्य बोध रहता था। राजा के लिए व्यक्तिगत कुछ नहीं होता, यह सिद्धांत रामायण से लेकर महाभारत तक है। राजा राम भी अपनी प्रजा की संतुष्टि के लिए अपनी स्त्री को त्याग देते हैं, महाभारत में भीष्म भी युधिष्ठिर से प्रजा को सर्वोच्च मानने के लिए कहते हैं। अशोक से लेकर हर्षवर्धन तक कल्याणकारी राजतंत्र रहा, फिर हुकूमत को डराने जैसा विमर्श कहाँ से आया? जाहिर है कि यह विमर्श अंग्रेजों के काल के बाद की उपज है। इसे औपनिवेशिक मिथकों पर उपजा हुआ स्त्री विमर्श कह सकते हैं, जिसमें भारत की मूल अवधारणाओं को ही पलट कर रख दिया है।

जिन स्त्रियों का नाम सबसे मुखर रहा, जिन्हें प्रतिनिधि बताया गया, उन सभी ने परम्परा पर प्रहार किया एवं इन कविताओं को देखकर बार बार लगता है कि यह सब एजेंडे के अनुसार ही लिखी गई।

स्त्री विमर्श में यदि हम शहर से हटकर गावों की बात करते हैं और वह भी आदिवासियों के गावों की, तो हमें ज्ञात होगा कि वहां पर विमर्श अपने सबसे सशक्त रूप में सामने आया है। वहां पर वह जमीनी विमर्श करता है। यथार्थ की जमीन की ऐसी ही एक रचनाकार हैं निर्मला पुतुल। उन्होंने आदिवासी स्त्रियों पर तो लिखा ही है परंतु स्त्री की जो सदियों से चली आ रही परंपरागत पीड़ा है, अर्थात घर से विवाह के बाद विदा होना, उस पर उन्होंने एक बेहद मार्मिक कविता लिखी है, जो उसी विमर्श को स्थापित करती हुई कविता है जो विमर्श रोमशा और सूर्या सावित्री ने आरंभ किया था। 'वह लिखती हैं

बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने ख़ातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें...

इस कविता में तमाम बातें हैं कि कहाँ नहीं ब्याहना, मगर ब्याहना कहाँ हैं यह बिंदु महत्वपूर्ण है, वह लिखती हैं आगे

उसी के संग ब्याहना जो
कबूतर के जोड़े और पंडुक पक्षी की तरह
रहे हरदम साथ
घर-बाहर खेतों में काम करने से लेकर
रात सुख-दु:ख बाँटने तक
चुनना वर ऐसा
जो बजाता हों बाँसुरी सुरीली
और ढोल-मांदल बजाने में हो पारंगत
बसंत के दिनों में ला सके जो रोज
मेरे जूड़े की ख़ातिर पलाश के फूल
जिससे खाया नहीं जाए
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे !!"[15]

यह कविता एक सहज स्त्री स्वर है, जो सदियों से चली आ रही यह परंपरा भी नहीं तोड़ना चाहती कि वह अपने घर परिवार की मर्जी से विवाह नहीं करेगी, और वह दहेज, शहरीकरण, अंधे विकास से भी दूर रहना चाहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता और कहानी दोनों में ही हमें भिन्न भिन्न स्त्री स्वर, समय के अनुसार भिन्न स्त्री विमर्श प्राप्त होता है। यह यात्रा चेतना की यात्रा है। यह यात्रा स्त्री ज्ञान की यात्रा है। यह यात्रा अपने तमाम उतार चढ़ावों के साथ आज भी जारी है। Ⓜ

संदर्भ:

1. http://hindinest.com/visheshank/03VNagrik/VNagrik05.htm
2. https://www.hindisamay.com/content/406/1/%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A4%BE-%E0%A4%B6%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%BE-%E0%A4% 95%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE% E0%A4%81-%E0%A4%B8%E0%A4%B0%E0%A4%B9%E0%A4%A6-%E0%A4%95%E0%A5%87-%E0%A4%87%E0%A4%B8-%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%B0.cspx
3 *वनजा,* के. ईकोफेमिनिज्म-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 39.
4 *मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ* पुस्तक में लेखिका डॉ. सावित्री सिन्हा, पृष्ठ 47, हिंदी अनुसंधान परिषद, आत्मा राम एंड संस, दिल्ली 6
5 *मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ* पुस्तक में लेखिका डॉ. सावित्री सिन्हा, पृष्ठ 47, हिंदी अनुसंधान परिषद, आत्मा राम एंड संस, दिल्ली 6
6 *स्त्री कवि कौमुदी,* ज्योति प्रसाद मिश निर्मल, गांधी हिंदी पुस्तक भंडार, प्रयाग, 108
7 http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%9D%E0%A4%BE%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%80_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80_/_%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%AD%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A5%81%E0 %A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80_%E0%A4%9A%E0%A5%8C%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%A8
8 तिवारी अजय, प्रगतिशील कविता का सौन्दर्य-मूल्य, पृष्ठ 133,

9 *कात्यायनी*, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृष्ठ 67

10 शर्मा, देवदत्त 1980, काव्य और काव्य रूप, अलंकार प्रकाशन, झील नई दिल्ली पृ- 14

11 http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%B5_%E0%A4%AD%E0%A4%B0_%E0%A4%95%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%82_%E0%A4%B8%E0%A5%87_%E0%A4%AC%E0%A4%A8%E0%A4%BE_%E0%A4%B2%E0%A5%87%E0%A4%A4%E0%A5%80_%E0%A4%B9%E0%A5%88_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AF%E0%A4%A4%E0%A4%BE_/_%E0%A4%AE%E0%A4%AE%E0%A4%A4%E0%A4%BE_%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE

12 अनामिका, समय के शहर में, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 17

13 http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%97%E0%A4%9C%E0%A4%BC%E0%A4%BE_%E0%A4%AA%E0%A4%9F%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A5%80-1_/_%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%B2%E0%A4%BE_%E0%A4%97%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%97

14 https://vishwahindijan.blogspot.com/2016/10/blog-post_9.html

15 https://samalochan.blogspot.com/2012/01/blog-post_08.html

सर्वगुणसंपन्ना साध्वी अपाला

ऋक संहिता के अष्टम मंडल के 91वें सूक्त की द्रष्ट्री ब्रह्मवादिनी अपाला है। अपनी तपश्चर्या से अपाला से सुपाला बनने वाली इस कन्यारत्न ने उपर्युक्त सूक्त के सातों मंत्रों का साक्षात्कार किया है। इस बात की पुष्टि सातवें मंत्र से होती है, जिसमें मंत्र द्रष्ट्री ने अपने नामोच्चारण के साथ इंद्र की स्तुति करते हुए कृतज्ञता व्यक्त की है - सोमरसपायी इंद्र ने प्रसन्न होकर त्वचादोष कोढ़ को दूर करके अपाला के शरीर को सूर्य के समान देदीप्यमान कर दिया है। इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि उपर्युक्त संपूर्ण सूक्त की ऋषि अपाला ही है। इस कथन की पुष्टि वृहद्देवता (6/99/160), सायण भाष्य (8/11) और नीतिमंजरी (पृ. 278-81) से भी होती है। ऋग्वेदीय इस सूक्त में अपाला के वैदुष्य का पता चलता है, जिसके कारण वैदिक साहित्य में उसकी ख्याति है।

सायणाचार्य ने अपाला के जीवन-वृत्त पर विस्तृत प्रकाश डाला है। महर्षि अत्रि की कुटिया संतति के अभाव में सदा सूनी-सी रहती थी। महर्षि-दंपति की प्रबल इच्छा थी कि उनका घर पुत्र या पुत्री के जन्म से सनाथ हो जाए। प्रभु की कृपा से अत्रि के घर अपाला का आविर्भाव हुआ। अपाला का पाणिग्रहण ऋषि कृशाश्व से वैदिक विधि-विधान से संपन्न हुआ। अपाला के लिए नया घर भी स्वातंत्र्य और प्रसन्नता का आगार था। सब कुछ था, परंतु अपने पतिदेव का वह स्नेह और समादर प्राप्त न था, जिसके लिए प्रत्येक नारी लालायित रहती है। वेद-वेदांगों की विपुल ज्ञानराशि भी शरीर के बाह्यदोष के कारण अपाला को अपने पति का प्रेमपात्र नहीं बना सकी। यही सोचकर अपाला ने अपने को तपस्या की उष्णता से तपाने का निर्णय किया और वह इंद्र के आराधन में लग गई।

इस त्वचादोष (कोढ़) निवारण के पीछे तात्कालिक एक बड़ी सामाजिक समस्या का संकेत सन्निहित है, जो सर्वगुणसंपन्ना साध्वी अपाला को झकझोर देता है। अपने पिता महर्षि अत्रि की कुटिया को अपने कलनाद से निनादित करने वाले, अपने वैदूष्य से उस समय की वैदिक मंडली में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेने वाली, यह ऋषि कन्या अंततोगत्वा अपने बाह्य सौंदर्य के अभाव में अपने पति कृशाश्व के मन में कटुता के बीज वपन कर देती है।

वेद-वेदांगों का विपुल वैदुष्य भी बाहरी सौंदर्य के अभाव में निरर्थक है। यह सोचकर अपाला इंद्र की प्रसन्नता हेतु तपश्चर्या में लग जाती है। तपस्या में तल्लीन अपाला का जीवन उस समय की बाकी झाँकी है कि नारी समाज को कितनी स्वतंत्रता थी, अपने रूप को संवारने की। पति द्वारा पत्नी के त्यागे जाने का संकेत द्रष्टव्य है, जहाँ अपाला कहती है - पति द्वारा परित्यक्ता हम इंद्र से मिलेंगी।

संहिताकाल में कन्याओं का अपने मातृ-पितृ कुल के प्रति कितना आदर एवं ध्यान था, इसका मूल्यांकन अपाला द्वारा दृष्ट मंत्र 5 और 6 से किया जा सकता है, जब वे इंद्र से वरदान मांगते हुए कहती हैं - हे इंद्र, सर्वप्रथम मेरे पिता (अत्रि) के खल्वाट सिर पर केश हो जाएं, मेरे पिता के ऊसर खेत उपजाऊ हों। अंत में अपने शरीर के कुष्ठ को दूर करने की याचना करती है।

अपाला द्वारा दृष्ट अष्टम मंडल का 91वां सूक्त पंक्ति और अनुष्टुप छंद में निर्दिष्ट है। इस सूक्त से स्पष्ट है कि उस समय नारी-जीवन की अपनी पवित्रता थी, जिसके बल से नारी, पुरुष-वर्ग की उपेक्षा का उत्तर देने में अबला नहीं, सबला मानी जाती थी। अपाला ने अपने पिता के संतृप्त हृदय को जहां अपनी अगाध ज्ञान जलराशि में निमग्न कर शांत अकिया, वहीं उसने अपने पतिदेव के इस भ्रम को भी दूर कर दिया कि नारी नर के बिना नगण्य है। Ⓜ

साभार : [शर्मा, डॉ. मालती, *वैदिक संहिताओं में नारी*, प्रकाशन: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (1990), पृ. 122-125 एवं 156-157]

डॉ. शांति जैन

अहल्या और आज की स्त्री

सृष्टि के आरंभ से ही नारी सहिष्णुता की जीवंत मूर्ति बनी रही और इसी कारण वह बन गई सर्वसहा धरती धूप, वर्षा, पाले को झेलती हुई। इसके विपरीत पुरुष बन गया आकाश उन्मुक्त, स्वच्छंद और विस्तृत। उसने अंगार बरसाए, धरती ने अपने करुणा जल से शीतल किया। उसने मूसलाधार वर्षा की, धरणी उससे रस लेकर अन्नपूर्णा बनी। आकाश ने शीतलहर बरसाई, धरती ने उसे अपने स्नेह की ऊष्मा दी। नारी की प्रकृति ऐसी है किन्तु उसकी नियति ऐसी क्यों? जब कि वह शिव की शक्ति है। पुरुष की प्रिय अर्द्धांगिनी है। अपनी सेवा, करुणा प्रेम से खींचकर वह पुरुष को वल देती है। वह है तो पुरुष की पुरुषत्व है। फिर यह निरीहता, यह अन्याय नारी के हिस्से में क्यों?

नारी एक नदी है, जो युगों से कई लहरों के रूप में उठती, गिरती आई है। वह अतीत में थी वर्तमान में है और अनागत में भी कई अभिशप्ताओं, उत्पीड़िताओं के रुप में विद्यमान होगी। सीता का निष्कासन, उर्मिला का विरह, द्रौपदी का अपमान, यशोधरा का परित्याग जैसे अनेक दृष्टांत हैं। ऐसी ही एक अभिशप्त नारी है - अहल्या।

पुराणों में अहल्या की कथा कई रुपों में प्रचलित है। भागवत पुराण के अनुसार अहल्या मुद्गल की यमज सन्तान थी जबकि विष्णुपुराण के अनुसार वह मुद्गल की पौत्री और राजा वृहदश्व की पुत्री थी।[1] अहल्या का गौतम ऋषि से विवाह हुआ था और उसे शतानन्द नाम का पुत्र था।[2] ब्रह्मपुराण के अनुसार अहल्या ब्रह्मा की मानसकन्या थी जिसे उन्होंने पालन-पोषण हेतु गौतम ऋषि को सौंपा था।

विवाह योग्य होने पर ब्रह्मा ने यह शर्त रखी थी कि जो दो बार सप्तद्वीपा पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले लौटेगा, उसी से अहल्या का विवाह होगा। वरुण, अग्नि, इंद्र आदि देवता पृथ्वी की परिक्रमा करने चले।

इधर गौतम ने अर्द्धप्रसूता कामधेनु और शिव की दो बार परिक्रमा की जिसका फल सप्तद्वीपा पृथ्वी की परिक्रमा के समकक्ष है। और इस प्रकार अहल्या गौतम की भार्या बनी।[3] इंद्र ने छद्मवेष धारण कर अहल्या का शीलभंग किया। यह ज्ञात होने पर गौतम ने अहल्या एवं इंद्र दोनों को शाप दिया। वाल्मीकि रामायण के अनुसार अहल्या को सहस्र वर्षों तक राख के ढेर में पड़ी रहने का शाप मिला था, जिसे वायु भक्षण कर, निराहार रहकर अदृश्य रूप में तब तक रहना था जब तक श्रीराम उस मार्ग से आकर अपनी चरण रज से उसे शापमुक्त नहीं करते।[4]

पुरुष को सदियों से नारी का संरक्षक माना गया है किंतु अजीब विडंबना है। जिसने मर्यादा पुरुषोत्तम बनकर संसार द्वारा आराधना के पुष्प स्वीकार किए, जिसने शिलामयी अभिशप्ता अहल्या का उद्धार किया, शबरी को शिखर का सम्मान दिया, उसी राम ने अपनी अर्द्धांगिनी को अलस गर्भावस्था में चुपचाप निष्कासित किया। सीता, जो शक्ति थी श्री राम की और जिसके बिना उनका रामत्व अधूरा था।

इसी क्रम में जब अहल्या पर दृष्टि पड़ती है तो सोचना पड़ता है कि वह मात्र गौतम की भार्या नहीं अपितु नारी की विडंबना की प्रतीक है। अहल्या के रूप में वह सहस्र वर्षों तक अदृश्य अभिशप्ता रही। एक शिला, जिसके अंदर मानवी का हृदय तो स्पंदित होता था किंतु जो अपनी व्यथा वेदना को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ थी।

अहल्या के जन्म के विषय में कई किवदंतियां हैं। यदि हम उसे ब्रह्मा की मानसकन्या के रूप

भारतीय वाङ्मय में स्त्रियों के एक से बढ़कर एक चरित्र हैं। गार्गी जैसी विदुषियां हैं तो सीता जैसी तापस और द्रौपदी जैसी तेजवान भी। इन्हीं में एक हैं अहल्या जिनके चरित्र को किसी एक परिभाषा के खाँचे में नहीं देखा जा सकता

में देखें तो सृष्टि के स्रष्टा की कन्या होकर वह तापसवन में पली बढ़ी। यदि उसे राजा वृहदश्व की पुत्री मानें तो वह राजकन्या किन परिस्थितियों में पालन-पोषण हेतु गौतम के आश्रम में भेजी गई और उसके विवाह का आयोजन राजपरिवार द्वारा न होकर ब्रह्मा के द्वारा ही क्यों हुआ? उसके विवाह को यदि स्वयंवर मान लिया जाए, जिसकी शर्त थी कि जो सप्तद्वीपा पृथ्वी की दो बार परिक्रमा कर लेगा, उसी से अहल्या का विवाह होगा तो अहल्या के स्वयंवर के लिए कोई सभा क्यों नहीं सजी? अहल्या के वरण के लिए केवल देवतागण ने ही परीक्षा क्यों दी? कोई लौकिक पुरुष इस समारोह में सम्मिलित क्यों नहीं हुआ?

और सबसे बड़ी विडंबना यह कि अहल्या के प्रतिपालक गौतम ऋषि भी इस परीक्षा में शामिल हुए जबकि पालने वाला साक्षात् पिता तुल्य होता है। गौतम त्रषि के मन में अहल्या के प्रति यह आसक्ति अहल्या के पक्ष में बड़ी विकट और हृदय विदारक घटना है।

स्वयंवर सीता का हो, द्रौपदी या अहल्या का, सभी के विषय में एक बात तो तय है कि इसमें स्त्री स्वयंवरा होती ही नहीं, बल्कि उसे उसी पुरुष का वरण करना होता है जो स्वयंवर के पूर्व की गई प्रतिज्ञा या शर्त को पूर्ण करता है, और ऐसे पुरुष को वरण करना जब स्त्री के लिए सिद्ध है तो वह स्वयंवरा कैसे? वह तो जीती हुई एक वस्तु कहलाएगी। और इस स्थिति में स्त्री स्वयं वर चुनने को अधिकृत नहीं दिखती। हां, सही अर्थ में रघुवंश में स्वयंवरा इंदुमती इसका श्रेष्ठ उदाहरण है जहां उसके स्वयंवर में कोई प्रतिज्ञा नहीं थी। वह वर चुनने को सर्वथा स्वतंत्र थी -

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंपरासा नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रप्रेदे विवर्णभाव: स स भूमिपाल:।[5]

अहल्या के संदर्भ में जिस सप्तद्वीपा पृथ्वी की परिक्रमा की शर्त लगाई गई थी उसे पूरा करने इंद्र, वरुण, अग्नि, वायु जैसे देवता चले थे किंतु गौतम ऋषि ने सद्य: प्रसूता कामधेनु एवं शिव की परिक्रमा कर अहल्या को जीत लिया। यहां अहल्या की इच्छा अनिच्छा का तो प्रश्न ही नहीं था। गौतम के संरक्षण में अहल्या उन्हीं के आश्रम में पली बढ़ी किन्तु उसके लिए यह घटना कल्पनातीत और लज्जाजनक भी थी कि उसके परिपालक ही उसके जीवन सहचर बने। जिन गौतम ऋषि की गोद में अहल्या का बचपन बीता था, उन्हीं की अंकशायिनी बनना अहल्या के हृदय ने कैसे और किस विवशता में स्वीकार किया होगा, इसे कोई संवेदनशील हृदय ही अनुभव कर सकता है।

ऐसी मान्यता है कि पति-पत्नी का संबंध दैव सम्मत होता है किंतु यह भी कटु सत्य है कि विवाह संबंध में स्त्री की इच्छा अनिच्छा का कोई अर्थ नहीं होता, पुरुष का मन ही वहां प्रमुख होता है। आयु, रूप, रंग किसी भी दृष्टि से पुरुष की योग्यता अयोग्यता कोई मायने नहीं रखती। राजा शर्याति ने अपनी किशोरी पुत्री सुकन्या जर्जर वृद्ध च्यवन ऋषि को दे दी थी। अहल्या की स्थिति ऐसी ही है, जहां उसने गौतम को पति रूप में पाने की कल्पना भी नहीं की होगी। फिर भी उसने इसे दैवेच्छा मानकर, जन्म जन्मांतर का संयोग मानकर स्वीकार ही नहीं किया बल्कि इस संबंध को उसने संसार की हर वस्तु से अधिक अभीप्सित भी मान लिया। अहल्या धरती थी न! सर्वसहा धरती, समस्त घात प्रतिघातों को सहन करने वाली। उसने इस संबंध को सकारात्मक रूप से यह सोचकर स्वीकार किया कि जिनकी साधना से इंद्र भी ईर्ष्या करते हैं, उन गौतम ऋषि की अर्द्धांगिनी बनकर उनकी साधना का आधा फल उसे मिल गया है, वह आज एक महान ऋषि की साधना का साध्य और उनकी चेतना का केंद्र बन गई है-

देख जिनकी साधना को, इन्द्र भी ईर्ष्यालु होते आज उनकी साधना का, अर्द्धफल मुझको मिला है, बिन तपस्या के सजग सौभाग्य है मेरा सृष्टि में मैं आज सबसे अधिक वैभव पा गई हूं। एक तापस ने मुझे निज साधना का साध्य माना।

सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी को मुक्तिपथ की बाधा माना था, किंतु गौतम ऋषि ने अपनी तपस्या के साथ अहल्या के प्रेम को पल्लवित किया। इस प्रेम को उन्होंने अपने तपोपंथ का दीप बनाया अपनी प्रार्थना का गीत बनाया और अपनी पूजावेदी की धूपबाती बनाया। गौतम ने उसे अपनी गौतमी बनाया। जिस गौतम को अनिंद्य सुंदरी अप्सराएं भी विचलित नहीं कर सकती थीं उनकी अर्द्धांगिनी बनने का उसे सौभाग्य मिला। राजसुख ऐश्वर्य से मिल सकता है किंतु अहल्या को तो करोड़ों मोतियों, माणिकों से अमूल्य तपस्या सहज सुलभ हो गई। किसी स्त्री का राजरानी होना सहज है किंतु किसी कठोर संयमी ऋषि की पत्नी बनना बहुत कठिन है। अहल्या को गौतम ऋषि उसके अनागत के अंधकार पर सूरज बनकर मिले। गौतम मात्र उसके जीवन सहचर नहीं, उसके गुरु और अभिभावक भी हुए।

अहल्या के इस चरित्र को देखकर हम उसे युग युगांतर से नारी सुलभ कोमलता, ममत्व, त्याग, समर्पण और पतिप्राणा के रूप में एक आदर्श स्त्री की भूमिका में पाते हैं। लेकिन आज के युग में जब नारी अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है, अपने स्वाभिमान की रक्षा का पाठ वह पढ़ चुकी है, उचित-अनुचित का निर्णय करने की उसमें क्षमता आ गई है, अपनी इच्छा के विरुद्ध होने वाले कार्य के विरोध में आवाज उठाने का साहस उसमें आ गया है, परिवार

सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी को मुक्तिपथ की बाधा माना था, किंतु गौतम ऋषि ने अपनी तपस्या के साथ अहल्या के प्रेम को पल्लवित किया। इस प्रेम को उन्होंने अपने तपोपंथ का दीप बनाया अपनी प्रार्थना का गीत बनाया और अपनी पूजावेदी की धूपबाती बनाया। गौतम ने उसे अपनी गौतमी बनाया। जिस गौतम को अनिंद्य सुंदरी अप्सराएं भी विचलित नहीं कर सकती थीं उनकी अर्द्धांगिनी बनने का उसे सौभाग्य मिला

और प्रत्येक कार्यक्षेत्र में वह सशक्त भूमिका निभा रही है, ऐसे में अहल्या आज की इस स्त्री की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। अहल्या का विवाह बेमेल और अनुचित था किंतु अहल्या ने असहमति की एक रेखा भी अपने चेहरे पर नहीं आने दी।

ईर्ष्यावश या अहल्या के प्रति आसक्ति के कारण इंद्र ने गौतम का रुप धारण कर अहल्या का शीलभंग किया। इस कुचक्र से अहल्या सर्वथा अनभिज्ञ थी, स्पष्ट है कि वह सर्वथा निर्दोष थी किंतु गौतम ने इंद्र के साथ अहल्या को भी शाप दिया और शाप भी कितना कठोर? एक सहस्र वर्ष तक अदृश्य रुप में शिला के रुप में रहने का। बाद में श्रीराम द्वारा उनके उद्धार की बात कही गई। गौतम के शाप के विरोध में अहल्या ने हल्का सा स्वर भी नहीं उठाया, उसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का अवसर भी नहीं मिला और राम द्वारा उद्धार किए जाने पर संभवत: गौतम ने उसे स्वीकार भी किया। अहल्या यहां मात्र एक निर्जीव वस्तु है जिसमें न अपनी इच्छा-अनिच्छा है, न संवेदना, न विरोध, न स्वाभिमान, बस वह जीवित होकर भी एक मूक शिला है।

आज घर-घर में अहल्या ओर सीता है, पर आज की अहल्या और सीता ने अपने जीवन में और समाज में एक नई भूमिका लिखी है। आज वह उन्मुक्त आकाश में विचरती है, आज वह अपने स्वाभिमान के साथ अपना भी सम्मान करना जानती है, अपने मन को न मानकर वह दृढ़ता से अपनी बात कहती है। वर्तमान युग की स्त्री कर्म के हर क्षेत्र में आज सक्रिय है। बड़ी से बड़ी और कठिन से कठिन सेवा को उसने चुनौती के साथ स्वीकार किया है। उसका अपना स्वर है, अपनी पहचान है।

आज की स्त्री न शिला बनेगी, न कोई अग्नि परीक्षा देगी, न ही घर से निष्कासित होगी क्योंकि जिस घर में वह रहती है, वह चाहे उसके माता-पिता का हो या पति का उस घर पर उसका बराबर का अधिकार है। दुनिया की कोई शक्ति उसे उसके हक से महरूम नहीं कर सकती। स्त्री केवल वस्तु नहीं, प्रखर चेतना युक्त बुद्धिस्वरूपा और शक्तिस्वरूपा है

आज की स्त्री न शिला बनेगी, न कोई अग्नि परीक्षा देगी, न ही घर से निष्कासित होगी क्योंकि जिस घर में वह रहती है, वह चाहे उसके माता-पिता का हो या पति का उस घर पर उसका बराबर का अधिकार है। दुनिया की कोई शक्ति उसे उसके हक से महरूम नहीं कर सकती। स्त्री केवल वस्तु नहीं, प्रखर चेतना युक्त बुद्धिस्वरूपा और शक्तिस्वरूपा है। पुरुष से उसकी प्रतिस्पर्धानहीं अपितु पुरुष की वह शक्ति, प्रेरणा और संजीवनी है। ऐसे में आज की स्त्री को सीता, अहल्या और द्रौपदी की एक नई गाथा लिखनी होगी और तद्नुसार अपनी सार्थक भूमिका निभानी होगी क्योंकि वह नई सदी की नारी है। राख दबी चिनगारी है। Ⓜ

संदर्भ

1. पौराणिक कोश-राणा प्रसाद शर्मा पृष्ठ - 41
2. चरित्र कोश चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा पृष्ठ-37
3. भारतीय मिथक कोश ख्र डॉ ऊषापुरी वाचस्पति पृ 24
4. बातभक्षा निराहारा तपन्ती भस्मशायिनी अदृश्या सर्वभूतानामश्रमेडसिमन वासिष्यसि। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 48/30
5. महाकवि कालिदासकृत रघुवंश महाकाव्यम 6/67

ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी गार्गी

गार्गी वाचक्नवी (लगभग 700 ईसा पूर्व का जन्म) एक प्राचीन भारतीय दार्शनिक थी। वैदिक साहित्य में उन्हें ब्रह्मविद्या के ज्ञान के कारण ब्रह्मवादिनी कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद के छठे और आठवें ब्राह्मण में, उनका नाम प्रमुख है। उन्होंने राजा जनक द्वारा आयोजित एक दार्शनिक शास्त्रार्थ में भाग लिया और संयम (आत्मा) के विषय पर अपने जटिल प्रश्नों से ऋषि याज्ञवल्क्य को चुनौती दी। ऋषि गर्ग के वंश में ऋषि वाचक्नु की सुपुत्री गार्गी, का नाम उसके पिता के नाम पर गार्गी वाचक्नवी हुआ। युवावस्था से ही वे वैदिक ग्रंथों में गहरी रूचि लेने लगी थीं। वह बहुत कम आयु में ही वेदों एवं उपनिषदों की ज्ञाता बन गई थीं। वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्यजी के साथ इनका अत्यंत रोचक शास्त्रार्थ है। एक बार महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानियों की परीक्षा के निमित्त एक सभा की और सुवर्ण की एक सहस्र सवत्सा गौएं बनाकर खडी कर दीं। उन्होंने सबसे कह दिया - जो ब्रह्मज्ञानी हों, वे इन्हें सजीव बनाकर ले जाएं। सबकी इच्छा हुई, किंतु आत्मश्लाघा के भय से कोई उठा नहीं। तब याज्ञवल्क्यजी ने अपने एक शिष्य से कहा- बेटा! इन गौओं को अपने यहां हांक ले चलो।

इतना सुनते ही सब ऋषि याज्ञवल्क्यजी से शास्त्रार्थ करने लगे। भगवान याज्ञवल्क्यजी ने सबके प्रश्नों का यथाविधि उत्तर दिया। उस सभा में ब्रह्मवादिनी गार्गी भी बुलाई गई थीं। सबके पश्चात् याज्ञवल्क्यजी से शास्त्रार्थ करने वे उठी। लंबी अवधि तक चले शास्त्रार्थ के बाद महर्षि याज्ञवक्ल्य ने यथार्थ सुख वेदांत तत्त्व समझाया, जिसे सुनकर गार्गी परम संतुष्ट हुई और सब ऋषियों से बोली-भगवन्! याज्ञवल्क्य यथार्थ में सच्चे ब्रह्मज्ञानी हैं। गौएं ले जाने का जो उन्होंने साहस किया वह उचित ही था। गार्गी परम विदुषी थीं। Ⓜ

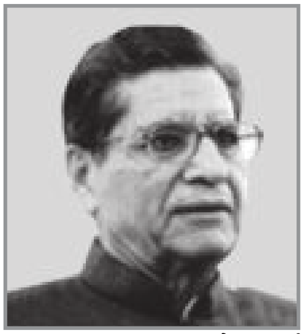

ब्रजकिशोर शर्मा

साहस की प्रतिमूर्ति माताजी

माताजी श्रीमती हीराबाई अइयर ने अपने समय के अनुसार उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बावजूद बहुत संकट के समय में भी उन्होंने शिक्षा का उपयोग अपनी संपन्नता का माध्यम बनाने के बजाय जनसेवा के लिए किया। उनका श्रम, साहस और धैर्य हर समय के मनुष्य के लिए अनुकरणीय है

माताजी हीराबाई अइयर का जन्म 24 सितंबर 1905 को भवानी में हुआ। यह स्थान तमिलनाडु में सेलम के निकट है। उन दिनों सेलम तत्कालीन मद्रास प्रेसिडेंसी का भाग था। उनका जन्म नाम पट्टम्माल था। उनके कुछ कुटुंबीजन उन्हें अन्नपूर्णा अम्माल भी कहते थे।

उनके पिताजी म्यांमार में माम्यो में सेना लेखा (मिलिटरी अकाउंट्स) विभाग में कार्यरत थे। तब म्यांमार भी ब्रिटेन के अधीन था और उसका शासन भारत (कोलकाता) से ही होता था। उनके पिताजी ने अधिवर्षिता की आयु के पूर्व ही सेवानिवृत्ति ले ली। उस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था। वे सपरिवार म्यांमार से भारत रवाना हो गए। यात्रा में ही श्रीमती हीराबाई की माताजी अस्वस्थ हो गईं और कोलकाता पहुंचने पर उनका देहावसान हो गया। उस समय श्रीमती हीराबाई की आयु 12 वर्ष के लगभग ही थी। उनके एक बड़े भाई थे जो उस समय 15-16 वर्ष के थे। उनके पिताजी ने यह उचित समझा कि उनके पुत्र का विवाह कर दिया जाए। जो पुत्रवधू आई वह श्रीमती हीराबाई की समवयस्क थी। ननद और भाभी का संबंध सखियों जैसा प्रगाढ़ और स्नेहपूर्ण था।

उनके पिताजी ने कुछ सोचकर अपनी पुत्री को महाराष्ट्र में हिंगणे स्थित आचार्य कर्वे विद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश दिलाया। वहां विद्यालय में उनका नाम हीराबाई लिखा गया। तभी से वे इसी नाम से विख्यात हो गईं। पुराने नाम 'पट्टम्माल' और 'अन्नपूर्णा' विस्मृत हो गए। नया नाम आधिकारिक हो गया। कुछ समय पश्चात् उनका परिवार लाहौर (अब पाकिस्तान में) चला गया। लाहौर से श्रीमती हीराबाई दिल्ली आईं। दिल्ली में श्रीमती हीराबाई ने 1924 में लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज में प्रवेश लिया। उस समय इस कालेज में एमबीबीएस की डिग्री नहीं दी जाती थी। एलएमपी का डिप्लोमा दिया जाता था (लाइसेंशिएट इन मेडिकल प्रैक्टिस) समस्त भारत में अधिकतर मेडिकल कालेज एलएमपी की उपाधि ही दिया करते थे।

1925 में श्रीमती हीराबाई के पिताजी की भेंट श्री वी पद्यमनाभ अइयर से हुई। श्री पद्मनाभ में आधुनिक शिक्षा के लिए लगन थी। उनके पिताजी उन्हें मंदिर में पुजारी बनाना चाहते थे और समझते थे कि अंग्रेजी शिक्षा आवश्यक नहीं है। किंतु पद्मनाभ धुन के पक्के थे। वे हाई स्कूल के बाद किसी को बताए बिना तमिलनाडु से काशी आ गए। वहां कठिन परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए उन्होंने कमच्छा के महाविद्यालय से इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की और आगे की पढ़ाई के लिए अमरीका चले गए। वहां से वे शुगर केमिस्ट की परीक्षा उत्तीर्ण करके आए। श्रीमती हीराबाई के पिताजी को श्री पद्मनाभ अपनी पुत्री के लिए योग्य वर प्रतीत हुए। उन्होंने श्री पद्मनाभ से कहा कि वे उनकी पुत्री से मिलें। श्रीमती हीराबाई और श्री पद्मनाभ की भेंट हुई और दोनों परस्पर विवाह बंधन में बंधने के लिए सहमत हो गए। शुगर केमिस्ट को तो शुगर कारखाने में ही रहना होता था। श्रीमती हीराबाई ने पति के साथ रहने के लिए अपनी मेडिकल की पढ़ाई छोड़ दी।

1926 में उन्होंने अपने पहले पुत्र को जन्म दिया। उनका नाम सारंगनाथ रखा गया। दूसरे पुत्र वेदी रामनारायण हुए। परिवार में वेदीजी के नाम से जाने जाते थे। परिवार में सबसे पहले इन्हीं का संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से आया। लखनऊ में रहते हुए वे संघ और समाज दोनों में लोकप्रिय और विख्यात थे।

इनके पश्चात् श्रीमती हीराबाई ने तीन पुत्रों को (शिवकुमार, पंढरीनाथ और पशुपतिनाथ)

तथा 1942 में एक पुत्री लक्ष्मी को जन्म दिया।

श्री पद्मनाभ चीनी कारखाने में कार्य करने के लिए म्यांमार में थे तब द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हो गया। जापानी सेना जब म्यांमार में प्रवेश कर गई तो वहां चीनी के कारखाने में कार्यरत भारतीय पैदल जंगलों में से यात्रा करते हुए भारत आए। श्रीमती हीराबाई और श्री पद्मनाभ चीनी कारखानों के कुछ और अधिकारियों और कर्मचारियों सहित अनेक कष्ट झेलते हुए सकुशल भारत आए।

1945 में श्री पद्मनाभ महाराष्ट्र में लक्ष्मीवाडी शुगर फैक्टरी में महाप्रबंधक और मुख्य रसायनज्ञ थे। यह कारखाना महाराष्ट्र में शिरडी से कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। उन दिनों उस क्षेत्र में हैजे का प्रकोप होना सामान्य था। श्री पद्मनाभ को भी हैजा (Cholera) हो गया और वे एकाएक 27 मई 1945 को परलोक प्रस्थान कर गए।

श्री पद्मनाभ उत्तर प्रदेश और बिहार की चीनी मिलों में चीनी निर्माण कार्य की अवधि में रहा करते थे इसलिए श्रीमती हीराबाई बच्चों के साथ लखनऊ में रहा करती थीं। मृत्यु के समय उनकी मृत्युशय्या के पास उनके द्वितीय पुत्र 17 वर्षीय वेदीजी ही थे। श्रीमती हीराबाई की आयु तब 40 वर्ष की थी।

29 मई 1945 को उन्हें उनके पुत्र वेदीजी का भेजा तार मिला कि पिताजी गंभीर रूप से बीमार हैं। वे मन ही मन भगवान से प्रार्थना करते हुए लक्ष्मीवाडी जाने की तैयारी करने लगीं। तभी कुछ घंटे बाद दूसरा तार आ गया कि पिताजी का स्वर्गवास हो गया। इस विकट परिस्थिति में माताजी ने धैर्य धारण किए रखा, रोना-धोना छोड़कर यात्रा की तैयारी की। उन्हें अपने साथ चार बच्चों को ले जाना था। (वेदीजी के साथ 9 वर्ष के शिव कुमार पहले से ही फैक्टरी में थे।) सबसे छोटी पुत्री लक्ष्मी तीन वर्ष की थी।

माताजी ने अपने बच्चों को कुछ नहीं बताया और यह प्रकट नहीं होने दिया कि इतनी बड़ी दुर्घटना हो गई है। अपार धैर्य और साहस रखते हुए यात्रा प्रारंभ की। द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। यातायात के साधन सीमित थे। दो दिन और दो रात्रि की यात्रा थी। चार बच्चों के साथ सामान लेकर गाड़ियां बदल बदलकर यात्रा करना था। मार्ग में बच्चों के भोजन और पानी की व्यवस्था करनी थी। ग्रीष्मऋतु का क्रूरतम रूप समक्ष था।

श्री पद्मनाभ ने अपने जीवन में कभी धन संग्रह नहीं किया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय उनकी मातृ संस्था थी। उन्होंने अपने बैंक को यह निर्देश दे दिया था कि महीने की 10 तारीख को जो भी रकम उनके खाते में हो उसे विश्वविद्यालय को अंतरित कर दिया जाए। उन दिनों चीनी कारखानों में विशेषज्ञों का वेतनमान बहुत अधिक था इसलिए उन्हें भविष्य की तनिक भी चिंता नहीं थी

कोपरगांव स्टेशन पर माताजी मध्यरात्रि में पहुंची। वहां से लक्ष्मीवाडी शुगर फैक्टरी 14 मील थी। उस मार्ग पर तांगे से ही पहुंच सकते थे। बसें दिन में चलती थीं परंतु उनकी संख्या बहुत कम थी। पेट्रोल की कमी थी। तब डीजल की बसें प्रारंभ नहीं हुई थीं। उस नीरव निर्जन स्थान में उनका एकमात्र सहारा उनका ज्येष्ठ पुत्र था जो 19 वर्ष का था। सौभाग्य से उनका तार समय से फैक्टरी पहुंच गया था। रात्रि में ही रेलेवे स्टेशन पर दो तांगे पहुंच गए।

लखनऊ से चलते समय माताजी के मन में यह भाव आया था कि हो सकता है मुझे शीघ्र बुलाने के लिए दूसरा तार भेजा गया हो। कोपरगांव स्टेशन में बिजली नहीं थी। लालटेन के प्रकाश में जब उनके दो पुत्र उन्हें दिखाई पड़े तो उन्होंने यह समझ लिया कि उनके पति नहीं रहे। यदि वे अस्वस्थ होते तो एक बेटा तो उनके पास ही रहता।

मार्ग में माताजी ने वेदीजी से सब जानकारी ली। संयम नहीं खोया। बड़े पुत्रों को बताया कि तुम्हारे पिता कितने दृढ़निश्चयी और चरित्रवान थे। उन्हीं के समान तुमको बनना है। तुम्हारे पिता को क्रोध शीघ्र आ जाता था किंतु तुम्हें क्रोध को नियंत्रित करना चाहिए। वे व्यवहारकुशल नहीं थे तुम लोगों को व्यवहारकुशल होना चाहिए।

श्री पद्मनाभ ने अपने जीवन में कभी धन संग्रह नहीं किया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय उनकी मातृ संस्था थी। उन्होंने अपने बैंक को यह निर्देश दे दिया था कि महीने की 10 तारीख को जो भी रकम उनके खाते में हो उसे विश्वविद्यालय को अंतरित कर दिया जाए। उन दिनों चीनी कारखानों में विशेषज्ञों का वेतनमान बहुत अधिक था इसलिए उन्हें भविष्य की तनिक भी चिंता नहीं थी।

इस वज्राघात से हीराबाई का पूरा संसार बदल गया किंतु उन्होंने साहस से काम लिया। लखनऊ में महिला कालेज में पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कार्य करने लगीं। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने ट्यूशन करके उन्हें आर्थिक सहयोग प्रदान किया। दूसरे पुत्र ने भी स्नातक होते ही नौकरी प्रारंभ कर दी। दोनों ने ही आगे चलकर बहुत यश कमाया।

1951 में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। 1952 के निर्वाचन में लखनऊ के स्थानीय कार्यकर्ताओं ने माताजी से सहायता ली। उस समय लखनऊ में महिला कार्यकर्त्री नाममात्र की थीं।

1952 के निर्वाचन के पश्चात् उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में जनसंघ की स्थापना का लक्ष्य रखा गया। साथ ही स्थान-स्थान पर सभाएं करके जनसंघ के घोषणा पत्र और भावी कार्यक्रमों से जनता को परिचित कराने की योजना बनाई गई।

उत्तर प्रदेश के लिए श्री राजकुमार एडवोकेट को अध्यक्ष और श्रीमती हीराबाई अइयर को उपाध्यक्ष बनाया गया। नानाजी देशमुख संगठन मंत्री बने।

नानाजी और माताजी ने उत्तर प्रदेश के लगभग सभी जिलों का दौरा किया और जिला इकाइयां स्थापित कीं। उन दिनों जनसंघ के नेता रेल में तृतीय श्रेणी में या बस से यात्रा करते थे। कुछ वर्षों बाद तृतीय श्रेणी समाप्त कर दी गई। तब आरक्षण भी नहीं होता था। तीसरी श्रेणी के डिब्बों में पंखे भी नहीं होते थे। डिब्बों में बैठने की

सीटें भी कष्टप्रद थीं, आरामदायक नहीं। इन सबकी चिंता किए बिना माताजी लगातार हर सप्ताह प्रवास करती रहीं।

माताजी तमिल, मराठी, पंजाबी, हिंदी और अंग्रेजी में संभाषण कर लेती थी। यही नहीं कभी-कभी अवधी भी बोलती थीं। इसलिए सभी वर्गो से तुरंत सामंजस्य स्थापित कर लेती थीं। उनमें पठन की रुचि भी थी किंतु अंग्रेजी और तमिल साहित्य ही पढ़ती थीं। आर्गनाइजर और आनंद विकटन (तमिल) की नियमित पाठक थीं।

1953 में गोहत्या विरोध सत्याग्रह हुआ। इसमें माताजी ने महिलाओं के जत्थे का नेतृत्व किया। लखनऊ की सविता बहन भी बहुत जुझारू कार्यकर्ता थीं। वे भी उनके साथ थीं। इस सत्याग्रह में बड़ी संख्या में ग्रामीण महिलाओं ने भाग लिया। पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार करके लखनऊ से दूर ले जाकर छोड़ दिया। माताजी ने सूझबूझ से कार्यकर्ताओं से संपर्क करके उन्हें इस कठिनाई से निकाला। पुनः सत्याग्रह करने पर पुलिस वाले तेज पानी की धार महिलाओं पर डालते थे। तब माताजी धार के वार को अपनी पीठ से रोकती थीं जिससे अन्य महिलाओं की रक्षा हो। अनेक बार दर्शक भी जोश में आकर माताजी का साथ देने लगते थे।

इसी वर्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर में प्रवेश पर लगाई गई रोक का विरोध करने के लिए बिना परमिट के कश्मीर में प्रवेश करने का निर्णय किया। इस सत्याग्रह में उनके साथ जो लोग थे उनमें श्री बलराज मधोक, श्री अटल बिहारी वाजपेई, वैद्य गुरुदत्त के साथ माताजी हीराबाई अइयर भी थीं। इस जत्थे में कुछ और लोग भी थे। माताजी को फीरोजपुर के कारागार में लगभग 6 मास रखा गया।

1954 में अनाज की कमी थी। बाजार में और राशन की दुकानों में गेहूं, चावल आदि नहीं मिलते थे। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की सरकार थी। सभी अन्य दलों ने इस स्थिति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए संयुक्त सत्याग्रह किया। माताजी इसमें अग्रणी जत्थे में थीं।

1952 से ही माताजी ने अपने को जनसंघ का पूर्णकालिक कार्यकर्ता बना रखा था। अन्य सामाजिक संस्थाओं में भी माताजी का पर्याप्त योगदान रहता था। स्थानीय आर्य समाज में भी ये सहयोग करती थी। आल इंडिया विमेंस कान्फ्रेंस उस समय उच्चवर्ग महिलाओं की संस्था थी। बेगम वजीर हसन उसकी अध्यक्ष थीं। बेगम साहिबा के पुत्र उत्तर प्रदेश में मंत्री थे। रानी रामकुमार भार्गव भी इस संस्था में थीं। इस संस्था की उपाध्यक्ष माताजी हीराबाई अइयर थीं।

लखनऊ में साधारणजन भी माताजी से मिलने आते थे। नरही और उसके आसपास के लोग तो अपनी घरेलू समस्याओं पर भी उनकी सलाह और सहायता लेने के लिए आया करते थे। माताजी के घर में सबका स्वागत था।

लखनऊ के कार्यकर्ता जैसे श्री जे. एच. गोविंदराम, जे. रूपानी, राधेश्याम कपूर, कृष्णगोपाल कलंत्री, खन्नाजी, रामनाथ भल्ला, महत्तम राय, बलदेवराज वहल, बसंतलाल गुप्ता, ब्रजमोहन सक्सेना, रमेशचंद शर्मा आदि उन्हें अपने परिवार का अंग ही मानते थे।

संघ के स्वयंसेवक की तो सहायता वे उसी प्रकार करती थीं मानो वे उनके अपने ही पुत्र हों। एक स्वयंसेवक कुछ वर्ष प्रचारक रहे थे। लौटकर उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में पुनः अध्ययन आरंभ किया। उनके पास धन के सीमित साधन थे। जब अंतिम वर्ष एमएससी की परीक्षा आई तो उनके पास परीक्षा की फीस के लिए रुपए नहीं थे। वे अपनी माताजी का कोई आभूषण बेचने जा रहे थे। माताजी ने उन्हें रोका और उनकी आर्थिक सहायता की।

एक अन्य स्वयंसवेक को उन्होंने अपने एक समृद्ध व्यापारी परिवार में ट्यूटर रखवा दिया जिससे उसका खर्च निकल जाता था। बांदा के जनसंघ के कार्यकर्ता की पुत्री को जब विश्वविद्यालय के छात्रावास में स्थान नहीं मिला तो माताजी ने उसे अपने घर में ही रख लिया। इस प्रकार के अनेक उदारहण हैं।

1952 के पश्चात् उन्हें सभी लोग माताजी कहते थे। पूज्य गुरुजी और पूज्य प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी भी उन्हें माताजी कहते थे। माताजी उनसे भी निस्संकोच आत्मीयता से वार्तालाप करती थीं।

माताजी एक पुरानी कोठी में रहती थीं जिसका ड्राइंग रूम बड़ा था। उत्तर प्रदेश जनसंघ की कार्यकारिणी की बैठकें बहुधा उनके घर पर हो जाती थीं। जो दस बारह व्यक्ति उपस्थित रहते थे उनका भोजन माताजी घर में ही बना देती थीं। भोजन बहुत सादा होता था किंतु सभी लोग आनंदपूर्वक भोजन करते थे। घर में हुई बैठकों में अटलजी, दीनदयालजी, नानाजी, राजासाहब जौनपुर, राजकुमार एडवोकेट आदि उपस्थित रहते थे।

1960 में लखनऊ में बाढ़ आई। जिस मकान में माताजी रहती थीं वह गिर गया। रमेशचंद एडवोकेट उन्हें सपरिवार लालबाग स्थित अपनी कोठी में ले गए। 2-3 मास वहां रहकर माताजी दूसरे मकान में चली गईं। 1966 में माताजी दिल्ली आ गई क्योंकि उनके सबसे छोटे पुत्र और पुत्री दिल्ली रहने आ गए थे। उनसे बड़े चार तो पहले ही लखनऊ छोड़ चुके थे। वहां माडल हाउस में रहते हुए वे जनसंघ में सक्रिय रहीं।

कुछ ही वर्ष पश्चात् वे अपनी पुत्री लक्ष्मी के पास कैनेडा चली गईं। वहां उन्हें पक्षाघात हो गया। वे भारत लौट आईं। उनके पौत्र साईनाथ के विवाह के कुछ समय पश्चात् उनका अहमदाबाद में उनके द्वितीय पुत्र वेदीजी के घर पर 1983 में देहांत हो गया।

उनमें कभी यह लालसा नहीं थी कि

इसी वर्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर में प्रवेश पर लगाई गई रोक का विरोध करने के लिए बिना परमिट के कश्मीर में प्रवेश करने का निर्णय किया। इस सत्याग्रह में उनके साथ जो लोग थे उनमें श्री बलराज मधोक, श्री अटल बिहारी वाजपेई, वैद्य गुरुदत्त के साथ माताजी हीराबाई अइयर भी थीं। इस जत्थे में कुछ और लोग भी थे। माताजी को फीरोजपुर के कारागार में लगभग 6 मास रखा गया

भारतीय जनसंघ की स्थापना में उन्होंने जो अथक परिश्रम किया या विभिन्न आंदोलनों में उन्होंने जो जेल यात्राएं की थीं, ताड़नाएं सहीं उनके लिए उन्हें कोई पद या सम्मान चाहिए। सदा वे प्रसन्नचित्त रहती थीं। भजन गाना उन्हें अच्छा लगता था। जब मन होता था तो गाती थीं। उन दिनों फिल्म का एक भजन था 'वृंदावन का कृष्ण कन्हैया सबकी आंखों का तारा।' यही भजन इसी धुन पर तमिल में भी था। वे बड़ी तन्यमयता से इसे दोनों भाषाओं में गाती थीं। माताजी का जन्मदिन 24 सितंबर था और दीनदयालजी का 25 सितंबर। माताजी अपना जन्म दिवस नहीं मनाती थीं। किंतु जब सब लोग उनसे कहते थे कि माताजी आपका आज जन्मदिन है तो कहती थीं कि हां कल दीनदयालजी का है और फिर 29 को भगत सिंह का।

उनका परिचय और संबंध संघ के बहुत से प्रचारकों से था। भाऊरावजी देवरस, रज्जू भैया, माधवराव देशमुख, अनंतराव गोखले, जयगोपाल जी, राधाकृष्ण जी मलिक, रामनाथ जी भल्ला, लक्ष्मणराव भिडें आदि सबको स्नेह प्रदान करने वाली माताजी थीं।

उनमें कभी यह लालसा नहीं थी कि भारतीय जनसंघ की स्थापना में उन्होंने जो अथक परिश्रम किया या विभिन्न आंदोलनों में उन्होंने जो जेल यात्राएं की थीं, ताड़नाएं सहीं उनके लिए उन्हें कोई पद या सम्मान चाहिए। सदा वे प्रसन्नचित्त रहती थीं। भजन गाना उन्हें अच्छा लगता था। जब मन होता था तो गाती थीं। उन दिनों फिल्म का एक भजन था 'वृंदावन का कृष्ण कन्हैया सबकी आंखों का तारा...' यही भजन इसी धुन पर तमिल में भी था

यदि माताजी को उनके व्यवहार में कोई त्रुटि दिखाई पड़ती तो वे अत्यंत मृदु भाषा में संकेत कर देती थीं।

एक बार जनसंघ की बैठक से जब लौटीं तो उन्होंने दीनदयालजी के बारे में घर आकर यह टिप्पणी की। बैठक में सब लोग यह विचार करते हैं कि किस प्रकार हम अपने दल को आगे बढाएं। दीनदयालजी जब बोलते हैं तो यह बताते हैं कि किस प्रकार हमारा दल देश को आगे ले जाना चाहता है। दल में रहते हुए हम सब दल के बारे में सोचते हैं। दीनदयालजी देश के विषय में विचार करते हैं। अंत में सब उनकी बात मान जाते हैं।

इस देश में अनेक ऐसे कार्यकर्ता हुए हैं जिन्होंने भारतीय जनसंघ के प्रारंभिक वर्षों में कार्य किया जब सत्ता में आकर सुख भोगने की संभावना नगण्य थी। सरकार के विरोध में आने से असुविधा या कष्ट की संभावना स्पष्ट थी। फिर भी अनेक कार्यकर्ताओं ने नींव के पत्थर बनकर अपने जीवन के बहुमूल्य वर्ष देशप्रेम की भावना से प्रेरित होकर भारत माता को अर्पित कर दिए। माताजी हीराबाई अइयर ने भी शुद्ध रूप से देशभक्ति से प्रेरित होकर कार्य किया। अनेक लोगों को इस पथ पर चलने के लिए प्रेरणा दी, उनका मार्ग दर्शन किया और यथासंभव उनकी सहायता की। Ⓜ

साभार : [शर्मा, डॉ. महेश चंद्र (2016), *दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - खंड आठ*, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली।

लोपामुद्रा

लोपामुद्रा प्राचीन भारत की एक नारी दार्शनिक थीं। एक वैदिक मंत्रदृष्टा और ऋषि-पत्नि जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है। वे महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी जिनकी सृष्टि उन्होंने स्वयं की थी। इनको 'वरप्रदा' और 'कौशीतकी' भी कहते हैं। इनका पालनपोषण विदर्भराज निमि या क्रथपुत्र भीम ने किया इसलिए इन्हें 'वैदर्भी' भी कहते थे।

महाभारत की कथा के अनुसार अगस्त्य मुनि को अपने पितरों की मुक्ति के लिए विवाह करने की इच्छा हुई। अपने योग्य कोई कन्या न मिलने पर उन्होंने विभिन्न जंतुओं का उत्तमांश लेकर एक कन्या की रचना की और उसे संतान के लिए आतुर विदर्भराज को दे दिया। यही लोपामुद्रा थी। लोपामुद्रा के युवती होने पर अगस्त्य ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। अगस्त्य और लोपामुद्रा का विवाह हो गया। इनका इध्मवाहन नाम का पुत्र हुआ। दक्षिण भारत में इन्हें मलयध्वज नाम के पांड्य राजा की पुत्री बताया जाता है। वहां इसका नाम कृष्णेक्षणा है।

अगस्त्य से विवाह हो जाने पर राजवस्त्र और आभूषण का परित्याग कर इन्होंने पति के अनुरूप वल्कल एवं मृगचर्म धारण किया। अगस्त्य जी द्वारा प्रहलाद के वंशज इत्वल से पर्याप्त धन ऐश्वर्य प्राप्त होने पर दोनों में समागम हुअ जिससे 'दृढस्यु' नामक पराक्रमी पुत्र की उत्पत्ति हुई।

रामचंद्र जी अपने वनवास में लोपामुद्रा तथा अगस्त्य से मिलने उनके आश्रम गए थे। वहाँ ऋषि ने उन्हें उपहारस्वरूप धनुष, अक्षय तूणीर तथा खड्ग दिए थे।

पुराणों के अनुसार लोपामुद्रा को काशी के राजा से विपुल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। 'आनन्द रामायण' में उसके पास अपरिमित मात्रा में अन्न देने वाली एक 'अक्षय थाली' होने का भी उल्लेख है। Ⓜ

समाज की मूलभूत इकाई परिवार

डॉ.मनीषा कोठेकर

सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर कई तरह के सफल प्रयासों के बावजूद हमारे समाज के कई वर्गों में स्त्रियां अभी पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हो सकी हैं। इसके सामाजिक, आर्थिक एवं परंपरागत आदि कई कारण हैं और उन विषयों पर भी कई संगठन काम कर रहे हैं। ऐसा ही एक संगठन है भारतीय स्त्री शक्ति जो स्त्रियों के विषय पर संपूर्ण और राष्ट्र की समग्र दृष्टि से कार्य कर रहा है

शासकीय एवं गैर शासकीय स्तर पर होने वाले बहुतेरे प्रयासों के बाद अब हम देख रहे हैं कि समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएं बड़ी संख्या में कार्यरत हैंस इसके बावजूद हम यह देखते हैं कि परिवार और समाज में स्त्री आज भी दोयम स्थान पर ही है। कार्यस्थल हो या घर, अभी भी बहुत स्त्रियों को हर जगह प्रताड़ना और अन्याय का सामना करना पड़ जाता है। इन्हीं स्थितियों को देखते हुए महिलाओं को सक्षम बनाने के लिए एक अखिल भारतीय संगठन बनाया गया - भारतीय स्त्री शक्ति। यह एक अखिल भारतीय गैर राजनीतिक स्वयंसेवी संगठन है। वर्ष 1988 से ही क्रियाशील यह संगठन सभी स्तरों की महिलाओं को सक्षम बनाने के लिए प्रयासरत है, इस बात को कोई महत्व दिए बिना कि उनकी जाति, पंथ, आयु तथा शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति क्या है।

भारत का इतिहास, भारतीय विचारधारा व भारतीय तत्वप्रणाली के आधार पर स्त्री विषयक प्रश्नों का विचार करना व समस्याओं को दूर करने की दिशा में प्रयास करना ही इस संगठन का कार्य है। संगठन का उद्देश्य भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों के पक्ष में ऐसे विचार रखना है, जो पूरे विश्व के अनुकूल हों। यह संगठन इसी उद्देश्य को सामने रखकर काम कर रहा है।

समाज का मूलभूत इकाई परिवार

हम मानते हैं कि समाज का मूलभूत इकाई परिवार है न कि व्यक्ति। इसलिए परिवार के परिप्रेक्ष्य में महिला प्रश्नों के बारे में विचार करना आवश्यक है। महिलाओं की सामर्थ्यशीलता के साथ परिवार की सामर्थ्यशीलताका भी विचार करना होगा। महिला संबंधी जो बदलाव हम समाज में लाना चाहते हैं, उसका प्रारंभ कुटुंब से करना चाहिए। जैसे कि, व्यक्ति स्वातंत्र्य, आचार/अभिव्यक्ति/विचार स्वातंत्र्य, समान अवसर, अवसर का उपयोग करने हेतु अनुकूल वायुमंडल निर्माण करना, निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता एवं कुटुंब के सशक्तीकरण में कुटुंब में स्थित प्रत्येक घटक का सशक्तीकरण अपेक्षित है। 'स्त्री सशक्तीकरण' वस्तुत: उसी का एक हिस्सा है। अर्थात स्त्री सशक्तीकरण परिवार सशक्तीकरण के बिना नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार परिवार का सशक्तीकरण स्त्री के सशक्तीकरण के बिना अधूरा है।

प्रश्न केवल महिलाओं के नहीं

महिलाओं के प्रश्न केवल महिलाओं के ही नहीं हो सकते। परिवार व समाज में स्त्री तथा पुरूष दोनों विभिन्न रिश्तों से एक-दूसरे से संबंद्ध रहते हैं। जैसे बेटी-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन या सहकर्मी-सहपाठी आदि। इस स्थिति में स्त्री तथा पुरुष दोनों की परिस्थितियों, गुण-दोषों, सामर्थ्यशीलता या दुर्बलताका परिणाम एक-दूसरे पर होना अत्यंत स्वाभाविक है। स्त्री सक्षम है या नहीं, इन दोनों ही स्थितियों का अलग-अलग प्रभाव उसके परिवार तथा उसके साथ काम करने वालों की मानसिकता पर सकारात्मक या नकारात्मक रूप से होता है।

उसी प्रकार जो प्रश्न रुढ़ि या परंपरा महिलाओं के लिए अन्यायकारक है उनका भी परिणाम महिलाओं के साथ उनसे जुड़े पुरुष पर, परिवार व समाज पर उतना ही होता है। दहेज , बलात्कार जैसी घटनाओं में जितना कोई स्त्री आहत होती है, उतना ही उसका परिवार। इन समस्याओं से जूझने के लिए सरकारी तथा सामाजिक संस्था को भी काम करना पड़ता है। अर्थात समाजपर भी उसका परिणाम होता है।

इस प्रकार महिलाओं से जुड़ी समस्याओं को

सुलझाने से केवल महिला ही लाभान्वित नहीं होगी। अपितु जितना लाभ महिला का होगा, उतना ही उससे संबधित पुरुष, परिवार और समाज को भी होगा। इसीलिए परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पुरुष वर्ग को भी सम्मिलित करना आवश्यक है। इस प्रकार महिलाओं के इस आंदोलन में संपूर्ण समाज की सहभागिता आवश्यक है। यही हमारी भूमिका है।

शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्वतंत्रता, समानता तथा आत्मसम्मान - ये ऐसे पांच मुद्दे हैं जिनके आधार पर स्त्री सक्षमीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। साथ ही इनका अभाव महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। महिला सशक्तीकरण के मार्ग में बाधा बनने वाले विषयों का विचार करना, उनके बारे में महिलाओं को व समाज को अवगत कराने, इन क्षेत्रों में महिलाओं को अवसर उपलब्ध कराने तथा उन अवसरों का उपयोग वह कर सके ऐसा वातावरण समाज तथा परिवार में बनाने के लिए संगठन विभिन्न गतिविधियां चलाता है

विकास में सहभागिता

महिला समाज का एक अभिन्न अंग या हिस्सा है। एक नागरिक इस नाते उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। समाज से मिलने वाले सभी प्रकार के लाभ उसे भी प्राप्त हैं। इस प्रकार वह लाभार्थी की श्रेणी में आती है। अर्थात समाज के प्रति उसका भी उतना ही दायित्व बनता है।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता अत्यंत आवश्यक है। समाज की लगभग पचास प्रतिशत महिलाओं की यदि समाज के विकास में सहभागिता नहीं है तो समाज विकास के साथ राष्ट्रविकास भी अपूर्ण रहेगा।

इसलिए समाज के सभी क्षेत्र जैसे आर्थिक, सामाजिक, शिक्षा, कला, साहित्य, विज्ञान-तंत्रज्ञान, राजनीति आदि में महिलाओं का योगदान आवश्यक है।

राष्ट्रवादी विचार

महिलाओं के हित के लिए काम करते समय महिला राष्ट्र का एक घटक है और किसी भी व्यक्तिहित से राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है, यह ध्यान में रखकर काम करना होगा। इस प्रकार के राष्ट्रवाद को सामने रखकर काम करने वाला यह संगठन है।

हम यह समझते हैं कि जिस प्रकार केवल 'स्व' का विचार योग्य नहीं है, उसी प्रकार 'स्व' को पूर्णतासे नकारना भी उचित नहीं है, संभव भी नहीं है। व्यक्ति व समाज के आपसी संबंध ऐसे हों जिसमें व्यक्तित्व का संकोच न हो व व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाजहित की बलि न चढ़ जाए।

यही विषय महिलाओं के लिए भी लागू होता है। महिला या पुरुष या किसी भी एक वर्ग के हित यदि राष्ट्रहित के विरुद्ध होंगे तो उस समय उसे किनारे रख कर राष्ट्रहित को महत्व देना होगा। इन राष्ट्रवादी विचारों को साथ संगठन महिला सक्षमीकरण का काम कर रहा है। राष्ट्रनिर्माण में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

पाँच सूत्र

संगठन 'स्त्री सशक्तीकरण' का उद्देश्य लेकर निरंतर कार्यरत है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु पांच मूलभूत सूत्रों का आधार हमने लिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्वतंत्रता, समानता तथा आत्मसम्मान - ये ऐसे पांच मुद्दे हैं जिनके आधार पर स्त्री सक्षमीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। साथ ही इनका अभाव महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। महिला सशक्तीकरण के मार्ग में बाधा बनने वाले विषयों का विचार करना, उनके बारे में महिलाओं को व समाज को अवगत कराने, इन क्षेत्रों में महिलाओं को अवसर उपलब्ध कराने तथा उन अवसरों का उपयोग वह कर सके ऐसा वातावरण समाज तथा परिवार में बनाने के लिए संगठन विभिन्न गतिविधियां चलाता है। इनमें रचनात्मक, संगठनात्मक तथा आंदोलनात्मक कार्यक्रमों का समावेश होता है। कुछ नित्य चलने वाले उपक्रम हैं, कुछ स्थायी प्रकल्प हैं। साथ में समय-समय पर आने वाले महिला संबंधी विषयों को लेकर अध्ययन करना, उनके आधार पर संबंधित शासकीय तथा गैर शासकीय व्यवस्था के सम्मुख सुझाव रखना एवं अध्ययन के रिपोर्ट को प्रकाशित करने जैसे कार्य भी निरंतर चलते रहते हैं। Ⓜ

अश्विनी कुमारों की साधिका घोषा

ऋग्वेद की मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं में एक नाम कक्षीवत की पुत्री घोषा का भी है। घोषा समस्त आश्रमवासियों की लाडली थीं किंतु बाल्यावस्था में ही शरीर के रोग से शरीर विकृत हो जाने के कारण उनसे किसी ने विवाह करना स्वीकार नहीं किया। वह साठ वर्ष की वृद्धा हो गयीं; किंतु कुमारी ही रहीं। ऐसे ही एक बार उदासी के क्षणों में अचानक उन्हें ध्यान आया कि उनके पिता कक्षीवत ने अश्विनीकुमारों की कृपा से आयु, शक्ति तथा स्वास्थ्य का लाभ किया था।

घोषा ने तपस्या की। साठ वर्षीय वह मंत्रद्रष्टा हुई। अश्विनीकुमारों का स्वतन किया। उस पर प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने दर्शन दिए और घोषा की उत्कट आकांक्षा जानकर उन्हें नीरोग कर रूप-यौवन प्रदान किया। तदनंतर उनका विवाह संपन्न हुआ। अश्विनी कुमारों की कृपा से ही घोषा ने पुत्र और धन आदि भी प्राप्त किए। Ⓜ

अद्वैत की जननी वागांभृणी

अंभृणी ऋषि की पुत्री होने के कारण वैदिक संहिताओं के मंत्रों का साक्षात्कार करने वाली इस नारी का नाम वागाम्भृणी पड़ गया। अपने योगबल से इस नारी रत्न ने ऋग्वेद के दशम मंडल के 125वें सूक्त के प्रारंभिक 8 मंत्रों का साक्षात्कार किया है। वैदिक वाङ्मय में इस सूक्त को देवी सूक्त के नाम से भी जाना जाता है। इस सूक्त में वाक् (वाणी) की प्रशंसा की गई है। आज संपूर्ण भारत में नवरात्र के दिनों में जो चंडीपाठ होता है, उसके मूल में यही सूक्त कारण है। चंडीपाठ के प्रचार एवं प्रसार से पूर्व इसी सूक्त की ऋचाओं का प्रचलन था। मार्कंडेव पुराण के चंडी माहात्म्य प्रकरण में वागांभृणी द्वारा दृष्ट इन मंत्रों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

अद्वैतवाद के प्रचारक श्रीमत् शंकराचार्य जी को अपने प्रिय सिद्धांत के लिए इसी सूक्त से प्रेरणा मिली थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वागांभृणी ही अद्वैत की मूल जननी थी। उन्होंने ही भगवान शंकराचार्य को संबल प्रदान किया और वे पुनः सनातन धर्म की आधारशिला रख सके। ब्राह्मण धर्म की पुनः स्थापना के पीछे इसी सूक्त के अद्वैतवाद का बल था, जिसके सम्मुख बौद्ध मतावलंबी नहीं टिक सके। वाग्देवी के रूप में जानी जाने वाली इस नारी ने जिन मंत्रों का साक्षात्कार किया उनमें वाणी के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इसी को राज्यों की अधिष्ठात्री कहा गया है। सूक्त के पाँचवें मंत्र में वागांभृणी को इतना शक्तिशाली बताया गया है कि उसकी कृपा से मानव बलवान, मेधावी, स्तोता या कवि हो सकता है। संपूर्ण विश्व को सही मार्ग का दर्शन कराने वाली वाग्देवी वस्तुतः महामहिमाशालिनी है।

दैवी गुणों से संपन्न इस नारी ने राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने को ही सर्वोत्तम धर्म माना है। संगठन शक्ति के रूप में अपना परिचय देती हुई वे कहती हैं, "मैं राज्यों की अधिष्ठात्री एवं धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञान से अलंकृत तथा यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले सभी साधनों में सर्वोत्तम हूँ

वागांभृणी में संगठन करने की अद्भुत शक्ति है। दैवी गुणों से संपन्न इस नारी ने राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने को ही सर्वोत्तम धर्म माना है। संगठन शक्ति के रूप में अपना परिचय देती हुई वे कहती हैं, "मैं राज्यों की अधिष्ठात्री एवं धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञान से अलंकृत तथा यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले सभी साधनों में सर्वोत्तम हूँ। मैं प्राणीमात्र में निवास करती हूँ। देवताओं ने मुझे महत्व देते हुए अनेक स्थानों पर स्थापित किया है।

नारी की अद्भुत शक्ति का प्रतिपादन करने के साथ ही सूक्त द्रष्ट्री का विचार स्पष्ट है कि शरीर में नाड़ी जिस प्रकार गतिमान है, उसी प्रकार समाज में नारी क्रियाशील है। प्राण-धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि की संपूर्ण व्यवस्था नारी-धर्म की धुरी के चारों ओर व्यवस्थित है। यही कारण है कि प्रस्तुत सूक्त के चतुर्थ मंत्र में स्पष्ट कहा गया है - "हे विज्ञ, मैं जो कहती हूँ, वह पूर्ण यथार्थ है। मुझे न मानने वाले क्षीणता को प्राप्त होते हैं।"

नारी नरत्व की नींव है। इसके प्रतिपादन में कहा गया है - "मैं देवता और मनुष्यों के परम पुरुषार्थ की उपदेशिका हूँ। मेरी कृपा से ही लोग बलवान, मेधावी, स्तोता और कवि बनते हैं। देवताओं की स्तुति करना संहिताकाल में एक आवश्यक धर्म माना जाता था। स्तुति न करने वाला व्यक्ति राजा का कोपभाजन बनता था। इस कथन की पुष्टि सूक्त की छठी ऋचा से होती है, जिसमें - "अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे" का प्रतिपादन किया गया है। मनुष्यों के लाभार्थ संग्राम करने वाली, आकाश-स्थल-समुद्र में विचरण करने वाली, जिसने अपने सदाचरण से स्वर्ग को स्पर्श किया, उस वागांभृणी की उक्ति है कि - "मैं जब सृजनकार्य करती हूँ तो मेरी गति वायु के समान होती है। मैं अपने महत्वपूर्ण कार्यों से महिमामयी होकर आकाश पृथ्वी की सीमाओं को भी लांघ चुकी हूं।"

इस सूक्त का साक्षात्कार करने वाली वागांभृणी ने संहिताकालीन नारी की धार्मिक स्थिति का सम्यक ज्ञान कराते हुए प्रारंभ के दो मंत्रों से सब कुछ कह दिया है। उस समय नारी स्वतंत्र रूप से रुद्रगण, वसुगण तथा आदित्यगण देवताओं के पूजन-अर्चन हेतु अनुष्ठान करती थी। मित्रावरुण, इंद्र, अग्नि, अश्विनीद्वय को प्रसन्न करने के लिए सोम (पेय पदार्थ) का धारण करना नारी के अधीन था। त्वष्टा, पूषन (पूषा) आदि देवता भी उस समय की नारी के आराधनीय देव माने जाते थे। Ⓜ

साभार : [शर्मा, डॉ. मालती, *वैदिक संहिताओं में नारी*, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. 136 एवं 175-76]

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः..

पताः..

.... राज्यः .... पिनकोड : ....

लैंड लाइनः .... मोबाइलः (1).................. (2)..................

ई मेलः ....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रबंध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002

दूरभाष : +91–9868550000, 011–23210074

ई–मेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

प्रभात प्रकाशन

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

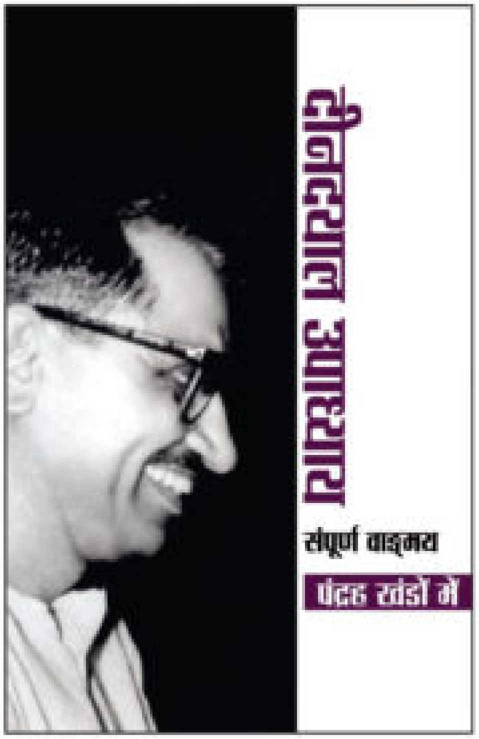

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

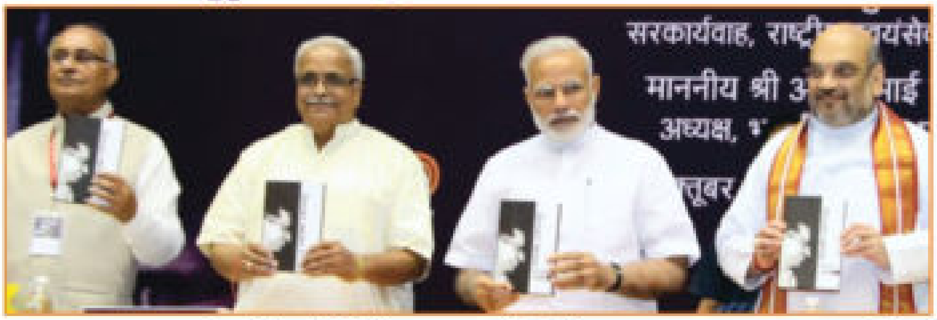

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

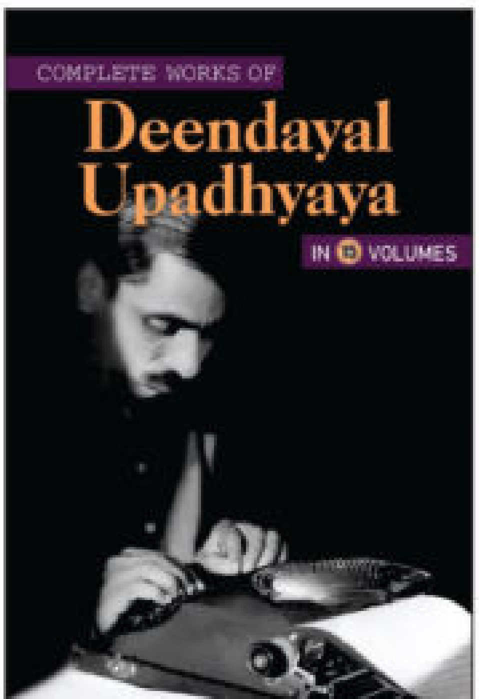

COMPLETE WORKS OF DEENDAYAL UPADHYAYA

(Set of 15 Volumes)

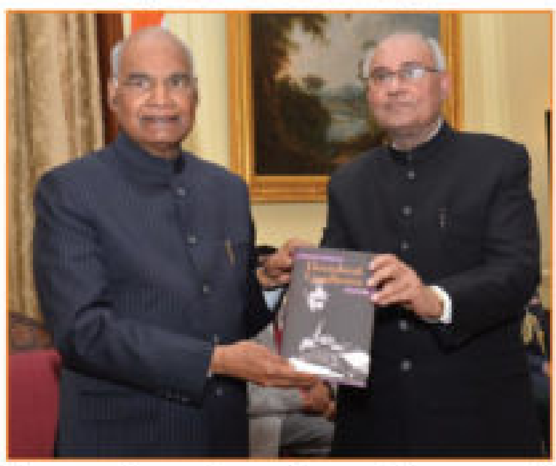

11 फरवरी, 2019 को भारत के राष्ट्रपति मान. श्री राम नाथ कोविंदजी को 'Complete Works of Deendayal Upadhyaya' की प्रथम प्रति भेंट करते हुए प्रधान संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रभात प्रकाशन

ISO 9001:2015 प्रकाशक

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23289777

E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन

अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : 011-23210074

ई-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

आयुष्मान भारत और हिमकेयर

से हिमाचलवासियों को मिल रही 5 लाख रूपये तक की नि:शुल्क स्वास्थ्य सुविधाएं

आयुष्मान भारत

- योजना लागू करने वाला हिमाचल बना देश का अग्रणी राज्य।
- अभी तक 3.19 लाख परिवारों के गोल्डन कार्ड बनाए गए।
- अब तक 71,438 रोगियों को मिली 71.95 करोड़ रूपये के नि:शुल्क इलाज़ की सुविधा।

हिमकेयर

- सभी वर्गों के लिए आयुष्मान भारत की तर्ज़ पर लागू की हिमकेयर योजना।
- योजना के तहत 5.50 लाख परिवार पंजीकृत।
- अब तक 1,10,764 रोगियों को मिली 110.78 करोड़ रूपये के नि:शुल्क इलाज की सुविधा।

मुख्यमंत्री चिकित्सा सहायता कोष के माध्यम से 7.46 करोड़ रूपये 555 जरूरतमंद गरीब लोगों को गम्भीर बीमारियों के इलाज के लिए दिए

जारीकर्ता : सूचना एवं जन सम्पर्क, हिमाचल प्रदेश HimachalPradeshGovtIPRDept dprhp DPR Himachal
वैबसाइट : www.himachalpr.gov.in ई-मेल : : dprhp@himachalpr.gov.in